बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की हिन्दी में

पी–एच0डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

नरेन्द्र कोहली के "रामकथा मूलक उपन्यासों में पौराणिकता एवम् समकालीन प्रासंगिकता"

सत्र—2005

शोध निर्देशक

(डॉ0 दिनेश चन्द्र द्विवेदी)

रीडर एवम् अध्यक्ष हिन्दी विभाग

गाँधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई

अनुसंधित्सु

राम मोहन नाथ मिश्र

शोध केन्द्रः—गाँधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई

अनुक्रमणिका

प्रमाण पत्र

मुझे प्रमाणित करते हुए हर्ष है कि राम मोहन मिश्र ने मेरे निर्देशन में ''नरेन्द्र कोहली के ''रामकथा मूलक'' उपन्यासों में पौराणिकता एवं समकालीन प्रासंगिकता'' शीर्षक शोध प्रबन्ध सम्पन्न कर लिया है। इस उपक्रम में राम मोहन मिश्र ने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी की शोध परिनियमावली के समस्त उपबन्धों का पालन किया है। अनुसंधान कार्य को ध्रुवान्त तक पहुँचाने के लिए जिन उपजीव्य, उपस्कारक ग्रन्थों और पत्र पत्रिकाओं का सहयोग लिया है– उसके सादर उल्लेख का विनम्र शिष्टाचार और शोधकार्य की श्रेष्ठ परम्परा का निर्वाह अनुसंधित्सु ने किया है। मै अनुसंधित्सु के मंगलमय भविष्य की कामना करता हूँ और इस शोध प्रबन्ध को विषय विशेषज्ञों के समक्ष प्रस्तुत करने की अनुशंसा करता हूँ।
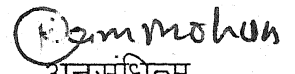
डॉ0 दिनेश चन्द्र द्विवेदी

रीडर अध्यक्ष हिन्दी विभाग

गाँधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय उरई

प्रमाण - पत्र

मैं प्रमाणित करता हूँ कि बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी की शोध उपाधि समिति द्वारा स्वीकृत शोध विषय **"नरेन्द्र कोहली के रामकथा मूलक उपन्यासों में पौराणिकता एवं समकालीन प्रासंगिकता"** का अनुसंधान कार्य शोध परिनियमावली के नियमों के अनुसार सम्पन्न कर लिया है। इस उपक्रम में मैंने जिन उपजीव्य एवं उपस्कारक ग्रन्थों की सामग्री का उपयोग किया है– उसका उल्लेख कर दिया है। यह मेरा सर्वथा मौलिक कार्य है।

Rammohan
अनुसंधित्सु
(राममोहन नाथ मिश्रा)

भूमिका

भारतीय मनीषा ने विविध, जागतिक सन्दर्भों का चिन्तन, मनन, परिवीक्षण तथा निदिध्यासन किया है। इस उपक्रम में प्रवृत्ति तथा निवृत्ति मूलक चिन्तन–धारायें सम्यक् रूपेण परिशीलित हुयी है। अपरा तथा परा विद्याओं एवं प्रेय तथा श्रेय मार्गों पर अनुसंधानपरक उपसंहार मूलक स्थापनायें सम्पन्न हुयी हैं। वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों तथा आरण्यकों में ऋषियों–मुनियों की मन्त्रवन्ती तथा अनुभूतिपरक अभिज्ञा संग्रन्थित है। इस वैदिक वाङ्गयको सामान्य व्यक्ति नही समझ सकता था। अत' वैदिक ज्ञान को पुराणों के माध्यम से सरल तथा कथात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया। पहले सम्पन्न हो चुकी घटनाओं, पूर्ववर्ती प्रख्यात चरित्रों तथा पूर्व प्रस्तुत तात्विक आख्यानों को सरल तथा मनोग्राही रूप में प्रस्तुत किया गया। 'रामायण' तथा 'महाभारत' इसी अभिप्राय को सिद्ध करने के लिये अतिमहत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। नरेन्द्र कोहली ने पौराणिक वस्तु विन्यास को समकालीन प्रासंगिकताओं के परिपेक्ष्य में तर्क संगत रूप से राम कथा मूलक उपन्यासमाला में प्रस्तुत किया है इस उपन्यास माला के माध्यम से नरेन्द्र कोहली ने युगीन परिवेश के विविध आयामों से सन्निविष्ट मानवीय सरोकारों को तर्क संगत रूप में प्रस्तुत करना चाहा है। इस उपक्रम में उपन्यासकार की मौलिक उद्‌भावनायें समूचे युग को 'नव्य रूप में प्रस्तुत कर सकी हैं। नरेन्द्र कोहली ने पौराणिक घटनाओं एवं तथ्यों को उनके दैवीय, चमत्कारिक, उद्‌भुत, अमानवीय अथवा अतिमानवीय प्रभावों से मुक्त कर बुद्धिसम्मत, तर्कपूर्ण तथा मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रस्तुत किया है। किसी भी साहित्य के विकास में ये गौरव की बात है कि रचनाकार अपनी संस्कृति का पुर्नमूल्यांकन करने की चुनौती का अनुभव करें। ये प्रयास तब और भी सार्थक होता है जब आधुनिकता के प्रभाव को जानना–बूझना कोई कृतिक प्रायनि संस्कृति–सभ्यता और नैतिक मूल्यों के प्रति न केवल तीखी विद्रोही प्रवृत्ति रखता हो, प्रत्युत आकलन के स्तर पर विलक्षण घटिज और जीवन का परिचय देता हो।

ये प्रक्रिया उस युग में विशेष सार्थक और प्रासंगिक समझी जानी चाहिये। जब क्षण बाद, समसामायिकता, रचना की तात्कालिक उपयोगिता, प्राचीन संस्कृति की पहिचान की सार्थकतार को लेकर मोहाविण्ठ भाषा में नारे लगाये जा रहे हों। भारतीय पौराणिकता की प्रख्यात काव्य–कृति 'रामारण' के आधार पर समकालीन प्रासंगिकता का उत्खनन वस्तुतः रचनाकार का पुरातात्विक केवल प्रागैतिहासिक सामग्री का अन्वेषण मात्र करता है किन्तु नरेन्द्र कोहली ने पुरातात्विक सामग्री को अपनी कालधर्मी विरचनाओं से उसे अभिनव तथा युग के लिये उपयोगी रूप दिया है। इस उपन्यासमाला के माध्यम से नरेन्द्र कोहली ने आर्ष चिन्तन तथा समकालीन परिवेशगत यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक निष्कर्षपरक स्थापनायें की हैं। अनुसंधित्सु ने नरेन्द्र कोहली विरचित रामकथामूलक उपन्यासों–दीक्षा, अवसर, संघर्ष की ओर, साक्षात्कार, पृष्ठिभूमि, अभिमान और युद्ध के परिशीलन के द्वारा पौराणिक आख्यान और मौलक उद्भावनाओं की पड़ताल के साथ समकालीन प्रासंगिकता की भी गवेषणा करते हुये निष्कर्षपरक स्थापनायें करने का प्रयास किया है।

प्रथम अध्याय पुराण और पौराणिकता को परिभाषित करने के साथ उसके व्युत्पत्तिक धार्मिक और सामान्य प्रचलित अर्थ निरूपित करता है। इस अध्याय में प्रमुख पुराणों का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है।

द्वितीय अध्याय में युगीन परिवेश के अन्तर्गत नरेन्द्र कोहली की रचनाधर्मिता का परिशीलन किया गया है। इस अध्याय मे नरेन्द्र कोहली के उपन्यासेत्तर साहित्य का परिचयात्मक अववोध भी निरूपित है। तृतीय अध्याय में नरेन्द्र कोहली के रामकथामूलक उपन्यासो–दीक्षा, अवसर, संघर्ष की ओर, साक्षात्कार, पृष्ठिभूमि, अभियान, युद्ध तथा कृष्ण कथामूलक उपन्यासों–बन्धन, अधिकार, कर्म, धर्म, अन्तराल, प्रच्छन्न प्रत्यक्ष, निर्बन्ध, का साकेतिक परिचय दिया गया है। चतुर्थ अध्याय में रामकथामूलक उपन्यासों में पौराणिकता, पौराणिक वस्तुविन्यास में मौलिक उद्भावनायें तथा समकालीन सन्दर्भ में इन उपन्यासों की प्रासंगिकता का

गवेषणापरक परिशीलन किया गया है।

पंचम अध्याय में इस शोध कार्य का उपसंहार समप्रतिष्ठित है। परिशिष्ट के अन्तर्गत उपजीव्य, उपस्कारक, ग्रन्थों तथा पत्र पत्रिकाओं की सूची प्रस्तुत है।

सर्वप्रथम परब्रह्म परमात्मा के प्रति जो अनादि, अनन्त, सर्वशक्तिमान तथा करुणामय हैं–के प्रति मैं आन्तरिक समर्पण निवेदित करता हूँ, मैं अपने श्रद्धेयेय गुरुदेव एवं शोध निर्देशक डॉ० दिनेश चन्द्र द्विवेदी के प्रति श्रद्धावनत हूँ, जिन्होंने मन्त्रदृष्टा ऋषि के रूप में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष ज्ञान के विविध सोपानों को इस शोध प्रबन्ध के साथ–साथ मेरी अन्तस चेतना में भी सुप्रतिष्ठित कर दिया और यह उनका सूर्यकिरणोज्ज्वल आशीष ही है कि मैं यह शोध कार्य सम्पन्न कर सका।

मैं अपनी पूज्य दादी श्रीमती सोना मिश्रा, आदरणीय पिता श्री दिनेश कुमार मिश्रा, ममतामयी ताई श्रीमती ओमका मिश्रा तथा माननीय ताऊ श्री आत्माराम मिश्र के प्रति विनभावनत हूँ। इनके स्नेहपूर्ण आशीर्वाद तथा प्रेरणा का प्रतिफल है कि मैं अनुसंधान कालीन विविध जटिलताओ, विसंगतियों, दुख्हताओं तथा हताशाओं से उवरकर लक्ष्य तक पहुँच सका। मैं विख्यात, अल्पख्यात तथा अख्यात विद्वानों के प्रति भी हृदय से आभारी हूँ, जिनकी रचनाओं के सहयोग से मैं यह शोधकार्य सम्पन्न कर सका और अन्त में स्वयं के ज्यातिर्मय प्रेरणा श्रोत ऋषिकल्प मेरे बाबा स्व० डा० जागेश्वर दयाल मिश्र के प्रति भावातिरेक में अश्रुविगलित कृतज्ञता ज्ञापित करते हुये उनकी गरिममयी स्मृति को यह शोध प्रबन्ध समर्पित करता हूँ।

अनुसंधित्सु Ram mohan

राम मोहन नाथ मिश्रा

प्रथम अध्याय

(क) पुराण और पौराणिकता,

व्युत्पत्तिकअर्थ, धार्मिक अर्थ,

सामान्य प्रचलित अर्थ।

(ख) प्रमुख पुराण : संक्षिप्त परिचय

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

प्रथम अध्याय: विषय प्रवेश

(क) पुराण और पौराणिकता, व्युत्पत्तिकअर्थ, धार्मिक अर्थ, सामान्य प्रचलित अर्थ–

सम्प्रति हिन्दी के शिखरवर्ती उपन्यासकारों में नरेन्द्र कोहली का परिगण्य स्थान है। पौराणिक परिप्रेक्ष्य में साम्प्रतिक प्रासंगिकतायें उनकी रचना धार्मिता का महत्वपूर्ण अन्तर्प्रवाह हैं। महाकाव्यीय कथावस्तु के धरातल पर उन्होंने तत्युग के अभिनव स्वरूप में चित्रांकित करते हुए तर्कमयी युग दृष्टि से ओत–प्रोत मौलिक उद्‌भावनायें प्रस्तुत की हैं। पौराणिक आख्यानों के अमानवीय अतिमानवीय, दैवी तथा अद्‌भुत चमत्कारिक सन्दर्भों को नरेन्द्र कोहली ने तर्कसम्मत बौद्धिकता से संवेष्टित करके उन्हें मनोवैज्ञनिक धरातल पर जीवन्त किया है। किसी भी कृतिक द्वारा अपनी संस्कृति के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता का अनुभव उस साहित्य के लिए शुभत्व का संकेत है। यह उपक्रम उस समय और महत्वपूर्ण हो उठता है जब कोई कृतिक वैज्ञानिक, आलोक में आधुनिक जीवन–दर्शन की पड़ताल करना चाहता हो और प्राचीन संस्कृति तथा सभ्यता के प्रति अंधाग्रही न हो। यह प्रक्रिया उस युग में विशेष सार्थक और प्रासगिक समझी जानी चाहिए जिसमें प्राचीन संस्कृति तथा नैतिक मूल्यों की महत्ता को लेकर महिमामण्डित नारे लगाए जा रहे हैं। यह मोह पुनरुस्थानवादी

मूल्यों को सबंद्ध करके मानवीय विकास की प्रगतिमयी संभावनाओं का पथ अवरुद्ध करता है। इससे प्रतिगामी मूल्यों की अवांछनीय तमिस्रा का पथ प्रशस्त होता है।

साहित्य– रचना के समय पौराणिक कथानक तथा पात्र आकर्षण के प्रमुख केन्द्र होते है। यह स्थिति हिन्दी कथा साहित्य की ही नहीं अपितु प्रायः सभी भाषाओं के कथा साहित्य की हैं। इसका कारण है– शताब्दियों से प्रचलित आख्यान शनैः–शनैः अर्द्ध–चेतन या अचेतन में स्थान बना लेते हैं। इन आख्यानों का ज्यों ही स्पर्श किया जाता है, ये ऊर्जस्विनी जीवन्तता में जाग्रत हो उठते हैं। सहसा रसोन्मीलन की अवस्था आ जाती है। पुनराख्यान में प्रतिपादित मूल्यों या स्थापनाओं को प्रमाता अथवा भाविक नतशिर होकर स्वीकार कर लेता है। किन्तु पुनराख्यान दो धारी तलवार है। तनिक–सी असावधानी सम्पूर्ण प्रयत्न को अनाकर्षक और कंभी–कभी तो उपहासास्पद तक बना देती है। समसामयिकता का मोह जैसे ही उतेजना का रूप धारण करता है– समूची कृति अविश्वसनीय लगने लगती है। ऐतिहासिकता के खण्डित हो जाने के कारण स्थिति बिगड़ जाती है। दूसरी और पौराणिकता का अनावश्यक समावेश भी रचना को अनाकर्षक बना देता है। आखिर कोई अतीत की ओर अकारण मुड़े ही क्यों ? इस प्रकार कृतिक को दोहरे दायित्व का निर्वाह करना पड़ता है– पौराणिकता को अक्षुण्ण बनाये रखने

का दायित्व तथा समसामयिकता के भरपूर किन्तु गोपनीय समावेश का दायित्व।

नरेन्द्र कोहली ने पौराणिक सन्दर्भों से परिसृष्ट राम तथा कृष्ण कथा पर आधारित 'रामायण' तथा 'महाभारत' के कथ्य और विमर्श को अभिनव स्वरूप में ढाल कर परकाया प्रवेश जैसा साहसिक उपक्रम प्रदर्शित किया है। 'रामकथा' तथा 'महाभारत–कथा' की नयी व्याख्या प्रस्तुत करने का यह प्रयास न केवल कौतूहल –प्रत्युत कतिपय सांस्कृतिक, साहित्यिक और कलात्मक प्रश्न भी उत्पन्न करता है।

'पुरा' धातु में 'टयू' (अन्) प्रत्यय के संयोग से 'पुराण' शब्द की व्युत्पत्ति होती है। निरुक्त में पुराण को अर्थित करने का उपक्रम इस प्रकार है– 'पुराभवं पुराणम' अर्थात जो पहले से है– प्राचीन है– वह पुराण है। अधो प्रस्तुत 'पुराण और पौराणिकता के परिभाषित व्यावहारिक अर्थ शीर्षक के अन्तर्गत पुराण के सम्बन्ध में गहन तथा व्यापक अभिज्ञा प्रस्तुत है।

प्राचीन भारत में चतुर्दश विद्याओं की विशेष उपयोगिता थी। उनमें भी पुराण सर्वाधिक प्रचलित और मान्य थे। इस तथ्य के प्रतिपादन में यह श्लोक अत्यधिक प्रसिद्ध है–

पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।

वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।।

जहां वेदों को अधिक महत्त्व दिया गया है, वहां भी उनकी व्याख्या समझने के लिए इतिहास–पुराणों के दृष्टिकोण को ही शुद्ध एवं उचित माना गया है। वैसे निरुक्त, ब्राह्मण ग्रन्थ, प्रतिशाख्य, श्रौत सूत्र, कल्पसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र सभी वेदाग्ड़ और उपवेद भी वेदांग के ही प्रकाशक हैं, किन्तु इतिहास–पुराणों में उनकी सरलतम व्याख्या है। इसलिए–

इतिहास पुराणाभ्यां वेंद समुवृद्धयति

विमेत्यल्प्रश्रुताद् वेदा मामयं प्रहरिष्यति

की रीति–नीति से भी वेदार्थ जानने के लिए पुराणों को जानना परमावश्यक है। कतिपय विद्वानों के अनुसार पुराण पहले प्राकृत भाषा में थे और बाद में संस्कृत भाषा में अनुदित हुए। यह विचार प्रार्जीटर, स्मिथ, रैप्सन, जेक्सन, विण्टरनित्स के साथ इनके भारतीय अनुयायियों का भी है।[3] इसका मूल कारण जैन पुराणों का प्राकृत भाषा में होना है यथर्थता: जैन पुराण बहुत बाद के प्राकृतकाल की रचना के अंग हैं और वे अब भी प्राकृत में ही है, पर सनातन धर्म के पुराण एवं उपपुराणों की एक भी प्राकृत भाषा में विरचित कृति विश्व के किसी भी पुस्तकालय में उपलब्ध नहीं है।कुछ विद्वान ऐसे भी हैं जो यह तर्क उपस्थित करते हैं कि भारत की पहली भाषा प्राकृत ही थी, इसलिए पुराण भी प्राकृत में ही है, संस्कृत प्राकृत का ही संस्कार जनित रूप है, किन्तु यह सर्वविदित तथ्य है कि विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद प्राकृत में नहीं अपितु संस्कृत में ही हैं।[4]

भविष्य पुराण के अनुसार प्राकृत का प्रार्भव द्वापर के अन्त में हुआ।[5] यदि यह मान भी लिया जाय कि पहले भी कोई प्राकृत ग्राम्य भाषा रही होगी, तो भी उसका अपने प्रादुर्भाव के प्रारम्भिक काल में लिखने पढ़ने की भाषा होना सम्भव नहीं था। यही कारण है कि प्राकृत में कोई पुराना नाटक उपलब्ध नहीं। महानाटक, हनुमान्नाटक इसके प्रमाण है। अतः यह विचार भ्रामक एवं आधारहीन है कि पुराण पहले प्राकृत भाषा में थे। इस सम्बन्ध में हमें पुराण–परम्परा के प्रति भारतीय विचार–धारा को ही प्रामाणिक मानना चाहिए–

पुराणं सर्वशास्त्रणाम् प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यः वेदास्तस्य विनिर्गता।।

इस तथ्य से पुराणों की अति प्रचीन स्थिति सर्वथ सिद्ध है। पुराण नाम भी इसी तथ्य का प्रतिपादक है। यदि इससे कोई पुराना साहित्य होता तो उसे भी पुराण अर्थात पुराना का पर्याय प्राप्त होता।

पुराणों में मन्वन्तर एवं कल्पों का सिद्धान्त प्रतिपादित है। यह एक अत्यन्त गम्भीर विषय है। वस्तुतः काल प्रवाह अनन्त है। सूर्य सिद्धान्त, सिद्धान्त शिरोमणि, व्रह्मसिद्धान्त आदि में भी काल को व्यापक एवं अनन्त बताया गया है। वेदार्थ का प्रतिपादन, चतुर्दश विद्याओं का संग्रहण तथा शास्त्रीय तथ्यो को बोधगम्य रूप में प्रस्तुत करना पुराणों की पौराणिकता है। पौराणिकता तथा ज्योतिर्मय प्रवाह आत्म ज्ञान, ब्रह्माविद्या, सांख्य, योग

आदि दर्शन धर्मनीति, अर्थशास्त्र, ज्योतिष एवं अन्यान्य कला–विज्ञानों का सार तत्त्व समाविष्ट किए हुए है। इस प्रकार पुराण वास्तविक विश्व कोश हैं।

आर्ष वाङ्मय में पुराणों की विशेष महत्ता है। पुराणों के सम्बन्ध में श्रद्धानियोजित आलौकिक आख्यान उपलब्ध हैं। सब शास्त्रों की प्रवृत्ति पुराण से मानी गई है।[7] नारद पुराण के आनुसार सब कल्पों में एक ही पुराण था। जिसका विस्तार सौ करोड़ श्लोंकों में था। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष– इन चारों पुरुषार्थों का बीज मान गया है। समयानुसार लोक में पुराणों का ग्रहण न होता देख भगवान् विष्णु प्रत्येक युग में व्यास रूप से प्रकट होते हैं। वे प्रत्येक द्वापर में चार लाख श्लोकों के पुराण का संग्रह करके उसके अठारह विभाग कर देते हैं और भू लोक में उन्हीं का प्रचार करते हैं।[8]

नाम के अनुसार ही पुराण प्राचीनता को– जिसका सम्बन्ध ऐतिहासिकता से है– संकेतित करते हैं। इतिहास–पुराण को पंचम वेद निरुपित किया गया है।–

"इतिहास पुराणािनि पंचमो वेद उच्यते।"[9]

इतिहास एवं पुराण में पारस्परिक साम्यबोध है। पुराण प्रागैतिहासिक घटनाओं की ओर संकेत करते है जबकि इतिहास समीपवर्ती काल से सम्बद्ध घटनाओं का तथ्यपरक वर्णनी, वैदिक वाङ्मय में वर्णित कथाओं

का पल्लवन करके वैदिक अभिप्रेत को पुराणों में बोध गम्य रूप से प्रस्तुत किया गया है। इसलिए वेदार्थबोध के लिए पुराणों की महती उपादेयता है–

इतिहास पुराणाम्यां वेंद समुचवृहंयेत।

विमेत्यल्प श्रुताद् वेदी मामय प्रतरिष्यति।।

आर्य मनीषा ने वेदों को सदैव अत्युच्य सम्मान और महत्व प्रदान किया है। यहाँ तक कि वेदों के अर्थ को स्वतन्त्र रूप में निरुपति करने पर भी प्रतिबन्ध हैं। वेदार्थ को हृदयाङ.ग करने के लिए पुराणों को माध्यम बनाना चाहिये।

यो विद्याच्चतुरो वेदान साङ.ो पनिषदो द्विजः।

न चेत्पुराणं स विद्यान्नैव स स्याद विचक्षणः।।

नारद पुराण मे तो वेदार्थ की तुलना में पुराणार्थ को अधिक महत्व दिया गया है। कदाचित सामान्य व्यक्ति के लिए वेदार्थ दुबाहय तथा सरल कथात्मकता के कारण पुराणार्थ्र सुगम कान कर वेदार्थ की अपेक्षा पुराणार्थ को अधिक महत्व दिया गया है–

वेदार्थादधिकं मनये, पुराणार्थं वरानने

वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संज्ञमः।।[12]

पुराण के पांच लक्षण विविध पुराणों विशेषकर वायु, ब्रह्माण्य, विष्णु, वामन, कूर्मादि पुराणों में प्राप्त होते हैं। किरफल की कृति 'डास

पुराण पंचलक्षण' एवं पार्जीटर का एनिसिएण्ट इण्डियन हिंस्टारिकल ट्रोडशंत भी पंचलक्षण को ही मार्गदर्शन मानकर अपना शोध प्रस्तुत करता है।[13] पंचलक्षण निर्देशक श्लोक अधोप्रस्तुत है–

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।

वंशानुचरितं चैत पुराणं पंचलक्षणम्।।[14]

अर्थात सर्ग (सृष्टि) प्रतिसर्ग (प्रलय और उसके बाद की सृष्टि) वंश–वर्णन, मन्वन्तर वर्णन और वंशानुचरित(सूर्य, चन्द्र, कश्यप, दक्ष आदि के वंशों का सम्यक् निरुपण) पंचलक्षण कहलाता है।

भविष्य पुराण के अतिरिक्त पंचलक्षणात्मक श्लोक विष्णु पुराण के (3/6/24), मत्स्य पुराण (53/64), मार्कण्डेय पुराण (137/13), देवी भागवत पुराण (1/2/18), शिवपुराण वायवीय संहिता (1/14), अग्निपुराण(1/14), ब्रह्मवैवर्त पुराण (131/6), स्कन्दपुराण प्रभासखण्ड (284) और ब्रह्माण्ड पुराण पूर्व भाग (138), में भी समान रूप से प्राप्त होता है। अमर सिंह आदि कोशकारों ने भी प्रायः इन्ही लक्षणों को स्वीकार किया। किन्तु भागवत के द्वितीय स्कन्ध में दश लक्षणों का भी निर्देश प्राप्त होता है। भगवान के तीसरे से लेकर वारहवे स्कन्ध तक एक एक स्कन्धों में ये लक्षण निर्दिष्ट हैं,

अत्र सर्गो विसर्ग व्च स्थानंपोषणमूतयः

मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्ति राक्षयः।।

दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानानिह लक्षणम्।

वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चांजसा।।

पंचलक्षण पर अब तक अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने स्वतन्त्र ग्रन्थ या विसवृत निबन्ध लिखे हैं। इनमें एच.एच. विल्सन, विण्टरनित्स, रोजने रोचक, डब्ल्यू. किरफल (डास पुराण पंचलक्षण बोन जर्मनी से 1927 ई. में प्रकाशित), ए.एम.टी. जैक्सन, एफ. ई. पार्जीटर , ए. ब्लाऊ, इगर्टन, आर. सी. ह्वाजरा, विष्णु सुकथाकर आदि प्रसिद्ध हैं। सर्वप्रथम इसका सूत्रपात अमर सिंह ने 'नामालिंगानुशासन कोश' में किया था। स्टीफेन हिलियज लिविट ने सभी को देख कर उनका गम्भीर अध्ययन कर पुराण में कृति में इसकी गम्भीर समीक्षा की है। लक्षण पर विचार करते समय उन्होंने पन्द्रह पृष्ट लिख डाले और इसके द्विगु, द्वंद्व बहुब्रीहि, कर्मधारय आदि समासों के अर्थ पर भी पूर्ण विचार किया। साथ ही मोनियर विलियम के अंग्रेजी कोश को पूर्णतया उलट–पुलट कर लक्षण से आरम्भ होने वाले अट्ठावन समासों को तथा लक्षण शब्द पर समाप्त होने वाले एक सौ सात समासों को ध्यान से देखा। इसके अतिरिक्त थियोडार अफ्रेक्ट के " कैटलगस कैटलगोरम'8 बी. राघवन के "न्यू कैटलाग्स कैटलगस कैटलगोरम" और ए.सी. बर्नेल आदि के अनेक कैटलाग्स में आए हुए लक्षणों से आरम्भ होने वाले तथा समाप्त होन वाले ग्रन्थों को भी देखा। आफ्रेक्ट की सूची में उन्हे 133 ग्रन्थ मिले जिनमें 66 न्याय के 7 वेदान्त के,

6 धर्मशास्त्र के, 4 तन्त्र के और 4 शिल्पशास्त्र के थे। इसी प्रकार हस्त रेखा के 2, वास्तुशास्त्र क 3, अंलकार का 1, प्रतिमा का 1, रत्नपरीक्षा का 1 सामुद्रिक लक्षण का 1 ,आयुर्वेद के 6 और 9 ग्रन्थ ऐसे थे, जिनका वर्गीकरण नहीं है। कुछ छिटपुट ग्रन्थ भी हैं।[15] इनमें से 131 का मोनियर विलियम्स ने भी उल्लेख किया है।

स्टीफन इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अमरसिंह का तात्पर्य सर्ग–प्रतिसर्गात्मक, पंचलक्षण से नही, बल्कि उनकी दृष्टि में इतिहास आन्वीक्षिकी (वेदान्त एवं न्यायशास्त्र) , दण्डनीति (राजनीति एवं व्यवहार शास्त्र), आख्यायिका तथा अन्य पुराणों से है। किन्तु इस सम्बन्ध में उन्होंने कोई प्रामाणिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया और स्वयं अपने शोध पर संदेह प्रकट किया है कि उनका निष्कर्ष वास्तविकता से दूर भी हो सकता है। अतः अनुसंधित्सु की दृष्टि में उनका निष्कर्ष प्रमाणिक साक्ष्य के अभाव में मान्य नहीं प्रतीत होता। अमर सिंह बहुश्रुत एवं दिशाप्रमुख विद्वान थे, तर्थात्य पुराणों में सर्गादि पंचलक्षण अनेकबार पुर्नसर्जक हुए हैं। अतः इसे दृष्टिपंथ से टूट कर किसी के भी द्वारा अप्रमाणिक तथा अख्यात पंचलक्षण के सम्बन्ध में स्थापनाएं मान्य नहीं हो सकतीं। इसलिए अमरकोश के सभी व्याख्याताओं ने सर्गादि के पुराण प्रसिद्ध पंचलक्षण श्लोक को ही प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत किया है। पुराण के पंचलक्षण इस प्रकार है–

1. सर्ग (वायु पुराण)

वायु पुराण के अनुसार प्रकृति वामस, वैकृति, देव, तिर्यक,, भूत, कोमार, अनुग्रह, मिश्रित, इन नौ सर्गों के अतिरिक्त काश्यपीय, प्रजा तथा पितृ पर भी कई अध्यायों में चरचा की गई है।[16] सर्गों में विविध प्रकार से सृष्टि का वर्णन किया गया है।

2. प्रतिसर्ग

प्रतिसर्ग के लिए पुराणों में कहीं कहीं प्रति संचर और संस्था आदि पर्याय भी मिलते है। दूसरे कोशों में कहीं–कहीं प्रतिसर्ग का अर्थ सृष्टि–विस्तार के रूप में है, किन्तु पंचलक्षण में प्रतिसर्ग का तात्पर्य प्रलय से है कूर्म आदि पुराणों में नित्य नैमित्रिक प्राकृतिक और आत्यत्तिक भेद से प्रलय के चार भेद बताये गये है।[17] नित्य प्रलय का दूसरा नाम दैनन्दिन प्रलय है। इसका तात्पर्य प्रतिदिन के सूर्योदय और सूर्यास्त से हाने वाले उत्थान जागरण एवं शमन विश्राम से है। नैमित्तिक प्रलय का तात्पर्य मन्वन्तर के समय में समाप्त होने वाले सर्ग से है। चौदह मन्वन्तरों के बाद अर्थात कल्पनान्त में जो प्रलय होता है, उसे आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं। उसमें पहले निरन्तर 100 वर्षो तक कड़ी धूप रहती है। उससे सभी तृण गुल्म वृक्ष पर्वत आदि जल कर भस्म हो जाते हैं। फिर अनवरत 100 वर्षों तक वृष्टि होती है, जिससे समस्त पृथ्वी जल– प्लावित हो जाती है। इसके बाद लगातार 100 वर्षों तक तीव्र वायु के प्रवाह मे वह

जल वाष्प बन कर उड़ते–उड़ते कही भी बरसने का स्थान नही रहने के कारण सूख जाता है और फिर वायु का भी आघात प्रतिघात न रहने के कारण शान्त होकर आन्तरिक्ष में लीन हो जाता है। अन्ततोगत्ता आकाश का अहं तत्व मे अहं तत्व का महत्त तत्व से महत्तत्व का अव्यक्त तत्व से और अत्यक्त तत्व का सन्तत्त्व में विलय होकर नयी सृष्टि पुनः संभूत होती है। प्रायः इसी तथ्य का प्रतिपादन सभी पुरणों एवं दर्शनों में समास–विस्तार से मिलता है।

3 वंश

पुराणों का तीसरा लक्षण वंश वर्णन है। यह स्कन्द, ब्रह्मावैवर्त और भविष्य पुराण को छोड़कर अन्य सभी पुराणों में पर्याप्त विस्तार से प्रस्तुत है। भविष्य पुराण का प्रतिसर्ग पर्व प्रलय से सम्बन्धित न होकर कोशों के दूसरे अर्थ सृष्टि–विस्तार से सम्बन्धित है। इसमें सत्युग, त्रेता ,द्वापर के राजाओं का वर्णन संक्षेप में और कलिकालीन राजाओं का वर्णन विशेष विस्तार से किया गया है। पार्जीटर ने अपने 'कलिएज' तथा 'टिस्टोरिकल टष्शिस' में पुराणों के वर्णन को ही प्रमुखता दी है। बी.ए. स्मिथ ने 'अर्लीहिस्ट्री' तथा 'आक्सफोर्ड हिस्ट्री' में तथ्य–संग्रह का मुख्य आधार पुराणों को ही बनाया है। प्रख्यात अंग्रेज विद्वान विल्सन द्वारा पुराणों के प्रति संदेहास्पद टिप्पणी के प्रति स्मिथ साहब ने कठोर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उन्हें 'मूर्ख' जैसी उपाधि तक दे डाली।[18]

पार्जीटर का शोध मुख्यतय विल्सन और स्मिथ के बाद हुआ यद्यपि वह मार्कण्डय पुराण के अनुवाद में 1880 ई. से ही कार्य कर रहे थे। इधर के भारतीय विद्वानों ने उनके अनुवादों में बहुत सी भूलें निकाली हैं। फिर उनका यह प्रारम्भिक प्रयास होने के कारण उनका कार्य सराहनीय ही माना जाना चाहिए। बाद में उन्होंने विभिन्न राजवंशो पर पृथक–पृथक निबन्ध तथा पुस्तकें भी लिखी थीं। जिनमें नार्थ इण्डियन पांचाल डाइनेस्टी' विशेष प्रसिद्ध है। उनके बहुत से निबन्ध 'एसियाटिक रिसर्चेज और 'सोसायटी' के जनरलों में प्रकाशित हुए थे। संक्षेपतः पुराण के तीसरे लक्षण वंश में देवों जैसे सूर्य, चन्द्र आदि ऋषियों जैसे भृगु, वसिष्ठ, आदि विभिन्न मनुओं के समय की घटनाओं का वर्णन विशिष्ट वंश में उत्पन्न प्रख्यात नर नारियों से सबन्धित घटनाओं और चरित्र का वर्णन परिगण्य है।

4 मन्वन्तर

पुराणों का चौथा लक्षण मन्वन्तर कहा गया है। अब तक पुराण सम्बन्धी शोधों में मन्वन्तर के प्रति सम्भवतः इसकी अविश्वनीय प्रतीति के कारण उपेक्षा पूर्ण दृष्टि–कोण रहा है। इस अविश्सनीयता का मूल कारण यह प्रतीत होता है कि अंग्रेज विद्वान मात्र दो हजार वर्षों में ही सम्पूर्ण सृष्टि को ठूसना चाहते थे। वे ईसा से पहले किसी सभ्यता के अस्तित्व को स्वीकार नहीं कर पाते थे। पुराणों में किसी–किसी ऋषि की

लाखों वर्ष तक आयु बताई गई है। रामायण में दशरथ की आयु लगभग सत्तर हजार वर्ष निरुपित है। एक मनु का समय 43 करोड़ बीस लाख वर्ष बताया गया है। अमर कोशकार अमर सिंह ने तो एकहत्तर दिव्य युगों का एक मन्वन्तर माना है।[19] 14 मनुओं के कारण ये मन्वन्तर भी 14 प्रकार के हैं। पुराणों में इन मन्वन्तरों के वर्णन में जो तथ्य प्रदर्शित हैं– साम्प्रतिक परिवेश में उनका अस्तित्व समायोजित नहीं हो पाता। एक दिव्य युग में सत्य, त्रेता द्वापर तथा कलि ये चार युग होते हैं। एक युग में प्राय 43 लाख वर्ष होते है। अब तक छः मनु समाप्त हो चुके हैं और सातवें वैवस्वत मनु के समय में भी 27 दिव्य युग समाप्त होकर 28वें का कलियुग चल रहा है। बीते हुए मनुओं में स्वायंभुव मनु सर्वप्रथम हैं। इनकी कथा सभी पुराणों रामायण और महाभारत में विस्तार से निरूपित है वेदों में भी यद्वै किं च तद्भेषज भेषजतायाः, कथन काठक, मैत्रायणी और वैतरीय संहिताओं में बार–बार मिलता है। आज की मनुस्मृति इन्हीं के द्वारा प्रतिपादित कही जाती है। ध्रुव इन्हीं के पौत्र थे। इनके पुत्र प्रियव्रत ने पृथ्वी को सात द्वीपों में विभाजित किया था।[20] इसके बाद स्वारोचित, उत्तम, रैवत, तामस आदि मन्वन्तर समाप्त हुए। इन सभी मन्वन्तरों की चरचा मार्कण्डेय पुराण में मिलती है। इस पुराण में एक एक मनु का कई–कई अध्यायों में चरित निरूपित है।

वस्तुतः ऋषियों का नाम दिव्य एवं गम्भीर था। वे काल के

रहस्योद्घाटन में निरत रहते थे। ऋषिजन युग और मन्वन्तर को भी महत्वहीन मानकर कल्पों को ही कुछ महत्व दिये थे। और उनमें भी शिव और विष्णु के चरित्र थे। यही वस्तुतः पुराणों का मूल दृष्टिकोण है। भौतिक इतिहास की दृष्टि से पुराणों के आख्यानों की भी मीमांसा करना वस्तुत बुद्धि और श्रद्धा को एक ही पैमाने से नापने के समान है।

5 वंशानुचरित

पुराणों का पांचवा लक्षण वंशानुचरित वंशवर्णन का ही पुनर्विस्तार है। वंश कीर्तन में जहाँ प्रायः केवल नाम आता है, वहा वंशानुचरित में उन राजादि का थोड़ा बहुत चरित्र भी सम्मिलित कर दिया गया है। 'गरुण पुराण' तथा कल्कि पुराण में वंशानुचरित नहीं है। केवल सूर्य चन्द्रादि आदि वंश के लोगों का नाम कीर्तन मात्र आया है। वंश वर्णन के तथा विष्णु पुराण के श्लोक परस्पर मिलते हैं।

पार्जीटर के 'नार्थ इण्डियन पांचाल डाइनेस्टी' 'कलि एज' और 'एशियण्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडिशंस– ये तीनों ग्रन्थ पौराणिक वंशानुचरितों पर ही प्रकाश डालते हैं। अन्त में इसी ने चल कर भारत के प्राचीन इतिहास का रूप धारण कर लिया। इस वंशानुचरित का मूलरूप ब्राह्मण ग्रन्थों में भी मिलता है। वंशब्राह्मण नाम का एक स्वतन्त्र ब्राह्मण ही है। दूसरे ब्राह्मणों में वंशाध्याय नाम के पृथक अध्याय निर्दिष्ट हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में ऋषि–वंशों का भी वर्णन है। पर स्कन्द– मत्स्यदि को छोड़कर

शेष पुराणों में केवशल राजवंशों का वर्णन है। राजवंशो में भी मुख्यतया सूर्य और चन्द्र वंशो का ही चरित्र वर्णित है। भागवत में जो दश लक्षण बतलाये गए हैं, उसमें स्थान, रक्षा, मन्वन्तर ईशानुकथा वृत्ति आदि छः लक्षणों का वंशानुचरित में ही समावेश हो गया है। कीटलीय अर्थशास्त्र की जयमंगला व्याख्या में सृष्टि, प्रवृत्ति, संहार, धर्म और मोक्ष–थे पांच लक्षण निर्दिष्ट हैं, जिसमें वंशानुचरित का उल्लेख ही नहीं है।

आधुनिक अनुसन्धायकों के अनुसार इतिहास का मूल कारण होने से वंशानुचरित अत्यन्त महत्व का अंश रहा है। इसलिए प्रायः सभी पाश्चात्य इतिहासकारों ने इस अंश को लेकर अनेक निबन्ध ग्रन्थ और शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किए। इसका सर्वप्रथम आरम्भ रिफिक्श्टन ने किया था। फिर पार्जीटर स्मिथ आदि ने सभी पुराणों के पाठों को एकत्र कर उस पर टिप्पणियां लिख कर इतिहास का रूप दिया।[21]

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त लक्षणों से युक्त प्रागैतिहासिक वेद–शास्त्र तथा नीति सम्मत आर्ष आख्यान पुराण हैं। परवर्ती रचनाधर्मियों ने अपनी कृतियों में समकालीन परिवेश और परिस्थितियों को प्रगतिमूलक प्रभु विष्णु जीवन्तता प्रदान करने के उपक्रम में पौराणिक पात्रों तथा पौराणिक कथ्य और विमर्श उपयोग इन और कृतियों में इस पौराणिक सामग्री का आस्तित्व ही पौराणिकता है।

'पुराण' धातु में ट्यु (अन) प्रत्यय के संयोग से पुराण शब्द

की व्युत्पत्ति होती है पुराण में निरुवत में पुराण अर्थित करने का उपक्रम इस प्रकार है।

पुराभवं पुराणम।

पुराणम– आख्यानम यस्मात पुराहि अनति तद्पुराणम्।

पुरार्थेषु आनेमति इति पुंराणम

पुरानवम पुराणम।[22]

अर्थात जो पहले से है– प्राचीन है वह पुराण है। इसी प्रकार वायु पुराण के प्रथम अध्याय में पुराण शब्द की व्युत्पत्ति निरूपित है। पुरा+अनन। पुरा का अर्थ–पहले अनन का अर्थ श्वास लेना, अर्थात जिसका अस्तित्त्व सबसे पहले था।[23]

विश्व तथा मानव कल्याण के लिए जो विचार कृत्य, पदार्थ तथा अवधारणायें उचित और उपयुक्त मानी गयी उनकी परिगणना के अन्तगर्त आर्य मनीषा ने विश्व के जड़ तथा चेतन पदार्थों को दो भागों में बाँट दिया था। विश्व तथा मानवता के हित में जो कुछ था वह धर्म और जो विरूद्ध था वह अधर्म कहा गया है। इस सबकी गहन मीमांस तथा पड़ताल हुई। एक ही कृत्य अथवा वस्तु परिस्थिति भेद से धर्म अथवा अधर्म में रूपान्तरित हो जाता है। अतः धर्म और अधर्म के सम्बन्ध सावधान निर्णायक बुद्धि की अपरिहार्यता पर बल दिया गया है। पुराणों में प्राचीन

नायकों तथा नायिकाओं (देव, देवी ऋषि–मुनि तथा राजा–रानी) के उत्तम चरित्र को धर्म तथा एन्द्रिय भोगों में लिप्त परपीड़क चरित्रों (दैत्य भोगासक्त नर नारियों) को अधर्म के प्रतिनिधियों के रूप में देखा गया । आर्य मनीषा का सांस्कृतिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान वेदों, शास्त्रों, उपवेदों, स्मृतियों में अनुस्यूत है। वैदिक अवधारणायें, मान्यतायें और स्थापनायें न केवल मानव अपितु निखिल ब्रह्मण्ड के लिये कल्याणप्रद है अतः ये धर्म हैं और इसके विपरीत जो सबके लिए दुःखप्रद है वह अधर्म है। धर्म और अधर्म की सरल कथात्मक प्रस्तुतियों से समरूद्ध पुराण वैदिक अस्मिता के रत्नागार हैं– यही पुराण का धार्मिक अर्थ है तथा शस्त्रीय अभिव्यक्तियों तथा अवधारणाओं से अपरिचित लोक–मानस शताब्दियों से पुराणों के आदर्श आख्यानों के आधार पर अपने अर्न्तस्पटल पर उचित अनुचित, अन्तत्स्परल अच्छा–बुरा पुण्य पाप, नैतिक–अनैतिक तथा धर्म–अधर्म का सार तत्व ग्रहण किए हुए है। उसके लिए देवी देवताओं राजा रानियों दैत्यों तथा पापात्माओं की पूर्वघटित घटनाओं से युक्त पवित्र ग्रन्थ पुराण हैं, जिनमें जीवन की प्रत्येक समस्या का हल है

(ख) प्रमुख पुराण : संक्षिप्त परिचय

उपनिषद् ग्रन्थों[24] और अथर्वसंहित[25] में पुराणों का उल्लेख मिलता है। इससे हम इस तथ्य का उद्‌घाटन करने में समर्थ होते हैं कि पुराणों

की चरचा किसी न किसी रूप में थी। बहुत से आधुनिक विद्वानों ने भी इस विषय पर अनुसंधानात्मक आलोक डालने का प्रयास किया है। उनमें उल्बेरूनी महोदय की पुस्तक में पुराणों की सूची[26] इस प्रकार दी गयी है।

1– आदि पुराण

2– मत्स्य पुराण

3– कूर्म पुराण

4– वाराह पुराण

5– नृसिंह पुराण

6– वामन पुराण

7– वायु पुराण

8– नन्द पुराण

9– स्कन्द पुराण

10– आदित्य पुराण

11– सोम पुराण

12– साम्ब पुराण

13– ब्रह्माण्ड पुराण

14– मार्कण्डेय पुराण

15– तार्क्ष्य पुराण

16– विष्णु पुराण

17— ब्रह्म पुराण

18— भविष्य पुराण

उपर्युक्त सूची के सम्बन्ध में अल्बेरूनी ने लिखा है कि मैने इन पुराणों का नाम सुना है और इनमें मत्स्य, आदित्य तथा वायु पुराण के कुछ अंशों को देखा भी है।

उपर्युक्त सूची के अतिरिक्त पुराणों की एक और सूची प्रस्तुत करते हुए अल्बेरुनी ने भविष्य पुराण को अठारवें स्थान से उठाकर नवें स्थान पर रख दिया है। इस सूची को उन्होंने विष्णु पुराण के अधार पर प्रस्तुत किया है, [28] जो अधोप्रस्तुत है—

1— ब्रह्म पुराण

2— पद्म पुराण

3— विष्णु पुराण

4— शिव पुराण

5— श्री मदभागवत पुराण

6— नारद पुराण

7— मार्कण्डेय पुराण

8— अग्नि पुराण

9— भविष्य पुराण

10— ब्रह्मवैवर्त पुराण

11– लिंग पुराण

12– वाराह पुराण

13– स्कन्द पुराण

14– वामन पुराण

15– कूर्म पुराण

16– मत्स्य पुराण

17– गरूण पुराण

18– ब्रह्माण्ड पुराण

नारद पुराण के चतुर्थ पाद में पुराणों के सम्बन्ध में कथात्मक उल्लेख इस प्रकार मिलता है। एक समय ब्रह्मा जी के पुत्र मरीचि ने ब्रह्मा जी से पुराणों के बीज, लक्षण, प्रमाण, वक्ता, और श्रोता के सम्बन्ध में जिज्ञास प्रकट की। ब्रह्म जी ने मरीचि को बतायाकि सब कल्पों में एक ही पुराण था, जिसका विस्तार सौ करोड़ श्लोकों में था। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष–चारों पुरुषार्थों का बीज माना गया है। सब शास्त्रों की प्रवृत्ति पुराण से ही हुई है, अतः समयानुसार लोक में पुराणों का ग्रहण न होता देख परम मनीषी भगवान् विष्णु प्रत्येक युग में व्यास रूप से प्रकट होते हैं। वे प्रत्येक द्वापर में चार लाख श्लोकों के पुराण का संग्रह करके उसके अठारह विभाग कर देते हैं और भू–लोक में उन्हीं का प्रचार करते हैं। आज भी देवलोक में सौ करोड़ श्लोको का विस्तृत पुराण विद्यमान है।

उसी के सार भाग का चार लाख श्लोकों द्वारा वर्णन किया जाता है। ये सार भाग अठारह विभागों में अठारह पुराणों के रूप में प्रत्यक्ष है। इन अठारह पुराणों की सूची इस प्रकार है–

1– ब्रह्म पुराण

2– पद्‌म पुराण

3– विष्णु पुराण

4– वायु पुराण

5– श्री मदभागवत पुराण

6– नारद पुराण

7– मार्कण्डेय पुराण

8– अग्नि पुराण

9– भविष्य पुराण

10– ब्रह्मवैवर्त पुराण

11– लिंग पुराण

12– वाराह पुराण

13– स्कन्द पुराण

14– वामन पुराण

15– कूर्म पुराण

16– मत्स्य पुराण

17– गरूण पुराण

18– ब्रह्माण्ड पुराण

पुराणों का सांकेतिक परिचय अधोप्रस्तुत है–

ब्रह्म पुराण

यह सब पुराणों में प्रथम तथा नाना प्रकार के आख्यानों और इतिहास से परिपूर्ण है। इसकी श्लोक–संख्या दस हजार है। इस पुराण में देवताओं असुरों और दक्ष आदि प्रजापतियों की उत्पत्ति का भी वर्णन है। इसके अतिरिक्त सूर्य–वंश चन्द्र–वंश श्री रामचन्द्र वंश जी की अवतार कथा, भगवान कृष्ण की अवतार कथा, सम्पूर्ण द्वीपों, वर्षों पाताल, स्वर्ग नरक, पार्वती की उत्पत्ति तथा विवाह कथा तथा एकाक्रम क्षेत्र का वर्णन इस पुराण के पूर्व भाग में है उत्तर भाग में तीर्थ यात्रा, श्री कृष्ण चरित्र का विस्तृत उल्लेख जनलोक का वर्णन पितरों की श्राद्ध विधि तथा आश्रम धर्मों का निरूपण वैष्णन धर्म का प्रतिपादन युगों का निरूपण, प्रलय का वर्णन, योगो का निरूपण सांख्य सिद्धान्त का प्रतिपादन ब्रह्मवाद का दिग्दर्शन तथा पुराण की प्रशंसा आदि आये हैं। इस प्रकार दो भागों से युक्त ब्रह्मा–पुराण सूत और शौनक ऋषि के संवाद पर आधारित भारतीय पौराणिक का प्रस्थान है।[30]

पद्म पुराण

पद्मपुराण में पांच खण्ड हैं। इसमें महर्षि पुलस्त्य ने भीष्म

को सृष्टि आदि के क्रम से नाना प्रकार के उपाख्यान और इतिहास आदि के साथ विस्तारपूर्वक धर्म का उपदेश दिया है इस पुराण के अन्तगर्त 'सृष्टिखण्ड' में पुस्कर तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन है। जिसमें ब्रह्मा यज्ञ की विधि, वेद पास आदि का लक्षण विधिवत निरूपित है। इसके अतिरिक्त नाना प्रकार कें दोनों और व्रतों का पृथक–पृथक निरूपण, पार्वती का विवाह सुखाय व विस्तृत

उपाख्यान तथा गौ आदि का महात्म्य, कालकेय आदि दैत्य के वध की कथा तथा ग्रहों के पूजन और दान की विधि बतायी गयी है। इस पुराण के 'भूमि खण्ड ' में पिता–माता की पूज्यनीयता के विषय में शिव शर्मा की प्राचीन कथा, सुव्रत की कथा, वृत्रासुर के वध की कथा, पृथु , वेन और सुनीथा की कथा, सुकला का उपाख्यान, धर्म का आख्यान, नहुष की कथा, ययाति–चरित्र गुरुतीर्थ का निरुपण, राजा और जैमिनि का संवाद अशोक सुन्दरी की कथा, दुण्ड दैत्य का बध, कामोदा की कथा, विहुण्ड दैत्य का बध, महात्मा च्यवन के कृपा कुंजल का संवाद, सिद्धोपाख्यान तथा इस खण्ड के फल का विचार सुगुम्फित है। इस पुराण के तीसरे खण्ड 'स्वर्गखण्ड' में सौति तथा महर्षियों के संवाद रूप से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, पृथ्वी सहित सम्पूर्ण लोकों की स्थिति, तीर्थों का वर्णन, नर्मदा की उत्पत्ति कथा, कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों की कथा, कालिन्दी की कथा, काशी–माहात्म्य, गया और प्रयाग का माहात्म्य, वर्ण और आश्रम के अनुकूल

कर्मयोग का निरुपण, पुण्यकर्म की कथा को लेकर व्यास जैमिनि संवाद, समुद्र– मंथन की कथा, व्रत सम्बन्धी उपाख्यात, भीष्म पंचक (कार्तिक अन्तक पांच दिन) का माहात्म्य तथा सर्वापराध निवारक स्तोत्र अनुस्यूत हैं। इस पुराण का चतुर्थ खण्ड 'पातालखण्ड है' जिसके अन्तर्गत रामाश्वमेध प्रसंग में राम का राज्याभिषेक, अगस्त्य आदि महर्षियों का आगमन, पुलस्त्य वंश का वर्णन अश्वमेद्यीय अश्व का वर्णन, अनेक राजाओं की पुण्यमयी कथा, जगन्नाथ जी की महिमा का निरूपण, वृन्दावन का 'सर्वपापनाशक महात्म्य, कृष्णावतार धारी श्री हरि की नित्य लीलाओं का कथन, वैशाख स्नान की महिमा स्नानदान और पूजन का फल, भूमि वाराह–संवाद यम और ब्रह्माण्ड की कथा, राजपूतों का संवाद, श्री कृष्ण स्तोत्र का निरूपण, शिवशम्भु–समागम, दीधीचि की कथा, भष्म का अनुपम माहात्म्य, उत्तम शिव–माहात्म्य, देव रात सुतोपाख्यान, पुराणवेता की प्रशंसा, गौतम–उपाख्यान, शिवगीता तथा कालान्तर में भरद्वाज–आश्रम में श्री रामकथा का सन्निवेश है। पद्म पुराण के अन्तिम और पांचवे खण्ड– 'उत्तरखण्ड' में भगवान शिव के द्वारा गौरी देवी के प्रति कहा हुआ पर्वतोपारख्यान, जालन्धर की कथा, श्री शैल आदि का माहात्म्य राजा सगर की कथा, गंगा, प्रयाग, काशी और गया का महात्म्य, चौबीस एकादशियों का पृथक–पृथक महत्व, विष्णु सहस्रनाम का वर्णन, कार्तिक व्रत का माहात्म्य, मार्घ–स्नान का फल, जम्बूद्वीप के तीर्थों की महिमा,

साबरमती का माहात्म्य नरसिं होत्पत्ति कथा देवशर्मा उपाख्यान, गीता माहात्म्य, भक्ति का आख्यान, श्री मदभागवत माहात्म्य, इन्द्रप्रस्थ महिमा, मंत्रत्ररत्न था कथन त्रिपाद विभूति का वर्णन, मत्स्य आदि अवतारों की कथा, अष्टोत्तर शत दिव्य राम नाम माहात्म्य का तथा मृगु द्वारा भगवान विष्णु के वैभव की परीक्षा का उल्लेख है।

विष्णु पुराण

इस पुराण की श्लोक संख्या तेईस हजार है। इसके 'प्रथम अंश' में आदि कारण सर्ग, देवता आदि की उत्पत्ति, समुद्र मंथन की कथा, दक्षाआदि के वंश का वर्णन, धुव्र तथ पृथु के चरित्र, तरु का उपाख्यान, व्रह्मा जी द्वारा देव, तिर्यक, मनुष्य आदि वर्गों के प्रधान–प्रधान व्यक्तियों को पृथक –पृथक राज्याधिकार दिए जाने का वर्णन है। 'द्वितीय अंश' के अन्तगर्त प्रियव्रत के वंश का वर्णन, द्वीपों और वर्षों का वर्णन, पाताल और नरकों का वर्णन, सात स्वर्गों का निरुपण पृथक–पृथक लक्षणों से युक्त सूर्य आदि ग्रहों की गति का प्रतिपादन, भरत चरित्र मुक्ति–मार्ग–निदर्शन तथा निदाघ एवं ऋभु का संवाद, आख्यायित है। 'तीसरे अंश' में मन्वन्तरों का वर्णन, वेद व्यास का अवतार, सगर और और्व के संवाद में सर्वधर्म–निरूपण, श्राद्धकला, वर्णाश्रम धर्म, सदाचार–निरूपण तथा महामोह की कथा का वर्णन है। 'चतुर्थ अंश' में सूर्य वंश की कथा चन्द्रवंश का वर्णन तथा नाना प्रकार के राजाओं का वृत्तान्त है। 'पंचम अंश में श्री कृ

ष्णावतार विषयक प्रश्न, गोकुल की कथा तथा कृष्णान्वन्तर से संबंधित विविध लीलाओं का निरुपण है। 'पष्ट अंश; में कलियुग–चरित्र, चार प्रकार के महाप्रलय तथा केशिध्वज द्वारा खणिक्य जनक, को ब्रह्माज्ञान का उपदेश इत्यादि विषय हैं। इसके बाद विष्णु पुराण का उत्तर भाग प्रारम्भ होता है, जिसमें शैनिन आदि ऋषियों द्वारा पूछें जाने पर सूत जी ने विष्णु धर्मान्तर' नाम से प्रसिद्ध नाना प्रकार के धर्मों की कथायें कही हैं। अनेकानेक, पुण्य–व्रत यम–नियम, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र वेदान्त, ज्योतिष, वंश वर्णन के प्रकरण, स्तोत्र मन्त्र तथा सब लोगों का उपकार करने वाली नाना प्रकार की विद्यायें सुनायी है।[32]

वायु पुराण

वायु पुराण में चौबीस हजार श्लोक हैं। यह पुराण 'पूर्व' और 'उत्तर ' दो भागों से युक्त है। इस पुराण में प्रमुख रूप से वायु देव ने श्वेतकल्प के प्रसंग में विविध धर्मों का उपदेश किया है। पूर्वभाग में सर्ग आदि के लक्षणों की विस्तृत चरचा, विभिन्न मन्वन्तरों में राजाओं का वंश–वर्णन, गंगासुर की बध–कथा, मास–महात्म्य के अन्तगर्त माघ–मास की विशेष महत्ता का प्रतिपादन, दान तथा राज–धर्म पर प्रकाश, पृथ्वी, पाताल, दिशा और आकाश में विचरने वाले जीवों तथा व्रत आदि के सम्बन्ध में निर्णय के प्रसंग है। उत्तर भाग में नर्मदा के तीर्थों का वर्णन, विस्तृत शिव–संहिता, नर्मदा के विशेष महत्व का प्रतिमादन है।

श्रीमदभागवत पुराण

बारह शाखाओं से युक्त इस लोकप्रिय पुराण में अठारह हजार श्लोक हैं। इसमें भगवान के विश्व रूप का प्रतिपादन है। इसके पहले स्कन्ध में सूत और शौनकादि ऋषियों के समागम का प्रसंग उठाकर व्यास जी तथा पाण्डवों के चरित्र का वर्णन किया गया है। इसके बाद परीक्षित के जन्म से लेकर प्रायोपवेशन तक की कथा कही गयी है। द्वितीय स्कन्ध में ब्रह्म–नारद संवाद में भागवान के अवतार सम्बन्धी अमृतोप चरित्रों का वर्णन है। फिर पुराण के लक्षण बनाये गए हैं। तत्पश्चात तीसरे स्कन्ध में सृष्टि के कारण तत्वों की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला गया है। फिर विदुर चरित्र, मैत्रेय जी के साथ विदुर समागम, परमात्मा ब्रह्म से सृष्टिक्रम और कपिल ऋषि द्वारा प्रतिपादित सांख्य दर्शन का निरुपण है। चौथे स्कन्ध में सतीचरित्र, ध्रुवचरित्र, पृथुआख्यान, राजा प्राचीन ब्रहषि–कथा का चित्रांकन है। पांचवें स्कन्ध में राजा प्रियव्रत और उनके पुत्रों का चरित्र ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत विभिन्न लोकों का वर्णन, नरकों की स्थिति का निरुपण है। सातवें स्कन्ध में अजामिल–चरित्र, दक्ष प्रजापति द्वारा विरचित सृष्टि वर्णन, वृत्रासुर की कथा, मरुद्‌गणों का जन्म प्रमुख रूप से वर्णित है। आठवें स्कन्ध में मन्वन्तर निरुपण के प्रंसग में गजेन्द् मोक्ष की कथा, सागर–मंथन, बलिवृतान्त तथा मत्स्यावतार के प्रसंग हैं। नवें स्कन्ध में सूर्य वंश तथा चन्द्र वंश का वंशानुचरित

विषयकविस्तृत है। दसवें स्कन्ध में श्रीकृष्ण का बालचरित्र कुमारावस्था की लीलायें, ब्रज–निवास, किशोर कृष्ण की लीलायें, मथुरा–प्रवास, युवावस्था, द्वारका–निवास और भू भारहरण का मनोरम निरूपण है। इस स्कन्ध को निरोध विषयक माना गया है। एकादश स्कन्ध जिसे मुक्ति विषयक कहा गया है– में नारद–वसुदेव संवाद यदु दत्तात्रेय संवाद कृष्ण युद्ध संवाद, पारस्परिक कलह से यदुकुल का विनाश वर्णित है। आश्रम विषयक बारहवें स्कन्ध में भविष्य के राजाओं का वर्णन, कलिधर्म का निर्देश, परीक्षित के मोक्ष का प्रसंग वेदों की शाखाओं का विभाजन, मार्कण्डेय जी की तपस्या, सूर्य की विभूतियों का वर्णन, भगवती विभूति का वर्णन तथा पुराणों में श्लोक संख्या का प्रतिपादन किया गया है।[34]

नारद पुराण

बृहत्कल्प की कथा का आश्रय लेकर नारद पुराण पचीस हजार श्लोकों में निबद्ध है। इसमें 'पूर्वभाग' के प्रथम पाद में पहले सूत–शौनक–संवाद है, फिर सृष्टि का संक्षेप में वर्णन है। तत्पश्चात महात्मा सनक द्वारा नाना प्रकार के धर्मों की कथायें कही गयी हैं। पहले पाद का नाम 'प्रवृत्ति धर्म है। दूसरा वाद 'मोक्ष धर्म' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें माक्ष के उपायों का वर्णन है। वेदांगों का वर्णन और शुकदेव जी की उत्पत्ति का प्रंसग विस्तार के साथ आया है। तृतीय पाद में सनत्कुमार मुनि ने नारद जी को माहात्म्य वर्णित 'पशुपाशविमोक्ष' का उपदेश दिया

है। फिर गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव और शक्ति आदि के मन्त्रों का शोधन, दीक्षा मन्त्रोंद्धार पूजन, प्रयोग, कवच, सहस्रनाम और स्तोत्र का क्रमशः वर्णन किया है। तदन्तर चतुर्थ पाद में सनातन मुनि ने नारद जी से पुराणों का लक्षण, उनकी श्लोक–संख्या तथादान का पृथक–पृथक फल बताया है। साथ ही उन दानों का अलग–अलग समय भी नियत किया है। इसके बाद चैत्र आदि सब मासों में पृथक–पृथक प्रतिपदा आदि तिथियों का सर्वपापनाशक व्रत बताया है। यह 'बहदाख्यान' नाम पूर्व भाग बताया गया है। इसके उत्तर भाग में एकादशी व्रत के सम्बन्धों में फिर हुए प्रश्न के उत्तर में महर्षि वशिष्ठ के साथ राजा मान्धाता का संवाद प्रस्तुत किया गया है। तदन्तर राजा रूक्मांगद की कथा, मोहिनी की उत्पत्ति, अनेक कर्म, पुरोहित वसु का मोहिनी के लिए शाप, फिर शाप से उसके उद्धार का कार्य, गंगा की पुण्यतम कथा, गया यात्रा–वर्णन, काशी–माहात्म्य, पुरुषोतम क्षेत्र का वर्णन, उस क्षेत्र की यात्रा–विधि, प्रयाग, कुरुक्षेत्र और हरिद्वार का माहात्म्य, कामोदा की कथा, बदरी तीर्थ का माहात्म्य, कामाक्षा और प्रभास क्षेत्र की महिमा, पुष्कर क्षेत्र का माहात्म्य गौतम मुनि का आख्यान वेदपाद स्तोत्र गोकर्ण क्षेत्र का माहात्म्य, लक्ष्मण जी की कथा, सेतु माहात्म्य कथा नर्मदा के तीर्थों का वर्णन, अवन्तीपुरी की महिमा, वसु का ब्रह्मा के निकट जाना फिर मोहिनी का तीर्थों में भ्रमण आदि विषय है।[35]

मार्कण्डेय पुराण

यह पुराणं नौ हजार श्लोकों का है, जिसमें पक्षियों को प्रवचन का अधिकारी बनाकर उनके द्वारा सब धर्मों का निरुपण किया गया है। इसमें पहले मार्कण्डेय मुनि के समीप जैमिनि के प्रश्न का वर्णन है। फिर धर्मसंज्ञक पक्षियों के जन्म की कथा कही गई है। फिर उनके पूर्व जन्म की कथा और देवराज इन्द्र के कारण उन्हें शापरूप विकार की प्राप्ति का कथन है। तदन्तर बलभद्र जी की तीर्थ यात्रा, द्रौपदी के पांचों पुत्रों की कथा, राजा हरिश्चन्द्र की कथा, आद्री और बक पक्षियों का युद्ध पिता और पुत्र का उपाख्यान, दन्तात्रेय की भी कथा, विस्तृत आख्यान सहित ह्द्वैय चरित्र, अलर्कचरित्र के साथ मदालसा की कथा नौ प्रकार की सृष्टि का वर्ण्न, कल्पान्त काल का निर्देश यक्ष, सृष्टि निरुपण, रूद्र आदि की सृष्टि, द्वीपचर्या का वर्णन, मनुओं की अनेक कथाओं का कीर्तन और उन्ही में दुर्गा जी की पुण्यकथा है। आठवें मन्वन्तर के प्रसंग में कही गई गई है। तत्पश्चात तीन वेदों के तेज से प्रणव की उत्पत्ति, सूर्य देव का जन्म की कथा, वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन, वत्सप्री का चरित्र, महात्मा खनित्र की पुण्यमयी कथा, राजा अविक्षत का चरित्र, किमिच्छिक व्रत का वर्णन, नरिष्यन्त चरित्र, दूक्ष्वाकु, नल तथा श्री रामचन्द्र जी की कथा, कुशवंश का वर्णन, सोम–वंश का वर्णन, पुरुरवा की कथा नहुष–वृन्तान्त, ययाति का चरित्र, यदुवंश का वर्णन, श्रीकृष्ण की विविध लालायें सब

अवतारों की कथा सांख्य–मत का वर्णन, प्रपंच के मिथ्यात्त्व का वर्णन मार्कण्डेय जी का चरित्र तथा पुराश्रवण आदि का फल ये सब विषय है।[36]

अग्नि पुराण

पन्द्रह हजार श्लोकों में निबद्ध अग्निपुराण में अग्निदेव द्वारा महर्षि वसिष्ठ के प्रति ईशान–कल्प का वर्णन किया गया है। इसमें पहले पुराण विषयक प्रश्न हैं, फिर सब अवतारों की कथा कही गई है। तत्पश्चात सृष्टि का प्रकरण तथा विष्णु–पूजा आदि का वर्णन है। तदन्तर अग्निकार्य मन्त्र, मुद्रादिलक्षण, सर्वदीक्षा विधान और अभिषेक निरुपण है। इसके बाद मण्डल आदि का लक्षण, कुशामापार्जन, पवित्रारोपणविधि, देवालय विधि शालग्राम आदि भी पूजा तथा मूर्तियों के पृथक–पृथक चिन्ह्र का वर्ण है। फिर व्यास आदि का विधान, प्रतिष्ठा, पूर्तकर्म, विनायक आदि का पूजन, नाना प्रकार की दीक्षाओं की विधि, सर्वदेव प्रतिष्ठा, ब्रह्माण्ड –वर्णन, गंगादि तीर्थों का माहात्म्य, द्वीप और वर्ष का वर्णन, उपर और नीचे के लोकों की रचना, ज्यातिश्चक्र का निरुपण ज्योतिशास्त्र, युद्धजयार्णव, षट्कर्म मन्त्र यन्त्र, औषध समूह, कुन्जिका आदि की पूजा, छः प्रकार की न्यास विधि, कोटिसेम विधि मन्वन्तर निरुपण, आश्रम धर्म, श्राद्धकल्पविधि ग्रहयज्ञ श्रोतस्मार्त कर्म, मासिकव्रत का निर्देश उत्तकंदोपदान विधि नव व्यूह पजन, नरक निरुपण व्रतों और दानों का विधि, का प्रतिपादन, नाडीचक्र का संक्षिप्त वर्णन, संध्यविधि, गायत्री के अर्थ का निर्देश, लिंग

स्तोत्र, राज्याभिषेक मन्त्र का प्रतिपादन, राजाओं के धार्मिक कृत्य, स्वप्न विचार प्रसंग, शनुन–निरुपण मण्डल आदि का निर्देश, रत्नदीक्षा विधि, रामोक्त नीति का वर्णन रत्नों के लक्षण धनुर्विद्या व्यवहार दर्शन देवासुर संग्राम कथा , आयुर्वेद निरुपण, गज आदि की चिकित्सा, विविध प्रकार की शान्ति छन्द शास्त्र साहित्य एकाक्षर आदि कोश प्रलय का लक्षण वेदान्त निरुपण योगशास्त्र, ब्रह्मज्ञान तथा पुराण श्रवण का फल इन विषयों का प्रतिपादन हुआ है।

भविष्य पुराण

भविष्य पुराण की श्लोक संख्या चौदह हजार है। इसमें ब्रह्मा–विष्णु–महेश सबकी समता का प्रतिपाद किया गया है। ब्रह्म सर्वत्र सम है। गुणों के तारतम्य से उसमें विषमता प्रतीत होती है। इस पुराण में पहला पर्व 'ब्रह्मा पर्व' के नाम से प्रसिद्ध है। मूल शौनक संवाद में पुराणविषयक प्रश्न हैं। इसमें अधिकतर सूर्यदेव का ही चरित्र है। इसमें सृष्टि आदि के लक्षण बताये गये हैं। शास्त्रों का तो यह सर्वस्वरूप है। इसमें पुस्तक, लेखन और लेख्य का भी लक्षण दिया गया है। सब प्रकार के संस्कारों का भी लक्षण बताया गया है। पक्ष की आदि सात तिथियों के सात कल्प कहे गए हैं। अष्टमी आदि तिथियों के शेष आठ कल्प 'वैष्णव पर्व' में बताए गए हैं। ''शैवपर्व'' ब्रह्मपर्व से भिन्न कथायें है। 'सौरपर्व' में अन्तिम कथाओं का सम्बन्ध देखा जाता है। तत्पश्चात 'प्रतिसर्ग' पर्व है,

जिसमें पुराण उपसंहार का वर्णन है। यहा नाना प्रकार के उपाख्यानों से युक्त पांचवा पर्व है। इन पांच पर्वों से पहले में ब्रह्मा जी की महिमा का आधिक्य है। दूसरे और तीसरे पर्वों में धर्म और मोक्ष विषय को लेकर क्रमशः भगवान विष्णु तथा शिव की महिमा का वर्णन है। चौथे पर्व में सूर्यदेव की महिमा का प्रतिपादन किया गया है। अन्तिम पांचवे अथवा पांचवे अथवा प्रतिसर्ग में सब प्रकार की कथायें है। महर्षि व्यास ने इस पर्व का भविष्य को कथाओं के साथ उल्लेख किया है।

ब्राह्मवैवर्त पुराण

इस पुराण में देवर्षि नारद की प्रार्थना पर भगवान स्रावर्णि ने सम्पूर्ण पुरामोक्त विषय था उपादेश किया है। व्यास जी ने बह्मवैवर्त पुराण के चार भाग किये है– ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड, गणेश खण्ड और श्रीकृ ष्णखण्ड। इन चारों खण्डों से युक्त यह पुराण अठारह हजार श्लोकों में निबद्ध है। सूत और महर्षियों के संवाद के उपक्रम में इसका पहला प्रकरण सृष्टि वर्णन का है। तत्पश्चात ब्रह्मा जी और देवर्षि नारद के बीच विवाद का चित्रण है। फिर नारद का शिवलोक गमन, शिव तथा नारद की ज्ञान–चरचा शिव के कहने पर नारद का ज्ञान लाभ के लिए सावर्णि आश्रम में पदार्पण का वृतान्त 'ब्रह्मखण्ड' के अन्तगर्त है। तदन्तर 'प्रकृति खण्ड' के अन्तर्गत नारद सावर्णि संवाद का वर्णन, श्री कृष्ण माहात्म्य, प्रकृति धी अंशभूत कलाओं का माहात्म्य और पूजन आदि का विस्तार

पूर्वक वर्णन है, फिर गणेशखण्ड में पार्वती जी द्वारा पुण्यक नामक अनुष्ठान की चर्चा है। तत्पश्चात कार्तिकेय और गणेश जी उत्पत्ति कथा कार्तवीर्य अर्जुन और परशुराम का चरित्राकन, गणेश और परशुराम विवाद का उल्लेख हैं। 'श्रीकृष्णखण्ड' में कृष्ण जन्म श्री कथा कृष्ण का गोकुल गमन, कृष्ण बाल तथा कुमार लीलाओं का वर्णन, शरदपूर्णिमा की रात्रि के रास लीला तथा श्री राधा के साथ कृष्ण की क्रीड़ा का विस्तृत प्रतिपादन है।

11 लिंग पुराण

दो भागों वाला यह पुराण ग्यारह हजार श्लोकों से युक्त है। पुराण के आख्या पहले प्रश्न हैं। फिर संक्षेप से सृष्टि का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात योगाख्यान कल्पाख्यान का वर्णन है। फिर लिंड. के प्रादुर्भाव और इसकी पूजन–विधि का वर्णन है। उत्तरोत्तर इस पुराण में दधीचि चरित्र, युगधर्म निरुपण, युवन कोष वर्णन सूर्य–चन्द्र–वंश वर्णन, विस्तृत सृष्टि वर्णन त्रिपुर कथा, लिंग प्रतिष्ठा तथा पशु पाश विमोक्ष, भगवान शिव के व्रत, सदाचार–निरुपण, प्रायश्चित, अन्धक असुर की कथा, वाराह चरित्र, नृसिंह चरित्र, जलन्धर वध की कथा, शिव सहस्र नाम, दक्ष–यज्ञ विध्वंस, मदन–दहन, पार्वती–विवाह, विनायक–कथा, शिव–प्रसंग, उपमन्यु–कथा, इस पुराण के पूर्वभाग में तथा विष्णु महात्म्य कथन, अम्बरीष कथा नंदी जनक संवाद, शिवमाहात्म्य, हठ योग आदि

का वर्णन, सूर्य विधि, दान महिमा, श्राद्ध प्रकरण अघोर कीर्तन, श्रेष्ठश्वरी महाविद्या, गायत्री महिमा, व्यम्बक माहात्म्य तथा पुराण श्रवण फल इस– पुराण के 'उत्तर भाग' में अनुस्यूत है।

12 वाराह पुराण

दो भाग में चौबीस हजार श्लोकों से परिपूर्ण इस पुराणके, 'पूर्व भाग' में पृथ्वी और वाराह का संवाद, सत्ययुग के वृतान्त में रैम्य चरित्र, दुर्जय चरित्र, श्राद्ध कल्प का वर्णन, महातपा आख्यान, गौरी की उत्पत्ति, विनायक, नागगण, कार्तिके, आदित्यगण, दैवी, धनद, वृषआख्यान, सत्यतपा व्रत कथा अगस्त्य गीता, रुद्रगीता, महिषासुर वध में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, तीनों की शक्तियों का माहात्म्य पूर्वाध्याय श्वेत उपाख्यान व्रत और तीर्थों की कथायें मथुरा महिमा, श्राद्ध विधि, यमलोक वर्णन, कर्मविपाक एवं विष्णु व्रत का वर्णन, गोकर्ण माहात्म्य तथा 'उत्तर भाग' में पुलस्त्य पुरु राज्य संवाद, समस्त तीर्थों का माहात्म्य धर्म व्याख्या, पुष्कर पर्व वर्णन सुगुम्फित हैं।

13 स्कन्द पुराण

सात खण्ड वाले इस पुराण में इक्यासी हजार श्लोक है 'माहेश्वर खण्ड' में केदार माहात्म्य, दक्ष युद्ध की कथा, शिवलिंग पूजन माहात्म्य, समुद्र मंथन कथा, अरुणाचल माहात्म्य, रुद्रक ब्रह्मा संवाद निरुपण है। 'वैष्णावखण्ड' में भूमि वाराह संवाद, वेंकटाचल पापनाशक

माहात्म्य, कमला की पवित्र कथा, सुवर्णमुखी नदी का माहात्म्य, भरद्वाज कथा, जैमिनि नारद आख्यान, दशावतार कथा तथा माण्व्य आश्रम अजित और मानस आदि तीर्थों का वर्णन हैं 'ब्रह्म खण्ड' में सेतु माहात्म्य, गालब चरित्र, देवी पंतन में चक्रतीर्थ महिमा, उमा महेश्वर व्रत महिमा, रुद्राक्ष माहात्म्य, रुद्राध्याय के पुण्य तथा 'बह्मखण्ड' के श्रवण की महिमा निरुपित है। 'काशी खण्ड' में विंध्य–नारद–संवाद, अग्नि का प्रादुर्भाव, निर्यति तथा वरुण की उत्पत्ति, गन्धवती अलकापुरी और ईशानपुरी के उद्भव का वर्णन, पराशरनंदन व्यास जी की भुजाओं का स्तभन्य क्षेत्र के तीर्थों का अनुपम मुक्ति की कथा विश्वनाथ जी का वैभव तथा काशी की यात्रा और परिक्रमण का वर्णन है, 'अवंन्तीखण्ड' में महाकाल वन का आख्यान, ब्रह्मा जी का शीर्षोच्छेक का, कपाल मोचन कथा धुन्धुमार आख्यान चित्रवह का उद्भव, चंडीश का प्रभाव, रामेश्वरम, केदारश्वर, लक्ष्यतीर्थ, विष्णुपुरी तीर्थ, मुखरतीर्थ बह्मसरोवर, ललितोपाख्यान, रुद्रावर्त तीर्थ मार्कण्डेय तीर्थ तथा सिवोध तीर्थ और फलश्रुति का वर्णन है। 'नागरखण्ड' में लिंगोत्पत्ति हरीशचन्द्र कथा, विश्वामित्र माहात्म्य, चित्रांशु चरित्र चातुरमास्य व्रत अशूएशयन व्रत, शाकम्भरी–कथा तथा एकादश रुद्रों के प्राकट्य और द्वादशादित्य–कीर्तन जैसे विषयों का प्रतिपादन है। 'प्रभासखण्ड' में सोमनाथ, विश्वनाथ, सिद्धेश्वर आदि का आख्यान, त्रिविधिमूर्ति का वर्णन, दुर्वासा–कृष्ण संवाद, कुश दैत्य के बध की कथा, गोमती और

द्वारका के तीर्थो के आगमन का वर्णन, द्वारवती के तीर्थो के निवास की कथा तथा द्वारका के पुण्य का वर्णन है।

14 वामन पुराण

दस हजार श्लोक संख्या वाले इस पुराण में कूर्मकल्प के वृतान्त का वर्णन और निवर्ण की कथा है। 'दो भागों' वाले इस पुराण में पुराण विषयक प्रश्न, ब्रह्मा जी के शिरश्छेद की कथा, कपालमोचन आख्यान, भगवान हरी की कालरूप संज्ञा, प्रह्लाद नारायण युंद्ध, देवासुंर संग्राम, सुकेशी और सूर्य की कथा, दुर्गा चरित्र, तपसी चरित्र, कुरुक्षेत्र वर्णन, कौशमी उपाख्यान आदि पूर्वभाग में तथा माहेश्वरी, भागवती, सौंरी तथा गणेश्वरी संहिताओं से युक्त इसका 'उत्तर भाग' महर्षि पुलस्त्य द्वारा देवर्षि नारद को संबन्धित है।

15 कूर्म पुराण

सतरह हजार श्लोक संख्या वाला यह पुराण के पूर्वभाग में पुराण का उपक्रम, इन्द्रधुम्न–संवाद, कूर्म और महर्षियों की वार्ता, वर्णाक्रम–आचार, काल–संख्या–निरुपण, प्रलय के अन्त में भगवान् का स्तवन, शंकर जी का चरित्र, भृगुवंश वर्णन, मार्कण्डेय– कृष्ण–संवाद, व्यास पाडण्व–संवाद, व्यास जैमिनि का कथा, प्रयाग माहात्म्य तथा त्रिलोक वर्णन और वैदिक शास्त्र का निरुपण है। उत्तर भाग में ईश्वरीय गीता, व्यास गीता, यात्रा तीर्थो का माहात्म्य, तदन्तर प्रतिसर्ग का वर्णन

है। तदन्तर 'भागवती संहिता' के विषयों का निरुपण है।

16 मत्स्य पुराण

इस पुराण में चौदह हजार श्लोक है। इसमें व्यास जी ने भूतल पर सात कल्पों का संक्षिप्त वृतान्त निरुपित किया है। मनु–मत्स्य संवाद, बह्माण्ड वर्णन, बह्मा–देवता–असुरों की उत्पत्ति, मरुद्‌गण प्रादुर्भाव, पुरुवंश कीर्तन, युग धर्म निरुपण, समुद्रमन्थन तथा ब्राह्मण और वाराह का माहात्म्य एवं भविष्य राजाओं का वर्णन, महादान वर्णन तथा कल्प कीर्तन का उल्लेख है।

17 गरुण पुराण

उन्नीस हजार श्लोकों वाले इस पुराण में गरुण के पूछने पर गरुदासन भगवान विष्णु ने लक्ष्मी–कल्प की कथा से युक्त गरुण पुराण सुनाने की कथा है। इसमें संक्षेप में सृष्टि वर्णन, सर्य पूजन विधि, वैष्णों पंजर, पितरों का उपाख्यान, प्रेतशुद्धि नीति शास्त्र श्रीहरि की अवतार कथा, रामायण, हरिवंश, आख्यान आर्योवेद निदान, चिकित्सा, द्रव्य गुण निरुपण विष्णु कवच, गरुण कवच, त्रैपुर मन्त्र, प्रश्नचूड़ामणी, छन्द शास्त्र, पार्वण, कर्म नित्यश्राद्ध, धर्मसार, पापी का प्रायश्चित पतिसक्रमण, योगशास्त्र, विष्णुमहिमा, नृसिंहस्तोत्र, वेदान्त और साख्या का सिद्धान्त ब्रह्मज्ञान, आत्मानन्द कथा तथा गीतासार 'पूर्वभाग' में वर्णित है। उत्तर भाग में सर्वप्रथम प्रेतकल्प का वर्णन है। गरुण के पूछने पर विष्णु द्वारा

धर्म के महत्व का प्रतिपादन दान आदि का फल, यम–लोक–वर्णन, षोदशश्राद्ध–फल, भूतलोक के मार्ग से छूटने का उपाय, कर्मराज के वैभव का कथन। प्रेत–पीड़ाओं का वर्णन, प्रेत चिह्न निरुपण, प्रेत चरित्र वर्णन तथा प्रेतत्व प्राप्ति के कारण का उल्लेख किया गया है। तदन्तर प्रेतकल्प का विचार, सपिण्जीकरण का कथन, श्राद्ध साधक दान, प्रेत को दुख देने वाले कार्यों का ऊहापोह शरीरिक निर्देश यमलोक वर्णन, कर्म करने के अधिकारी का निर्णय, मृत्यु से पहले के कत्तर्व्य, स्वर्गीय सुख का निरुपण भूलोक वर्णन, नीचे के सात लोकों का वर्णन, ऊपर पाँच लोकों का वर्णन ब्रह्माण्ड की स्थति का निरुपण ब्रह्म और जीव का निरुपण, आत्मन्तिक प्रलय का वर्णन तथा फलस्तुति का निरुपण है।

18 ब्रह्माण्ड पुराण

चार पाद वाला यह पुराण बारह हजार श्लोकों के परिपूर्ण है। इन पादों का नाम 'प्रक्रिया पाद' 'अनुषमपाद' 'उपोद्घातपाद' तथा 'उपसंहारपाद' है। पहले के दो पादों को पूर्व भाग कहा गया है। तृतीय पाद ही मध्यम भाग है। चतुर्थ पाद उत्तर भाग माना गया है। पूर्व भाग के प्रक्रिया पाद में पहले कत्त्र्व्य का उपदेश, निर्मषय का आख्यान, हिरण्यगर्भ की उत्त्पत्ति, और लोक रचना इत्यादि विषय वर्णित है। द्वितीय पाद में कल्प तथा मन्वन्तर का वर्णन है। तत्पश्चात लोक ज्ञान, मानुषी–सृष्टि कथन, रुद्र सृष्टि वर्णन, महादेव विभूती ऋषिसर्ग, अग्नि विजय, काल

सद्भाव–वर्णन, प्रिय व्रतवंश का परिचय, पृथ्वी का दैर्घ्य और विस्तार, भारत वर्ष का वर्णन, फिर अन्य वर्षों का वर्णन, जम्बू आदि सात द्वीपों का परिचय, नीचे के लोको का विश्लेषण आदित्य व्यूह का कथन, देवग्रहा अनुकीर्तन, भगवान शिव निरुपण, यज्ञ प्रवर्तन अन्तिम दो युगों का कार्य, युग के अनुसार प्रजा का लक्षण, वेद विज्ञान वर्णन, स्वभूयः मन्वन्तर का निरुपण, शेष मन्वन्तर का कथन, पृथ्वी दोहन, चाक्षुश और वर्तमान मन्वन्तर के सर्ग का वर्णन है। मध्य भाग के उपोद्घात पाद में सप्तऋषियों का वर्णन, प्रजापति वंश का निरुपण, उससे देवता आदि की उत्तपत्ति, तदन्तर विजय की अभिलाषा और मरुद्गणों की उत्त्पत्ति का कथन, कश्यप की संतानों का वर्णन, ऋषि वंश निरुपण, पितृकल्प का कथन, श्राद्ध कल्प का वर्णन, वैवशवत मन की उत्त्पत्ति तथा उनके वंश का वर्णन महात्मा अत्री के वश का कथन रजि का अद्भुद चरित्र ययाति चरित, परशुराम चरित, सगर की उत्त्पत्ति, भागर्व चरित, विष्णु महात्म्य कथन, वलीवंश–निरुपण तथा कलयुग में होने वाले राजाओं का चरित्र प्रस्तुत है। उत्तर भाग के उपसंहार पाद में वैवश्वत मनु की विस्तृत कथा भविष्य में होन वाले मनुओं का सम्भावित चरित्र, तदनन्तर कल्प के प्रलय का निर्देश, कालमान का निरुपण, चौदह भुवनों का वर्णन, नरकों का वर्णन, मनोमयपुर का आख्यान, प्राकृत प्रलय का प्रतिपादन, शिव धाम का वर्णन, सत्व आदि गुणों की त्रिविधि गति का निरुपण, अन्वय तथा व्यतिरेक

दृष्टि से अनिर्देश्य एवं अतर्क्य परमब्रह्म परमात्मा के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है।

संदर्भ सूची

1— निरुक्त 1/5—6

2— याज्ञवल्क्यस्मृति (1/3), शिवपुराण (7/1/25), वायुपुराण (61/78), ब्रह्मपुराण (2/11/28), विष्णुपुराण (3/6/28), भविष्यपुराण (1/11/28), गरुणपुराण (1/93/3), कामन्दक नीतिसार (2/13), तथा वृस्पति आदि कई स्मृतियों में अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है।

3— महाभारत (1/1/267), वसिष्ठ धर्मसूत्र (27/6)

4& cambridge History of ds dia vdime1 caprer II,
People and Rangvagc Page 37, Par-Kale A

5— अनादिनिधना, निवय वागुत्सृष्टि स्वपिम्भुण आदौ वेद अतः सर्वाः प्रवृत्तयः।।

महाभारत 12/232/24

6— भविष्यपुराण (5/5/45)

7— संक्षिप्त नारद पुराण 1183 (चतुर्थपाद—पृ502)

8— संक्षिप्त नारद पुराण 1183 गीताप्रेस

9— वृहस्पति स्मृति (1/5)

10— महाभारत (1/1/265)

11— वायुपुराण (61/80)

12— नारद पुराण वेकटेश्वर प्रेस (1/2/5)

13— भविष्य पुराण एक अनुशीलन— डॉ. रामजी तिवारी—पृष्ट संख्या 6

14— भविष्य पुराण (1/2/5, 2/1/25, 4/2/11)

15— पुराणम्—वर्ष 18—संख्या1 पृष्ठ58

16— वाराह पुराण (2/5/11) पद्म पुराण सृष्टि का वृतीय अध्याय, विष्णु पुराण (1/5/18) भगवत के 2,3,4 स्कन्धों में सर्ग की चरचा बार—बार हुई है।

17— कूर्म पुराण (2/26/28)

18— भविष्य पुराण एक अनुशलिन—डॉ. रामजी तिवारी—पृ.10

19— मन्वन्तरं तु दिव्याना युगान्त मेक स्प्रति— अमरकोश

20— मन्तन्तरः एक अनुशीलन— डॉ. शिवस्वरूप—पृ. 47

21— मन्वन्तरः एक अनुशलन— डॉ. शिवस्वरूप भरद्वाज—पृ. 51

22— निरुक्त (1/5—6)

23— संस्कृत साहित्य का उपाध्याय —पृ.

24— ऋग्वेद भगवोत्ध्येमि यसामयवेदमारूथवर्थ चतुर्थमितिहास पुराणं वेदानांवदम्र

छान्दोग्योपनिषद् (7/1/2)

25— ऋचाः सामानिछन्दांसि पुराणं यजुषा सह उच्छिष्टा जजिरे सर्वो दिवि देवा विविश्रित

अनार्थ संहित (11/7/24)

27 Of all this litrature I have only seemi partiona of the Matsya, Adis and vayu puramas

Alver India p 130

28 Thise are the names of the Ruramas a ee oridiny to the vishnu purama

29— नारद पुराण के आधार पर गीता प्रेस गोरखपुर

30— गीता प्रेम गोरखपुर द्वितीय संस्करण स.258 पर आधारित

31— गीता से प्रेस— गोरखपुर पद्मपुराण प्रथम संख्या 20—45

32— गीता प्रेस गोरखपुर भविष्य पुराण द्वितीय संख्या पर आधारित है।

33— गीता प्रेस गोरापुर वायु पुराण द्वितीय संख्य स. 2058 पर आधारित

34— भविष्य प्रेस गोरखपुर भद्भागवत पुराण द्वितीय सस्करण 2058 पर आधारित

35— गीता गोरखपुर नारद पुरण संस्करण 2057 प्रथम संस्करण पर आधारित

36— गीता प्रेस गोरखपुर संक्षिप्त माकण्डेय पुराण द्वितीय संस्करण 2058 पर आधारित

द्वितीय अध्याय

(क)युगीन परिवेश और नरेन्द्र कोहली

की रचनाधर्मिता

(ख) नरेन्द्र कोहली का उपन्यासेतर साहित्य :

परिचयात्मक अवबोध

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

द्वितीय अध्यायः

(क) युगीन परिवेश और नरेन्द्र कोहली की रचनाधर्मिता–

काल सवाह के आधुनिक सन्दर्भ के समकालीन अंश से नरेन्द्र कोहनी का उनके पौराणिक आख्यान से आभ्यान्तरिक सम्बन्ध है। वैसे किसी क्रान्तिदर्शी एवं संवेदनशीन साहित्य शिल्पी को 'काल' के किसी एकान्त से बांधकर नहीं रक्खा जा सकता। उसका प्रातिभ ज्ञान (**Intirtion**) भूत और भविष्यत् को अपनी काल भेदी दृष्टि से देख लेता है और अपने भोगे यथार्थ तथा सोच और संवेदना की मौलिक तात्त्विकता से अपनी निजस्विनी आत्माभिव्यक्ति को अभिव्यक्त करता है। आत्माभिव्यक्ति का 'आत्म' परिवेशगत यथार्थ तथा युगीन सन्दर्भों से प्रभावित होता रहता है। इसीलिए प्रायः प्रत्येक कृतिक की कृति में युगीन सन्दर्भ अनायास ही अपना आकार ग्रहण कर लेते हैं। साहित्य की स्थिति कृतिकार तथा प्रमाता के मध्य है। साहित्यकार का साहित्यिक कृतित्त्व अनुभूति के ध ारातल पर साहित्यकार और आस्वादक के बीच संवाद है। साहित्य वह विन्दु है जहाँ जाकर साहित्यकार का 'आत्म' वस्तु जगत के साथ तादात्म्य स्थापित करता है, अपनी वैयक्तिक सीमाओं का अतिक्रमण कर निर्वयक्तिक हो जाता है। यह इसलिए नहीं होता कि साहित्यकार का

उसके सृजन से अतादात्म्य है, प्रत्युत् यह इसलिए होता है कि उसकी वैयक्तिक अनुभूतियों का इस सीमा तक विस्तार हो जाता है कि वो सभी पाठको अथवा श्रोताओं को अपनी अनुभूति प्रतीत होने लगती है।

नरेन्द्र कोहली के जन्म के समय भारत में परतन्त्रता के विरुद्ध जन–चेतना जाग्रत हो चुकी थी। 1857 का विफल विद्रोह राख में दबे अंगारों की तरह बुझा नहीं था और 1889 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के रूप में एक राजनैतिक संगठन का जन्म हुआ। महात्मा गाँधी जैसे विश्वविख्यात नेता प्रकाश में आये जिन्होंने प्राकारान्तर से राम की भाँति वानर, भालू, गृिद्ध तथा अन्य अविकसित, शोषित तथा संतप्त जंगली जातियों को सुसंस्कृत, स्वाभिमानी, तथा अनुशासित बनाया तथा शक्तिशाली शोषक के विरुद्ध संघर्ष के लिए प्रतिबद्ध कर दिया था। युद्ध के प्रकार में अन्तर हो सकता है, किन्तु युद्ध के कारण तथा युद्ध की आवश्यकता में अन्तर नही। रावण की भाँति ही उपनिवेशवादी शोषक मानसिकता के कारण इंगलैण्ड ने भारत समेत विश्व के विविध देशों को अपने अधीन कर रक्खा था। इसी बीच प्रथम तथा द्वितीय विश्व युद्धों ने रावण तथा दुर्योधनवादी राक्षस संस्कृति के बाह्य तथा आन्तरकि रूपों को विश्व के समक्ष चित्रांकित किया। देशी उद्योग धन्धों को नष्ट करके शोषक राष्ट्र अपने कारखानों में निर्मित सामग्री भारतीय जनता के उपभोग के लिए योजनाबद्ध रूप से प्रस्तुत कर रहे थे। इस प्रकार आर्थिक परतन्त्रता के

धरातल सृजित किए गये थे। इसी समय बंगाल का भयावह अकाल पड़ा। विदेशी सत्ता ने इस दुष्काल में भी संवेदनहीन रहते हुए अपने शोषण के शिंकजे को कसना जारी रक्खा। दुर्बलों पर सबलों के अत्याचार की यह सनातन रीति है। इन तथ्यों से आहत नरेन्द्र कोहली ने रामकथा मूलक उपन्यास के माध्यम से कदाचित अपनी आवाज बुलन्द की है–

"मैं राम हूँ, राज जब न्याय के पक्ष में बढ़ता है, तो शिव, ब्रह्म, विष्णु, जैसे नामों से नहीं डरता। शक्ति इन नामों में नहीं–जन–सामान्य में है। मेरा बल जन–सामान्य था विश्वास है। कोई शस्त्र, कोई आयुध, कोई सेना या साम्राज्य जनता से बढ़कर शक्तिशाली नहीं है।..................राम मिट्टी में से सेनायें गढ़ता है, क्योंकि वह केवल दमित और शोषित जनसमान्य का पक्ष लेता है............न्याय का युद्ध करता है।"[1]

इन्द्र द्वारा अहल्या के यौन–उत्पीड़न और धन तथा सत्ता से जुड़े लोगों के षड्यन्त्र से इन्द्र की बजाय अहल्या के सामाजिक दण्ड से राम पत्थर–सी हो गई अहल्या के पक्ष में इन्द्र समेत कदाचारी सामाजिक शक्तियों से टकराने–यहाँ तक कि नया आदर्श समाज सृजित करने के पक्ष में समर करने के लिए कृत संकल्प हो उठते हैं–

"...............परन्तु मैं अत्यन्त चकित और पीड़ित हूँ। ये लोग जानते है कि सत्य क्या है, उचित क्या है, न्याय क्या है। किन्तु फिर भी ये सबके सब किसी भय से निष्क्रिय और जड़ पड़े हुए हैं। आपने कहा है देवि इन

सबको युग–पुरुष की प्रतीक्षा है, जो इन्हें इस जड़ता से उबार–नव–जीवन दे सके। किन्तु वह पुरुष मैं ही हूँ– यह कोई कैसे कह सकता है– मैं स्वयं भी कैसे कह सकता हूँ। पर हाँ मैं प्रयत्न करूँगा कि इस जड़ता को यथाशक्ति तोड़ूँ। आपने वर्षों की प्रतीक्षा की है देवि! आपकी प्रतीक्षा समाप्त हुई। जाइए अपने पति के आश्रम में पधारिए। अब कोई आपको परित्यक्ता, पतित, हीन तथा सामाजिक एवं नैतिक दृष्टि से हेय कहने का साहस नहीं करेगा। मैं कौशल्या–पुत्र राम वचन देता हूँ कि यदि समाज ने आपको स्वीकार नहीं किया तो मैं या तो आपको प्रतिष्ठा दिलाऊँगा, या इस दलित समाज का नाश कर नया समाज बनाऊँगा।"[2]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि नरेन्द्र कोहली पौराणिक सन्दर्भो से समकालीन परस्थितियों का साक्षात्कार करते हुए उनके विरुद्ध संघर्ष के लिए नैतिक घरातल सृजित कर रहे हैं।

विदेशी व्यवस्था के अन्तर्गत शोषण और उत्पीड़न से गुजरते हुए भारतीय जनता को निरन्तर गर्दित परिस्थितियों में जाना पड़ रहा था। अनततोगत्त्वा 15 अगस्त 1947 को आधी रात भारत को राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। इस स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के पूर्व लार्ड माउन्टबेटन की दुरंगी चालों के परिणाम् स्वरूप मुस्लिमलीग ने कांग्रेस से नाता तोड़ लिया और भारत के पूर्वो तथा पश्चिमी पाकिस्तान के रूप में दो अतिरिक्त टुकड़े हो गए। पंचवर्षीय योजनाओं की डोर थामें भारत की

वेवश यात्रा जारी रही। इस दौरान भारत को 1962 में चीनी, 1965 और 1971 में पाकिस्तानी आक्रमण का सामना करना पड़ा जिससे देश को विकट आर्थिक परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। देश की समस्यायें विकराल हो चली गयी। भ्रष्टाचार में लगातार बृद्धि होती गई। 1876 में बाबू जय प्रकाश नारायण के नेतृत्त्व में में कथित 'सम्पूर्ण क्रान्ति' हुई। पहली बार केन्द्रीय सत्ता कांग्रेस के हाथों से छिनकर जनता पार्टी के हाथों में गई। किन्तु यह विकल्प भारत के आम आदमी को न्याय और संतुष्टि न दे सका। इतने बड़े परिवर्तन के बाद भी भ्रष्टाचार, अनाचार, शोषण, उत्पीड़न, कदाचार तथा स्वैराचार की विसंगतियां भारत में कैंसर की तरह फैली ही रहीं। शनैः शनैः भारत ने इक्कीसवी शताब्दी में प्रवेश किया और बहुदलीय संविद सराकारों का क्रम अभी तक बरकारार है।

इधर उपभोक्तावादी संस्कृति का विश्वव्यापी उफान भारत के सनातन आदर्शों को लील लेने के लिए उदग्र है। अपसंस्कृति ने मानव मूल्यों को क्षरित और विकृत किया है। वैश्वीकरण का मायाजाल भारत जैसे देश की अति प्राचीन और निष्कर्ष परक पहचान को मिटा देने के लिए तत्पर है। प्रगतिवाद तथा नव्यता के नाम पर ऐन्द्रिय भोगों के इर्द–गिर्द मडराती जीवन पद्धति स्वीकार की जाने लगी है तथा भारत के महान ऋषियों, मुनियों, मनीषियों क सिद्धान्त परक उपदेश निरर्थक माने जाने लगे हैं। एक प्रकार से राक्षस संस्कृति के मूल मंत्र–संग्रह करो, भोग

करो, शोषण करो, हिंस करो के रास्ते पर मानव जीवन अग्रसर होता जा रहा है। सत्ता पर घृतराष्ट्रों का वर्चस्व स्थापित हो जाता है। दुर्योधन के हठ तथा पर पीड़न से शान्ति प्रिय नागरिकों का जीवन अशान्त है। कुछ कर सकने में समर्थ भीष्म पितामह जैसी विभूतियाँ व्यक्तिगत निष्ठाओं की अर्चना में निमग्न हैं। तब धर्म, अर्थ काम, मोक्ष के पुरषार्थों पर लक्ष्यबद्ध भारतीय मनीषा आदि प्रथ–भ्रस्त हो रही है, तो यह आश्चर्य जनक नहीं है। नरेन्द्र कोहली ने पौराणिक पात्रों परिस्थितियों तथा परिणामों को दृष्टि पथ पर रखते हुए मानव तथा समाज के उच्च मनोजगत में स्थापित होने की यात्रा को इस प्रकार से प्रस्तुत किया है कि नाशधर्मी मानव अपने जीवन के महान लक्ष्य को प्राप्त कर सके। इस यात्रा में उसे अन्याय, अधर्म तथा अत्याचार से टकराना पड़ेगा। उसे विपरीत परिस्थितियों से पलायित होने के स्थान पर इन परिस्थितियों तथा इन परिस्थितियों की नियामक व्यवस्थओं को चकनाचूर कर देना होगा।

युग पुरुष के रूप में कृष्ण के सिद्धान्त तथा नीतियाँ समकालीन परिस्थितियों के लिए भी प्रासंगिक हैं। कृष्ण स्पष्ट रूप से पितामह की भर्त्सना करते हैं– "जिस समय निसर्ग–नियम से उन्हें स्वयं विवाह करना चाहिए था, उस समय उन्होंने युवती स्त्री से अपने बृद्ध पिता का विवाह कराया। उसी क्षण से कुरु–कुल में सब अस्त–व्यस्त हो गया। उन्होंने पितृ–भक्ति की तपस्या को अपने जीवन का लक्ष्य मान लिया। वह

एकांगी सत्य था, जीवन समग्र था सत्य नहीं.....................पितामह ने अपनी व्यक्तिगत साधना के सम्मुख लोकधर्म तथा राजधर्म की सर्वथा अवहेलना की।[3]

कृष्ण ने युधिष्ठिर को भी नहीं छोड़ा। द्यूत सभा में धर्म बन्धन के नाम पर अपना, अपने भाइयों तथा द्रौपदी का अपनमान कृष्ण की दृष्टि से धर्म नहीं अधर्म है–

''घृतराष्ट्र ने मनमाने नियमों में बांध कर आपका सर्वस्व हरण कर लिया और कृष्णा का सार्वजनिक रूप से अपमान किया। आप यह सब देखते रहे और समझते रहे कि आप धर्म की रक्षा कर रहे है।[4]

युधिष्ठिर की प्रार्थना पर कृष्ण धर्म का मर्म निरूपित करते हैं। तो समकालीन परिवेश तथा परिस्थितियों में भी वांछनीय है–

''अनासक्त विवेक है धर्म! अनासक्ति! मोह का पूर्ण त्याग! मोह किसी के प्रति नहीं होना चाहिए–न जाति के प्रति न संबंध के प्रति, न सिद्धान्त के प्रति! धर्म स्वेच्छा और सद्परिणाम् में है। यदि परिणाम् शुभ नहीं है, तो व्यक्ति को अत्यन्त निर्भय होकर अपनी धर्म–व्यवस्था, समाज व्यवस्था और शासन व्यवस्था को परखना चाहिए।''[5]

पौराणिक वस्तु–विन्यास पर पहले उन्होंने राम–कथामूलक उपन्यास–माला सात खण्डों में प्रस्तुत की–

1– दीक्षा

2– अवसर

3– संघर्ष की ओर

4– साक्षात्कार

5– पृष्ठ भूमि

6– अभियान

7– युद्ध

वाद में इस उपन्यास माला के सात भागों को सम्मिलित करके 'अभ्युदय' नाम से दो भागों में प्रकाशित करवाया गया।

राम–कथामूलक उपन्यास–माला के पश्चात् नरेन्द्र कोहली ने कृष्ण–कथा मूलक उपन्यास–माला को आठ खण्ड़ों में प्रस्तुत किया–मुख्य रूप से महाभारत पर आघृत इस उपन्यास माला के आठ खण्डो के नाम अधोप्रस्तुत हैं–

1– बंधन

2– अधिकार

3– कर्म

4– धर्म

5– अंतराल

6– प्रच्छन्न

7–प्रत्यक्ष

8–निर्बन्ध

राम–कथामूलक उपन्यास–माला के सात खण्डों का सांकेतिक परिचय

1 दीक्षा– दीक्षा देश में सर्वत्र राक्षसी आतंकवाद का प्रसाद होता जा रहा है। कौशिमी नदी के तट पर अपनी प्रिय तपोभूमि को छोड़कर महर्षि विश्वामित्र ने ताड़का बन के समीप (वर्तमान विहार प्रान्त का वक्सर) 'सिद्धाश्रम' में आध्यात्मिक अनुष्ठान और यज्ञ आदि करके आर्य संस्कृति को सुरक्षित और प्रसारित करने का उपक्रम करते हैं। राक्षसों के आतंकवादी तन्त्र के अधिनायक रावण की योजना तथा आदेशानुसार वनांचल के निवासियों को यदि उनमें कोई समर्थ है तो उसे राक्षस बनाया जा रहा है और शेष से निःशुल्क कठोर तथा आत्मघाती उत्पादक कर्म करवाये जा रहे है। आर्य संस्कृति के प्रचारक तपस्विओ, ऋषियों–मुनियों को हिंसक आक्रमणों से आतंकित किया जा रहा है। यद्यपि ये ऋषि अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध किए होते है, तो भी अवसर मिलने पर राक्षस इन्हें मार कर खा भी जाते हैं। वनवासियों की तरुणियों पर बलात्कार तो साधारण बाते हैं। कोल–भील किरात आदि वनवासी जातियों को दास बनाकर उनका पीढ़ी दर पीढ़ी शोषण जारी है। समाज के अतिउच्चवर्ग–देववर्ग का अधिपति इन्द्र राक्षसों का तो विरोधी है किन्तु जनता के शोषण में वह भी किसी से पीछे नहीं। गौतम ऋषि की तेजस्वी

तथा सुन्दर पत्नी अहिल्या के साथ इन्द्र बलात्कार करता हैं। युग चेतना को कल्याण मार्ग पर अग्रसर करना अपना कर्तव्य समझ कर विश्वामित्र राक्षसों का आतंक समाप्त करने समाज में प्रचलित अंधविश्वासों तथा शोषक कुरीतियों को नष्ट करने के लिए सशस्त्र शक्ति के अभ्युदय का निश्चय करते हैं। वे अयोध्या से दशरथ पुत्र राम तथा लक्ष्मण को अपने साथ ला कर उन्हें वैचारिक धरातल पर रक्ष संस्कृति के विरुद्ध अभियान के लिए दीक्षित करते हैं। राम के द्वारा ताड़का तथा सुबाहु का बध होता है। मारीचि घायल होकर भाग जाता है। वनांचल में उत्साह छा जाता है। ताड़का और उसके योद्धाओं को मारना तो दूर उनका विरोध तक करना अविश्वसनीय घटना थी। राम इन वनवासियों को संगठित और शस्त्रास्त्र में प्रशिक्षित करते हैं। दबे कुचले लोगों में आत्मविश्वास उत्पन्न करते हैं। उन्हें इस योग्य बनाते हैं कि वे अन्याय और आंतक का न केवल विरोध कर सकें प्रत्युक्त उसका उन्मूलन कर सकें। विश्वामित्र राम को विविध शस्त्रास्त्र प्रदान करते हैं और उन्हें सीरध्वज जनक के यहा रखे शिव–चाप 'अजगव' का रहस्य बताते हैं कि वह एक प्रक्षेपास्त्र है। उसमें आत्म विस्फोट पदार्थ है। कोई 'अजगव' की परिचालन विधि नहीं जानता अन्यथा यह बहुत शक्तिशास्त्री अस्त्र है। यदि यह राक्षसों के हाथ पड़ गया तो इसका दुरुपयोग होगा। विश्वामित्र राम को 'अजगव' की परिचालन पद्धति तथा आत्म–विस्फोट पदार्थ को सक्रिय करने की विधि

राम को बताते हैं ताकि 'अजगव' नष्ट हो सके। राक्षसों के हाथ पड़ने की आशंका समाप्त हो सके और राम का सीता से विवाह हो सके तब मिथिला और कोसल राज्यों का मनमुटाव दूर हो और आर्य–शक्ति का संगठन दृढ़ हो सके। मार्ग में राम विश्वामित्र की इच्छानुसार बलात्कार के बाद समाज –परित्यक्ता अहिल्या (जिसके कारण उन्हें पत्थर की हो जाना कहा गया) के आश्रम पर गए। उन्हें समाजिक मान्यता दिला कर गौतम ऋषि के आश्रम में उनका प्रवेश कराया अर्थात् पत्थर हो गई अहल्या को जीवित किया। राम द्वारा अहिल्या से कहे शब्द युगीन सन्दर्भों में अपनी अति प्रसंगिकता रखते हैं–मैं उन सम्पूर्ण लोगों की ओर से आपसे क्षमा–याचना करता हूँ, जिन्होंने आपका अपराध किया है, और प्रतिज्ञा करता हूँ कि जीवन में जब कभी इन्द्र से साक्षात्कार हुआ, उसे प्राण दण्ड दूँगा।.........................मैं प्रयत्न करूँगा कि इस जड़ता को यथा–शक्ति तोड़ूँ। आपने वर्षों की प्रतीक्षा की है देवि! आपकी प्रतीक्षा समाप्त हुई। जाइए, अपने पति के आश्रम में पधारिए। अब कोई आपको परित्यक्ता, पतित, हीन तथा सामाजिक और नैतिक दृष्टि से हेय कहने का साहस नहीं करेगा। मैं कौशल्या–पुत्र राम, वचन देता हूँ, कि यदि समाज ने आपको स्वीकार नहीं किया तो मैं या तो आपको प्रतिष्ठा दिलाऊँगा या इस दलित समाज का नाश कर, नया समाज बनाऊँगा।"[6]

सीरध्वज जनक की रंगशाला में विश्वामित्र के निवेदन पर 'अजगव'

लाया गया। किसी को विश्वास नहीं था कि कोसल राजकुमार राम 'अजगव' को परिचालित कर सकेंगे।

विश्वामित्र की बताई युक्ति से राम ने न केवल 'अजगव' को परिचालित किया, प्रत्युत उसके आत्म विस्फोट पदार्थ को सक्रिय कर अजगव का विध्वंस कर दिया। सीता राम के कण्ठ में वरमाला डाल देतीं है। "सीरध्वज प्रेम को आवेश में आंदोलित अपनी राज–मर्यादा को भुला कर प्रायः मागते हुए आगे बढ़े और उन्होंने राम को अपनी भुजाओं में भर, कंठ से लगा लिया।"[7]

(2) अवसर–

अयोध्या की राजनैतिक घटनाओं से यह उपन्यास प्रारम्भ होता है। दशरथ को साम्राज्य पर कैकेयी के बढ़ते प्रभाव को देख कर उनके मन में राजनैतिक भय व्याप्त होता है। वह भरत–शत्रुघ्न की अनुपस्थिति में कैकेयी की शक्ति को घटाने के लिये राम के युवराज्याभिषेक का निर्णय लेते हैं। मन्थरा के भड़काने पर कैकेयी कोप भवन में जाती है और दशरथ से दो वचन माँग कर कि इसी सामग्री से भरत का युवराज्याभिषेक हो तथा राम तापस वेश चौदह वर्ष के लिए वन में निवास करें–दशरथ को मर्महित कर देती है। राम विश्वामित्र से निर्देशित थे कि उन्हें राक्षसी आतंकवाद को समाप्त करके महान आर्य संस्कृति की प्रतिष्ठा करनी है। इस अवसर को राम ने वरदान समझा और बन जाने के लिए सहमत हो

गए। उनके साथ लक्ष्मण तथा सीता भी बन गए। निषादराज गुह से मिलते हुए, प्रयाग में महर्षि भारद्वाज के दर्शन करते हुए राम चित्रकूट में महर्षि वाल्मीकि के दर्शन करते हैं। राम मन्दाकिनी नदी के किनारे आश्रम बनाकर रहने लगते हैं। वहाँ राक्षसी उत्पात नहीं है। राम 'सिद्धाश्रम' के अनुभव के आधार पर यहाँ जनशक्ति को संगठित करते हैं। राक्षसों के विरुद्ध उन्हें सशस्त्र संघर्ष का प्रशिक्षण देते हैं। राम को मनाने के लिए भरत चित्रकूट आते हैं किन्तु राम पिता की आज्ञा पूरी किये बिना अयोध्या लौटने के लिए तैयार नहीं होते।

राम ने चित्रकूट की जनता को मानसिक रूप से राक्षसी अत्याचार का विरोध करने के लिये सुदृढ़ कर लिया। उन्हें शस्त्रास्त्र में भी प्रशिक्षित किया अब राम ने यहाँ अपना उद्‌देश्य पूरा हुआ समझ आगे बढ़ने की सोची। चित्रकूट वासियों को राम का जाना अच्छा नहीं लग रहा था। उन्होंने उन्हें उद्‌बोधित किया–''नहीं! राम ने उसकी आँखों की ओर देखा, तुमने स्वयं अत्याचार सहा है। फिर तुम्हें 'तपस्वी' जीवन का अभ्यास है जो उद्‌घोष और उसके साथियों को नहीं है। अतः जागरूक श्रमिक तथा बुद्धिजीवी जनता में भाई–चारा बनाए रखने के लिए तुम यहाँ रहोगे। किन्तु सावधान मित्रों! बुद्धिजीवी होने के अहंकार में जन–सामान्य से दूर मत हो जाना–अन्यथा तुम शोषकों के हाथ के खिलौने बन जन सामान्य के शत्रु हो, क्रान्ति की प्रक्रिया की सबसे बड़ी बाधा बन जाओगे।''[8]

3—संघर्ष की ओर—

राम चित्रकूट छोड़कर अत्रि आश्रम से गुजरते हुए शरभंग आश्रम पहुँचे, जहाँ उन्होने महर्षि शरभंग को चिता में जलते देखा। ऋषि के शिष्यों ने बताया कि महर्षि यहाँ पूंजीपतियों का विरोध करके श्रमिकों को प्रश्रय देते थे। कोयले की खानों में खतरे के काम करने वाले श्रमिकों को प्राण—रक्षक सुविधायें तथा उनकों उचित पारिश्रमिक देने के लिए उनका खान —स्वामियों से तनाव चलता रहता था। ज्ञानश्रेष्ठ नामक व्यक्ति ने राम को बताया कि इन दिनों ऋषि आपकी बहुत प्रतीक्षा कर रहे थे, और आपके शस्त्रासों के प्रति जिज्ञासा प्रकट करते थे। आत्मचिंतन के स्थान पर अब वे संगठन और युद्ध जैसे विषयों पर चर्चा करने लगे थे। तीन दिन पहले यहाँ इन्द्र पधारे तो ऋषि को बहुत प्रसन्नता हुई। इन्द्र ने एकान्त में महर्षि से न जाने क्या बातें की कि इन्द्र के जाने के बाद से ऋषि की आँखों में निराशा प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगी थी। उन्होंने तीन दिन आपकी प्रतीक्षा की किन्तु आज निराश होकर आत्मदाह कर लिया। ज्ञान श्रेष्ठ ने यह भी राम को बताया कि ऋषि अपने आपसे कह रहे थे—''........................न्याय का क्या होगा......................धनवान और सत्तावान तो पहले रक्तपात कर रहा है, बुद्धिजीवी भी उन्हीं के षड्यन्त्र में सम्मिलित हो जायेगा, तो फिर दुर्बल और असहाय मानवता का क्या होगा। ये कमकर, ये श्रमिक, ये दास—ये इसी प्रकार मरते—खपते रहेंगे,

पशुओं के समान जीवन काटेंगे? मानव की श्रेणी में ये कभी नहीं आयेंगे.
...............रावण बुद्धिजीवियों को खा जाता है, इन्द्र उन्हें खरीद लेता है...
.................तो कौन आएगा उनकी सहायता को?"[१]

राम ने समझ लिया कि श्रमिक एक सम्पत्ति है। उनका सब शोषण चाहते हैं। बुद्धिजीवी श्रमिकों को जागरूक कर सकता है, शोषण कि विरुद्ध उसे संगठित कर सकता है। उन्हें शोषण का स्वरूप और अपने सुखों के अधिकार का ज्ञान करा सकता है। रावण अपने ढ़ग से बुद्धिजीवियों का प्रयास नष्ट करता है और इन्द्र अपने प्रकार से।

राम मानवता के शोषण के विरुद्ध जन–चेतना को जागरुक करते हैं। वे ज्यो–ज्यों सफल होते हैं त्यों–त्यों राक्षस तन्त्र उनके विरुद्ध विविध योजनायें बनाता है। राम के शस्त्रास्त्रों तथा जनवाहिनी के सामने राक्षस ठहर नहीं पाते। सुतीक्षण आश्रम में आते समय एक विकट राक्षस वैदेही को उठाकर भाग रहा था। राम–लक्ष्मण को उससे संघर्ष करना पड़ा। मृत्यु के पूर्व उसने बताया कि मैं पहले विराध गंधर्व था, अब राक्षस हो गया था। यानी जिनमें शारीरिक क्षमता होती थी, उसे रावण का तन्त्र अपने शोषक संगठन में सम्मिलित कर लेता था। उसे राक्षस बना लेता था। इन्द्र और रावण दोनों ही शोषक व्यवस्था के सूत्रधार थे।

राम ने कुछ दिन सुतीक्षण आश्रम में ठहर कर वहाँ जन वाहिनियाँ गठित की, और आगे बढ़कर अगस्त्य आश्रम पहुँचे। महर्षि अगस्त्य और

उनकी विदुषी पत्नी लोपामुद्रा चालीस वर्ष से जन—जागरण कर रहे थे। उन्होंने राम को कुछ दिव्यास्त्र और ब्रह्मास्त्र दिये।

4 साक्षात्कार—

अगस्त्य आश्रम से चलकर राम दण्डकारण्य में पंचवटी में अपना आश्रम बनाते हैं। वहीं उनको भेंट गृद्ध जाति के आर्य जटायु से भेंट होती है। जटायु स्वयं राक्षस संस्कृति से संघर्ष कर रहा होता है। जनस्थान में राक्षसों का एक बड़ा स्कन्धावार है। वहाँ चौदह हजार सशस्त्र राक्षस सैनिकों की वाहिनी है, जिसके सेनापति रावण के बन्धु—बान्धव, खर, दूषण तथा त्रिशिरा हैं। स्वयं रावण की बहन शूर्पणखा इस स्कन्धावार का स्वामित्त्व करती है। स्वकन्धारवार के इतने निकट राम का आश्रम बनाना उसे विस्मित कर गया। राम की ख्याति तो उसके कानों तक पहुँच चुकी थी, किन्तु राम इतना निर्भीक होगा—यह नहीं सोचा था शूर्पणखा ने। उसने छिप कर राम को देखा। राम के पुरुषोचित सौन्दर्य पर वह रीझ गई। उसने विशेष श्रृंगार करके राम को काम मोहित करना चाहा। राम ने स्वयं को विवाहित बताते हुए उससे लक्ष्मण से सम्पर्क करने के लिए कहा। लक्ष्मण के इनकार करने पर उसने समझा कि जब तक सीता जैसी सुन्दरी इन तपस्यियों के साथ है तब तक वह इन्हे प्राप्त नही कर सकती। अतः उसने सीता पर आक्रमण कर दिया। राम के संकेत पर लक्ष्मण ने अपने खड्ग से शूर्पणखा के नाक—कान चिह्नित करके उसे

भगा दिया।

अब शूर्पणखा प्रतिशोध लेने के लिए राक्षस सेना पर राम पर आक्रमण करवाने के लिये विवश थी, किन्तु उसका आदेश था कि राम को जीवित बन्दी बनाय जाये। राम ने अपनी प्रशिक्षित जनवाहिनी के सहयोग से खर, दूषण, त्रिशिरा सहित चौदह हजार राक्षसों का बध कर दिया।

शूर्पणखा भागकर लंका पहुँचती है। वहाँ रावण को सीता–हारण के लिए प्रोत्साहित करती है। शूर्पणखा राम को किसी भी स्थिति में प्राप्त करना चाहती है अतः वह अशोक वाटिका से सीता की प्रमुख रक्षिका 'त्रिजटा' को बुलाकर उसे पुरस्कार देने का लालच देती है और कहती है–

"तुम्हें निरन्तर यह प्रयत्न करना है कि सीता का आत्मबल कम न हो। उसे सांत्वना देती रहो। उसे राम के, सेना सहित आने का विश्वास दिलाती चलो................किसी प्रकार वह सम्राट की शक्ति से भयभीत न हो, उनकी सत्ता से अभिभूत न हो। वह हताश न हो– न आत्म हत्या की बात सोचे, न आत्म समर्पण की उसका साहस ओर जिजीविषा बनी रहे।"[10]

शूर्पणखा जानती है कि यदि सीता जीवित रहेगी, तो राम लंका पर अवश्य आक्रमण करेगा। तब राम को बन्दी बनवाकर वह उसका भोग कर सकेगी।

5–पृष्ठ भूमि–

सीता हरण के बाद राम सीता की खोज में जटायु के संकेत पर दक्षिण की ओर यात्रा प्रारम्भ करते हैं। किष्किंधा का वानरराज वाली बहुत शक्ति शाली, किन्तु अंधविश्वासी है। वह अपने प्रचण्ड पराक्रम से महिषरूप में शक्तिशाली दैत्य दुन्दुभी का बध करता है। मय दानव का पुत्र मायावी किष्किंधा में मादक पदार्थों तथा नारी देह का व्यापार करने के अपराध में युवराज सुग्रीव द्वारा बन्दी बनाया जाता है। सुग्रीव की अनुपस्थिति में राज्यसभा में जब वह अभियुक्त के रूप में उपस्थित किया जाता है। तो वह बताता है कि मेरा अपराध मात्र यह है कि मैं थके हुए मन को विश्राम देता हूँ! वाली को यह कार्य अपराध नहीं लगता। वह मायावी से कहता है–

"मायावी" यदि तुम मेरे थके मन को विश्राम दे पाओगे, तो समझूँगा कि तुम बैद्य का कार्य कर रहे हो, अन्यथा तुम जानते ही होगे कि मैं अपराधी को कठोर दण्ड देता हूँ।[11]

मायावी वाली को अति रूपवती तरुणी अलका को भेंट में देता है। अलका को पाकर वाली कृतार्थ हो जाता है। वह मायावी को न केवल अपने राज्य में व्यापार की छूट देता है बल्कि उसे राज्यपरिषद् में 'महासामन्त' की उपाधि भी प्रदान करता है। वाली को जब यह पता चलता है कि मायावी उसकी प्रिया अलका से अभी शारीरिक संबन्ध बनाये हुए है, तो वह मायावी को मारने का प्रयास करता है। मायावी किष्किंधा

की टूटी प्राचीर से कूद कर भाग जाता है। सबके रोकने पर भी वाली उसका पीछा करता है। बहुत खोज करने पर बहुत दिनों बाद मायावी वाली को अपने दो साथियों के साथ मिलता है। वाली उसका पीछा करता है। तो वह एक गुफा में प्रवेश कर जाता है। वाली अपनी गदा से खड्गधारी राक्षसों से युद्ध करता है। अन्त में वह दोनों साथियों समेत मायावी का वध करके किष्किंधा वापस लौटत है तो इस बात पर उसे बहुत क्रोध आता है, कि उसकी अनुपस्थिति में सुग्रीव किष्किंधा का राजा बन चुका है। वह सुग्रीव पर आक्रमण कर देता है। सुग्रीव भाग कर ऋष्यमूक पर्वत पर अपने जीवन की रक्षा करता है। वाली के ज्योत्सी ने दुन्दुभी की मृत्यु के बाद वाली को मंतगवन में स्थित ऋष्यमूक पर्वत पर न जाने का परामर्श दिया था, क्योंकि वह क्षेत्र उसके लिये काल क्षेत्र था। वाली वहाँ नहीं जाता किन्तु सुग्रीव की पत्नी समा को अपनी पत्नी बना लेता है।

ऋष्यमूक पर्वत पर अग्नि को साक्षी मान कर राम सुग्रीव की मैत्री होती है। राम सात ताल वृक्षों को एक ही बाण से काट कर सुग्रीव को विश्वास दिला जाते हैं कि वह वाली का बध कर सकते हैं। सुग्रीव और वाली का द्वन्द्व युद्ध होता है। राम के बाण से वाली की मृत्यु होती है। सुग्रीव का राज्याभिषेक तथा वाली के पुत्र अंगद का युवाराज्याभिषेक होता है। सुग्रीव अपने भोग–विलास में मस्त हो जाता है। प्रवर्षण गिरि

पर निवास कर रहे राम लक्ष्मण को किष्किंधा भेज कर संदेश देते हैं कि सुग्रीव सीता की खोज न करवा कर राम के साथ विश्वास–घात कर रहा है। लक्ष्मण ने सुग्रीव को बहुत फटकारा और कहा कि राम का तुम्हारे लिये संदेश है–"जिस मार्ग से वाली गया है वह मार्ग अभी बन्द नहीं हुआ।[12]

पहले वाली की पत्नी रही किन्तु अब सुग्रीव की पत्नी रानी तारा लक्ष्मण को समझाती है और कहता है कि भोगों से वंचित रहे सुग्रीव के लिए विलास में निमग्न हो जाना स्वाभाविक ही था। अब सुग्रीव राम का सहयोग करेंगे।

सुग्रीव चार खोजी दल बनाकर उन्हें चारों दिशाओं में भेजने के पहले कहते हैं कि यदि एक मास भी सीता की खोज नहीं होती तो वह खोजी दलों को मृत्यु–दण्ड देगा। दक्षिण जाने वाले खोजी दलों का नायक युवराज अंगद को बनाया जाता है। इस दल के साथ हनुमान तथा जाम्बवान जैसे प्रमुख लोग है।

सीता की खोज में भूखे प्यासे अंगद–हनुमान जाम्बवान के संकेत पर एक गुफा मे प्रवेश करते हैं। वहाँ स्वयंप्रभा नाम की तपस्विनी उन्हें बताती है कि मय–दानव ने अपनी अप्सरा पत्नी हेमा के लिए यह प्रासाद, उपवन और दिव्य सरोवर का निर्माण कराया था। हेमा को खोजता इन्द्र आया और इन्द्र के भय से मय–दानव कहीं भाग गया कुछ दिनों बाद

हेमा भी चली गई। तब से मैं हेमा के इस प्रासाद की रक्षा कर रही हूँ। स्वयंप्रभा खोजी दल को भोजन कराती है, और उसे गुप्त मार्ग से समुद्र तक पहुँचाती है, जहाँ उनकी भेंट जटायु के बड़े भाई आर्य सम्पाती से होती है। सम्पाती बताता है कि रावण सीता को लंका ले गया है।

6—अभियान—

जाम्बवान के परामर्श पर हनुमान एक ऊँचे टीले से समुद्र में छलांग लगा देते हैं। वह तैरते—तैरते मैनाक पर्वत पार करके जब आगे बढ़े तो हनुमान को एक विशालकाय सर्प निगलने के लिए तैयार था। यह नाग माता सुरसा के आकार का विराट सर्प था। उससे बचकर हनुमान तैरते आगे बढ़े तो उन्हें जलजंतु के रूप में हिंसक सिंहिका मिली। सिंहिका का बध करके हनुमान लंका के मुख्य द्वार पर उसकी स्त्री रक्षिका पर प्रहार करके लंका में प्रवेश पा सके।

लंका के राजप्रासादों में सीता की खोज व्यर्थ गई। अब हनुमान ने जन—सम्पर्क द्वारा जानकारी प्राप्त की कि इन दिनों अशोक वाटिका निषिद्ध क्षेत्र घोषित है। वाटिका—पथ पर भी कोई नहीं जा सकता। हनुमान किसी प्रकार अशोक—वाटिका पहुँच कर सीता के दर्शन कर सके। वह एक सघन अशोक वृक्ष पर चढ़कर बैठ गए। तभी वहाँ रावण आया और सीता को धमका कर चला गया। रक्षक राक्षसिनियों के सोने जाने के वाद हनुमान ने सीता के पास राम के द्वारा भेजी मुद्रिका डाल

दी। सीता को अपना परिचय दिया। उन्हें सांत्वना भी दी। अभिज्ञान के रूप में सीता से चूणामणि लेकर हनुमान अशोक वाटिका के कदलिवन में फलाहार के लिए कूद गए। हनुमान ने फल तो खाये ही, भारी तोड़–फोड़ की। रक्षकों को मारा, रावण–पुत्र अक्षय कुमार का भी बध कर दिया। अंत में मेघनाद रस्सों के फंदो में फंसा कर हनुमान को रावण की सभा में ले गया। रावण हनुमान को प्राण–दण्ड देना चाहता था, किन्तु विभीषण ने दूत को अवध्य बताकर रावण को किसी दूसरे दण्ड के बारे में सोचने के लिए विवश कर दिया। रावण के आदेश पर हनुमान की पूँछ में आग लगा दी गई। हनुमान सैनिकों तथा बन्धनों से छूट कर लंका को जलाने में कूद गए। विस्फोटक सामग्रियों से भरे भण्डारों में आग लगने से पूरी लंका दहल उठी। अंत में समुद्र मार्ग से तैरते हुए हनुमान खोजी दल से आ मिले।

अब खोजी दल सुग्रीव के रक्षित राज उपवन 'मधुवन' के रक्षको को भगा कर फल–फूल खाता हुआ सुग्रीव के पास लौट आए।

7–युद्ध–

सीता का समाचार पाकर राम वानर–भालुओ के साथ अपनी जनवाहिनी को लेकर सागर–तट पर आए। नल और नील के सहयोग से राम ने समुद्र का वह भाग खोज लिया जिसमें अधिकांश स्तिया (छिछला जल) क्षेत्र था। गहरे जल में पत्थरों से भरे जलपोत डूबो कर मार्ग बनाया

गया। स्तिया–क्षेत्र में भी पत्थरों को पाटकर सागर पार करने योग्य सेतु बना लिया गया। राम ने सागर पार कर लिया है, इस सूचना से रावण हैरान रह गया। राज्य सभा में सीता को लौटा कर संधि की सलाह देने वाले अनुज विभीषण को रावण ने लात मारकर लंका से निष्कासित कर दिया। विभीषण अपने चार सचिवों के साथ राम से मिला। राम ने उसे आदर देते हुए उससे मैत्री कर ली और लंका–नरेश के रूप में उसका राज्याभिषेक कर दिया। राम–रावण के बीच भीषण युद्ध हुआ। राम के हाथों कुंभकर्ण तथा लक्ष्मण द्वारा मेघनाद का बध होता है। रावण अन्तिम युद्ध के लिए आता है और महर्षि अगस्त्य द्वारा दिये गये ब्रह्मास्त्र से राम द्वारा मारा जाता है।

लंका विजय के बाद विभीषण तथा हनुमान सीता को देख कर राम प्रसन्न हुए। इतनी यातना के बाद भी सीता के चेहरे प दीनता अथवा याचना नहीं थी।

"आओ सीते!" राम ने अपने हाथ बढ़ाये, 'अपने राम से अब और दूर नहीं रहो। एक वर्ष की दीर्घ अग्नि परीक्षा दी है तुमने। अब तुम्हें कुछ सुख भी मिलना चाहिए............ ।"[13]

कृष्ण–कथामूलक उपन्यास माला

1—बंधन

नरेन्द्र कोहली के वृहदाकार उपन्यास 'महासमर' का यह प्रथम

खण्ड है। इस उपन्यास की घटनायें तथा पात्र महाभारत पर आधारित हैं। किन्तु मनोविज्ञान, तर्क, तथा चिन्तन के धरातल पर इस कृति की औपन्यासिकता ने महाभारत के वस्तुविन्यास के अनन्तर भी अपनी मौलिकता स्थापित की है। 'बन्धन' मनोप्रेरित कर्मों के द्वन्द से उत्पन्न होता था। संसार की भोग तथा स्वार्थवादी संलिप्तता बन्धन का कारण है। इस उपन्यास में शान्तनु सत्यवती तथा भीष्म की मनोभूमि तथा उनके स्वयं की इच्छा से सृजित जीवन–मूल्यों की कथा है। घटनाओं की दृष्टि से यह सत्यवती के हस्तिनापुर आने, उनके दोनों पुत्रो–चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य से निस्संतान मरने, नियोग पद्धति से सत्यवती के कनीन पुत्र वेदव्यास द्वारा अम्बिका, अम्बालिका तथा एक दासी के गर्भ से घृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर का नियोग पद्धति से जन्म, कुन्ती तथा भाद्री द्वारा नियोग पद्धति से पाँच पाण्डु के क्षेत्रज पुत्रों का जन्म, माडी के साथ सहावास करने की चेष्टा में पाण्डु की मृत्यु, कुन्ती का सप्तशृंग आश्रम से ऋषियों और अपने पुत्रों के साथ हस्तिनापुर आगमन। कौरव तथा पाण्डव बालकों के बीच बचपन में ही विरोध, दुर्योधन और घृतराष्ट्र की सहमति से पाण्डवों के विनाश के षड्यंत्र और हस्तिनापुर के भीषण भविष्य को देखते हुए वेदव्यास के कहने पर सत्यवती का अम्बिका तथा अम्बालिका के साथ हस्तिनापुर त्याग की कथा है।

2–अधिकार

'अधिकार' का वस्तुविन्यास हस्तिनापुर में पाण्डवों के शैशव से प्रारम्भ होकर वरणावत के अग्निकाण्ड में जाकर समाप्त होता है। वस्तुतः इस खण्ड में सत्ता लोलुपता, सत्ता पर अधिकार करने की अदम्य इच्छा सत्ता के माध्यम से अधिकार प्राप्त करने की लालसा, के विविध सन्दर्भ सुगुम्फित है। इस खण्ड में अधिकारों की व्याख्या की गई है। राजनीति में अधिकार प्राप्त करने के लिए होने वाली हिंसा तथा राजनीतिक संत्रास के बोझ में दबे असहाय मानवता की व्यथा–कथा भी समानान्तर चलती है। एक ओर घृतराष्ट्र और दुयोधन का निर्लज्ज स्वार्थ और उद्दाम भोग–लालसा और दूसरी आरे अनासक्त धर्म शांति के लिए भीष्म का सकाम प्रयत्न दोनो पक्ष आमने–सामने हैं।

3—कर्म

'महासमर' उपन्यास के तीसरे खण्ड 'कर्म' में युधिष्ठिर के युवराज्याभिषेक के उपरान्त की कथा है। यद्यपि शक्ति के प्रतिनिधि अक्रूर के दबाव में घृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर का युवराज्याभिषेक किया था दुर्योधन घृतराष्ट्र की प्रच्छन्न इच्छानुसार पाण्डवों को वरणावत के लाक्षाभवन में कुन्ती समेत भस्म करने का असफल प्रयास करता है। विदुर, कृष्ण तथा व्यास के अदृश्य सहयोग से पाण्डव पाँचालों की राजधानी 'काम्पिल्य' सुरक्षित पहुँच जाते है। काम्पिल्य में इस समय याज्ञसेनी कृष्णा (दौपद्री) का वीर्यशुल्क स्वयंम्बर हो रहा है। स्वयंवर की शर्त कोई नहीं पूरी कर

पाता। कर्ण धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर लक्ष्यबेध में सफल होने जा रहा प्रतीत होता हैं, किन्तु द्रौपदी उसे सूत–पुत्र होने के कारण स्वयंवर में भाग लेने का अधिकारी नहीं मानती। अंत में ब्राह्मण वेश में अर्जुन लक्ष्यवध करके द्रोपदी की वरमाला धारण करने का अधिकारी होता है। कुम्हार को धर में ठहरी कुन्ती द्रौपदी के अर्जुन से विवाह को 'परिवेदन' दोष से मुक्त मानती है। अतः कृष्णा (द्रौपदी) का विवाह पाँचों पाण्डवों से हो जाता है।

युधिष्ठिर के हस्तिनापुर लौट आने पर समस्या उत्पन्न हुई कि एक राज्य में दो युवराज कैसे हो सकते हैं। अतः घृतराष्ट्र भावनात्मक छल का प्रयोग करते हुए युधिष्ठिर को यमुना–पार खाण्डव प्रस्थ में राजधानी बनाकर साम्राज्य स्थापित करने के लिए कहते है। भीष्म और विदुर के रहते हस्तिनापुर में निरन्तर हो रहा अन्याय रुक नहीं पा रहा था। भीष्म युद्ध टालना चाहते थे, किन्तु उनके अनजाने ही युद्ध निकट आता जा रहा था। अन्याय की जमीन पर ही संघर्ष का विष वृक्ष उत्पन्न होता है।

4—धर्म

'महासमर' के चौथे खण्ड 'धर्म' में धर्म की परिस्थिति, आवश्यकता, समस्या तथा पद के अनुसार धर्म की विविध व्याख्यायें की गयी हैं। पाण्डवों को राज्य के रूप में खाण्डव प्रस्थ मिला है, जहाँ न कृषि है, न व्यापार, न नगर, न समुचित राजप्रासाद। उस क्षेत्र में अपराधियों तथा

इन्द्र जैसी महाशक्तियों की वाहनियाँ अपने षड़्यन्त्रों में लगी हुई हैं। युधिष्ठिर के समक्ष धर्म संकट है। वह नृशंस नहीं होना चाहता, किन्तु नृशंसता के बिना प्रजा की रक्षा नहीं हो सकती । पाण्डवों के पास इतने साधन भी नहीं हैं, कि वे इन्द्र–रक्षित खाण्डव वन को नष्ट कर उसमें छिपे अपराधियों को दण्डित कर सकें। किसी प्रकार खाण्डव प्रस्थ का नाम इन्द्रप्रस्थ रख कर इन्द्र को संतुष्ट करके उनके वास्तुकारों और मय जैसे विश्वकर्माओं के द्वारा राज–प्रासाद, प्राचीर, नगर तथा चतुष्पथ और दिव्य कमलाच्छादित पुष्कारिणियों से अलंकृत अभिराम नगर 'इन्द्रप्रस्थ' का सृजन होता है। धीरे–धीरे नगर बसने लगता है। और उसमें समृद्धि के चिह्न उभरने लगते हैं। युधिष्ठिर तथा दौपदी के एकान्त में परिस्थिति वश अर्जुन के प्रवेश ने निर्धारित नियम को अनुसार बारह वर्ष के वनवास के लिये अर्जुन को इन्द्रप्रस्थ छोड़ना पड़ता है। इन बारह वर्षों में अर्जुन शिव तथा इन्द्र से अनेक दिव्य तथा देवास्त्र प्राप्त करता है। इस दौरान वह उलीपी तथा चिद्रांगदा से विवाह भी करता है। कृष्ण अपने चिर शत्रु जरासंघ का भीम के द्वारा बध करवा देते हैं। युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करके चक्रवर्ती सम्राट हो जाते है और राजसूय यज्ञ करते है।, जिसमें कृष्ण का अग्र पूज्य होना चेदि नरेश शिशुपाल सहन नहीं कर पता। वह कृष्ण के साथ अभद्रता करता हैं। अंत में कृष्ण अपने सुदर्शन चक्र से उसका बध कर देते है।

पाण्डवों के वैभव से दुर्योधन बहुत खिन्न होता है। उसकी इच्छा पूर्ति के लिए घृतराष्ट्र नवनिर्मित स्फटिक भवन में द्यूत–क्रीड़ा के लिए युधिष्ठिर को हस्तिनापुर आमंत्रित करते हैं। शकुनि प्रख्यात कैतव है। वह छल से युधिष्ठिर की सारी चल–अचल सम्पत्ति जीत लेता है, उसे भाइयों समेत दास बना लेता है। द्रोपदी को भी जीत लेता है। भीष्म, द्रोण, कृप और घृतराष्ट्र के सामने द्रौपदी का घोर अपमान होता है। सब अपने अपने धर्म बन्धनों में बंधे है।कोई स्वर्त्थ के बन्धन में और कोई धर्म के बन्धन में। अंत में गांधारी के कहने पर घृतराष्ट्र पाण्डवों तथा पांचाली को दासता मुक्त करते हैं। पाण्डवों को बारह वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष का अज्ञात वास दिया जाता है। कुन्ती अपने पुत्रों के साथ बनवास इसलिए नहीं जाती कि यदि वह हस्तिनापुर से चली गई तो हस्तिनापुर सहिष्णु युधिष्ठिर का विस्मृत हो जाएगा और वह न्याय के लिए संघर्ष करके अपना अधिकार न प्राप्त कर सकेगा। द्रौपदी इसलिए पाण्डवों के साथ वन गई ताकि उसके खुले केशों को देखकर उसके पतियों को कौरवों से प्रतिशोध का प्रतिक्षण ध्यान रहे।

5—अन्तराल

इस खण्ड में पाण्डवों की वनवास कालीन स्थितियों का चित्रांकन है। वनमार्ग में भीम द्वारा किर्मीर राक्षस के बध का वृतान्त है। पाण्डव

अपने पुरोहित धौम्य ऋषि के साथ काम्यक बन में निवास करने लगे। दुर्योधन पाण्डवों को सताने के लिए उनके पास दुर्वासा ऋषि को शिष्यों समेत इस लिए भेजता है, कि पाण्डव अपनी विपन्नता के कारण दुर्वासा का सत्कार न कर पायेंगे अतः क्रोध में दुर्वासा उन्हें भस्म कर देंगे। कृष्ण की कृपा से पाण्डवों की दुर्वासा से रक्षा होती है। कृष्ण और घृष्टद्युम्न यहाँ पाण्डवों से मिलने आते हैं। अब दुर्योधन जयद्रथ को द्रोपदी का हरण करने के लिए भेजता है। जयद्रथ द्रौपदी का हरण करता है किन्तु पाण्डव उसे पकड़ कर बहुत अपमानित करके छोड़ देते हैं।

अब पाण्डव काम्यक वन छोड़ कर हिमालय क्षेत्र में प्रवेश करते हैं वहाँ बदरिकाश्रम क्षेत्र में राक्षस जटासुर द्रौपदी का हरण करना चाहता है। भीम द्वारा जटासुर का बध होता है। पाण्डव गंधमादन क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। यहाँ द्रौपदी की प्रेरणा पर भीम यक्षों से युद्ध करके सौगन्धिक पद्म लाते हैं। भीम यक्ष शक्ति को समाप्त करने के लिये यक्ष–नगर–प्राचीर फाद कर द्रोपदी का अपमान करने वाले यक्ष मणिमान का द्वन्द्व युद्ध में बध करते हैं। तब स्वयं कुबेर आकर भीम को समझाते हैं और अकारण ही उच्छृंखलता के लिए रोकते हैं। कुबेर ने भीम को गन्धमादन के यक्ष–क्षेत्र में विचरण की अनुमति दे दी। युधिष्ठिर ने आष्टिरुेण आश्रम में ही रहने की अनुमति चाही, जिसे कुबेर ने स्वीकार कर लिया।

6–प्रच्छन्न

'महासमर' उपन्यास के छठे खण्ड 'प्रच्छन्न' में मानवीय मनोवृत्तियों को, जो संस्कृति और सभ्यता के आवरण में छिपी रहती हैं–उन्हें निरावृत किया गया है। काल–संवाह अनेक संवत्सरों की अविराम यात्रा कर चुका है किन्तु इस परिर्वतनशील विश्व में मानव की जैविकीय प्रवृत्तियां ज्यों की त्यों है–सभ्यता से मात्र उनका दमन किया जा सका है। नरेन्द्र कोहली ने इस उपन्यास में यही दिखाना चाहा है कि मानव की प्रकृति प्रकृति के नियमों की भाँति ही अपरिर्वतनशील है। उसका ऊपरी आवरण कितना ही मिन्न क्यों न दिखाई देता हो, मानव की मनोभूमि आज भी वही है, जो लाखों वर्ष पूर्व थी।

दुर्योधन इसी प्रक्रिया का शिकार हुआ है। अपनी आवश्यकता भर पाकर वह संतुष्ट नहीं हुआ। दूसरों का सर्वस्व छीन कर भी वह शांत नही हुआ। पाण्डवों की पीड़ा उसके सुख की अनिवार्य शर्त थी। वंचित पाण्डवों को जलाने के लिए घोष–यात्रा के बहाने दुर्योधन ने पाण्डवों को जलाने राजसी ठाठ–वाट से इष्टमित्रों तथा रानियों दासियों सहित द्वैत वन की यात्रा की। मार्ग में चित्ररथ गन्धर्व से उसका संघर्ष हो गया। चित्ररथ ने उसे परास्त कर उसकी सारी सम्पत्ति छीन ली यहाँ तक कि कौरवों और उनके सामन्तों की पत्नियां भी छीन ली। युधिष्ठिर की आज्ञा पर अर्जुन ने युद्ध करके दुर्योधन को चित्ररथ से मुक्त कराया। पाण्डवों के इस उपकार से भी दुर्योधन संतुष्ट नहीं हुआ और लज्जा में प्रायोपवेश

करके प्राण देने का निश्चय किया। कर्ण दुर्योधन को संतुष्ट करने के लिए दिग्विजय के लिए निकला और इतनी सम्पत्ति लेकर लौटा कि हस्तिनापुर का राजकोष समृद्ध हो गया।

द्वैत बन में ही एक ब्राह्मण की अरणि कोई महाभृग उठा ले गया। अरणि छीनने के लिए पाँचों पाण्डव जंगल में बहुत दूर निकल गए, जहाँ प्यास के कारण एक–एक पाण्डव जाकर यक्ष के प्रश्नों का उत्तर न देने के कारण मारे गये। अंत में युधिष्ठिर ने यक्ष के प्रश्नों का उत्तर दिया। प्रसन्न होकर यक्ष ने उसके सारे भाइयों को जीवित कर दिया।

वनवास की बारह वर्ष की अवधि के बाद एक वर्ष के अज्ञातवास के लिये पाण्डव द्रौपदी समेत गुप्त रूप से मत्स्यराज विराट के नगर पहुँचे। युधिष्ठिर कंक नाम से राज विराट को सहयोग देने के लिए, भीम बल्लव नाम से रसोई बनाने के लिए, अर्जुन नपुंसक बृहन्नला बन कर अन्तःपुर की राजकुमारियों को नृत्य और संगीत की शिक्षा देने के लिए, नकुल ग्रन्थिक नाम से अश्वशाला सम्हालने के लिए, सहदेव तंतिपाल नाम से गोशाला का काम देखने के लिए और द्रौपदी सैरन्ध्री बन कर महारानी सुदेष्णा की श्रृंगार–परिचारिका का कार्य करने के लिये–इस प्रकार द्रौपदी समेत सभी पाण्डव विराटराज के यहाँ नियुक्त हो गये द्रौपदी के रूप पर आकर्षित होकर महाराज विराट के साले तथा राज्य के सेनापति कीचक ने द्रोपदी के साथ व्यभिचार करना चाहा। कीचक

नृत्यशाला में भीम के द्वारा मारा गया।

कीचक वध की सूचना सर्वत्र फैल गई। दुर्योधन ने अनुमान लगाया कि भीम के अलावा कीचक का वध और कोई नहीं कर सकता। वह त्रिगर्तनरेश सुशर्मा तथा कुरु सेना के साथ विराट नगर में आक्रमण करके उसके गोधन का अपहरण कराता है। राजकुमार उत्तर के सारथी के रूप में ब्रह्मन्नला जाती है। उत्तर के भयभीत होने पर वह स्वयं अर्जुन भीष्म तथा द्रोण से शालीन संघर्ष करता हुआ कर्ण समेत समस्त कुरुसेना को तहस–नहस कर देता है।

पाण्डवों का वास्तविक परिचय प्राप्त करके महाराज विराट बहुत लज्जित होते हैं। उन्हें कंक के साथ किया गया अपना दुर्व्यवहार बहुत लज्जाजनक लगता है। वह अपनी पुत्री राजकुमारी उत्तरा का निवाह अर्जुन के साथ करना चाहते हैं। अर्जुन इसे अनुचित मानते हुए अपने पुत्र अभिमन्यु से उत्तरा के विवाह का प्रस्ताव रखते हैं, जिसे स्वीकार कर लिया जाता है।

7–प्रत्यक्ष–

'महासमर' के सातवें खण्ड 'प्रत्यक्ष' में युद्ध के अद्योत्र और युद्ध के प्रथम चरण महाभारत के अनुसार 'भीष्मपर्व' का वृतांत है।

उपप्लव्य में विराट–पुत्री उत्तरा और सुभद्रापुत्र अभिमन्यु का विवाह होता है। विवाह के बहाने से ही पाण्डवों ने अपने समान्त हितैषियों को

आमंत्रित करके इन्द्रप्रस्थ का अपना राज्याधिकार प्राप्त करने की मन्त्रणा की। कृष्ण का मत तो सदैव धर्म के पक्ष में ही रहता है, किन्तु विभिन्न कारणों से यदुवंश में मतैक्य नहीं रहता। दुर्योधन दाऊ बलभद्र का प्रिय शिष्य और कृष्ण पुत्र साम्ब का श्वसुर भी हैं अतः यदुकुल के अन्तःपुर में दुर्योधन की शक्ति का प्रभाव उसकी पुत्री लक्ष्मण के माध्यम से हो गया था। परिणामतः महाभारत के महासमर के पूर्व ही कृष्ण सात्यकि के अतिरिक्त और किसी यदुवीर को पाण्डवों के समर्थन के पक्ष में युद्ध लड़वाने की स्थिति में नहीं रह गए थे। उपप्लव्य की सभा में बलराम जी ने स्पष्ट ही कह दिया था, कि इसमें दोष युधिष्ठिर का भी है। क्यों उन्होंने अमर्यादित द्यूत क्रीड़ा की।

दोनों पक्ष अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए सम्बन्धियों तथा तटस्थों के यहाँ सहायतार्थ दूत भेज रहे थे। द्वारका में दुर्योधन स्वयं सहायता लेने पहुचा। इसी समय अर्जुन भी द्वारका पहुँचे। कृष्ण ने कहा कि एक ओर निश्शस्त्र मैं और दूसरी ओर नारायणी सेना। अर्जुन ने निश्शस्त्र कृष्ण को लिया और दुर्योधन की इच्छानुसार ही नारायणी सेना उसे मिल गई।

कृष्ण द्वारा संधि का अन्तिम प्रयास किया गया, किन्तु दुर्योधन ने पाण्डवों को सुई की नोक भर (सूच्याग्र न केशवः) भूमि देने को राजी नहीं हुआ। उसने कृष्ण को बन्दी बनाने का भी प्रयास किया, किन्तु कृष्ण की सतर्कता और शक्ति के कारण वह सफल नहीं हुआ।

भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया। भीष्म के प्रधान सेनापतित्त्व में कौरव सेना अजेय थी। यद्यपि भीष्म तथा द्रोण दोनो ने किसी पाण्डव का बध न करने की प्रतिज्ञा की थी, किन्तु उनके दुद्धर्ष युद्ध से पाण्डव सेना का मनोवल टूट रहा था। नौ दिन के बाद कृष्ण की नीति के अनुसार पाण्डव युद्धोपरान्त पितामह के शिविर में गये। पितामह ने कहा कि अब वे पाण्डवों की विजय के मार्ग को अवरुद्ध करके खड़े नहीं रहना चाहते। अर्जुन ने चकित होकर पूछा कि क्या आप युद्ध से निरास्त हो रहे हैं? पितामह ने कहा कि क्षत्रिय युद्ध से निरास्त नहीं होता। तो हमारी विजय कैसे होगी? पूछा अर्जुन ने। इसके उत्तर में पितामह ने कहा मेरी दो प्रतिज्ञायें युद्ध से पहले ही घोषित हुई थीं। उनके अनुसार मैं पाँचों पाण्डवों में से किसी का बध नहीं करूँगा तथा शिखण्ड़ी से युद्ध नहीं करूँगा। अब मेरे बध में बाधा कहा है। शिखण्डी सामने हो और कोई पाण्डव मेरे ऊपर प्रहार करे तो मेरा बध निश्चित है कि नहीं? अर्जुन ने कहा कि मैं आपका बध नहीं कर सकता तब पितामह बोले–"मत करना मेरा बध। मैं तो केवल इतना ही कह रहा हूँ कि मुझे युद्ध–क्षेत्र से हटा दो............................मेरे सुख के लिए इतना तो तुम्हें करना ही चाहिए।"

8–निर्बन्ध

"महासमर' के आठवें और अंतिम खण्ड 'निर्बन्ध मे महाभारत पर आघृत कथा द्रोण पर्व में प्रारम्भ होकर शान्ति पर्व तक चलती है। यह

हिन्दी का सर्वाधिक वृहदाकार उपन्यास 'बन्धन' से प्रारम्भ होकर 'निर्बन्ध' तक की यात्रा करता है। लेखक ने वस्तुविन्यास के प्रवाह में गहन चिन्तन तथा समसामयिकता के सन्दर्भ भी समायोजित किए हैं। बन्धन! किसका बन्धन? कैसा बन्धन जैसे प्रश्नों के उत्तर इस उपन्यास में अन्तर्निहित हैं। वस्तुतः अमोघ परिणामी कर्म ही कर्मफल के रूप में कर्त्ता को अपने बन्धन में बाँधता है। यदि कर्म सकाम है तो धार्मिक तथा नैतिक कर्म होकर भी वह अन्ततः बन्धनकारी ही होता है। पितामह भीष्म पितृभक्ति तथा त्याग भी उनके लिए बन्धनकारी ही हुए।

निर्बन्ध के कथानक का अधिकांश भाग तो समर–क्षेत्र में सम्पन्न होता है। महाभारत की कथावस्तु के अनुसार ही द्रोण कौरव सेना के प्रध ान सेनापति होते है। चक्रव्यूह में अभिमन्यु का बध होता है। अर्जुन अभिमन्यु की मृत्यु का प्रधान कारण जयद्रथ को मानकर दूसरे दिन सूर्यास्त तक जयद्रथ बध की प्रतिज्ञा करते हैं। अन्यथा की स्थिति में वह स्वयं को अग्नि में भस्म कर लेने की भी प्रतिज्ञा करते हैं। घोर युद्ध होता है। कृष्ण की चतुराई से अर्जुन जयद्रथ बध करने में सफल होते है। रात्रियुद्ध में कर्ण वैजयन्ती शक्ति से घटोत्कच का बध कर देता है। द्रोण दिव्यास्त्रों के प्रयोग से पाण्डव सेना को त्रस्त कर देते है। उनके द्वारा महाराज द्रुपद और मत्स्यराज विराट का बध हो चुका होता है। कृष्ण की नीति के अनुसार भीम एक अश्वत्थामा नाम के हाथी का बध करते हैं।

प्रचार करवाया जाता है कि अश्वत्थामा मारा गया। द्रोण से जब युधिष्ठिर भी अश्वत्थामा की मृत्यु की पुष्टि करते है तो पुत्र शोक से हताश द्रोण शस्त्र–सम्पात कर रथ को पिछले हिस्से में जाकर ध्यानस्त हो जाते हैं। अर्जुन के रोकने के बाद भी इसी स्थिति में धृष्टद्युम्न आचार्य द्रोण के जटाजूट पकड़ कर खड्ग से उनका सिर काट लेते हैं।

अश्वत्थामा अपने पिता का अपमान जनक बध सुनकर संयम खो बैठता है। वह नारायणास्त्र, अग्नेयास्त्र जैसे देवास्त्रों का प्रयोग करता है।

दुर्योधन अब कर्ण को अपना प्रधान सेनापति बनाता है। कर्ण अपने शौर्य से पाण्डव सेना को हताश कर देता है। कुन्ती के दिये वचन के कारण वह सुविधा होने पर भी युधिष्ठिर, भीम, नकुल तथा सहदेव का बध नहीं करता। अन्त में अर्जुन के साथ द्वैरथ रण करते हुए कृष्ण के कहने पर अर्जुन उसका मस्तक उस समय काट लेते है। जब वह निशस्त्र होकर भूमि में फंसे अपने रथ का पहिया निकाल रहा होता है। अब दुर्योधन शल्य को प्रधान बनाते है, जिसका बध युधिष्ठिर कर देते हैं।

स्वयं को अकेला पाकर दुर्योधन द्वैपावन सरोवर में जा छिपता है। युधिष्ठिर के ललकारने पर वह बाहर निकलता है। इसी समय दुर्योधन के पक्षधर बलराम जी आ जाते है। बलराम को देख दुर्योधन का मनोबल बढ़ जाता है भीम और दुर्योधन के बीच निर्णायक गदा–युद्ध की बात तय होती है।

महाभारत की कथावस्तु के अनुसार ही समन्त पंचक क्षेत्र में भीम तथा दुर्योधन का विकट गदा–युद्ध होता है गदायुद्ध के नियमानुसार कटि के नीचे प्रहार नहीं किया जाता, किन्तु अर्जुन के संकेत पर भीम गदा–प्रहार से दुर्योधन की दोनों जघाये तोड़ देता ह। क्रोध में भीम तिरस्कार पूर्वक दुर्योधन के मस्तक पर पदाघात करता है।

मरणासन्न दुयोधन अश्वत्थामा को अन्तिम प्रधान सेनापति बनाता है। रात्रि में कृपाचार्य तथा कृतवर्मा के साथ अश्वत्थामा विजयोल्लास में निमग्न पाँचाल शिविर पर आक्रमण करता है। वह घृष्टद्युम्न को नृशंसता पूर्वक पीट–पीट कर मार डालता है। युधामन्यु और उत्तमौजा को भी बिना शस्त्र–प्रयोग के कण्ठ दबा कर मार डालता है। द्रौपदी के पाँचों पुत्रों का बध कर देता है। शिखण्डी के खण्ड–खण्ड कर देता है। अश्वत्थामा ने अपने क्रोध की अतिशयता में सम्पूर्ण पाँचाल स्कन्धावार का विनाश कर दिया।

द्रौपदी को अपने सारे पुत्रों के बध की सूचना मिली तो वह मर्माहित हो उठी। उसने युधिष्ठिर से कहा–"यदि आज आप रणभूमि में पराक्रम प्रकट कर उस पापाचारी अश्वत्थामा के प्राण नहीं हर लेते तो मैं यही अनशन कर अपने जीवन का अंत कर दूंगी।"

कृष्ण, अर्जुन और भीम ने वेदव्यास के आश्रम में गंगा की रेत में सन्यासियों के समूह के बीच अश्वत्थामा को बैठे देखा। भीम को अपनी

ओर आवेश में आते देख, अश्वत्थामा ने मन को एकाग्र कर 'ब्रह्मशिर' नामक देवास्त्र का प्रयोग किया। कृष्ण के कहने पर अर्जुन ने भी गुरुद्रोण द्वारा प्रदत्त 'ब्रह्मशिर' देवास्त्र को प्रयोग किया।

"दोनों 'ब्रह्मशि' जैसे आकाश में स्थिर हो गए थे। वे निरन्तर अग्नि उगल रहे थे। उनकी प्रक्रिया आरम्भ हो गयाी थी, और वे लक्ष्य को साध रहे थे। ऐसा लग रहा था जैसे संसार एक भंयकर अग्नि–सागर में स्नान करने की तैयारी में है। आकाश पर उल्कायें उड़ रही थीं और बज्रपात हो रहा था।"

विश्व के विध्वंस की प्रक्रिया देख कर नारद और व्यास ने अर्जुन और अश्वत्थामा से इन देवास्त्रों के उपसंहार की आज्ञा दी। अजितेन्द्रिय होने के कारण अश्वत्थामा देवास्त्र के प्रत्यावर्तन में समर्थ नहीं था, अतः उससे उसकी शक्ति सूक्ष्म करने के लिए कहा गया। अश्वत्थामा ने कहा तो भी यह अस्त्र पाण्डवों के गर्भ का नाश तो करेगी ही–

ऋषियों के कहने पर अश्वत्थामा का बध नहीं किया गया, केवल भीम ने अपने खड्ग से उसकी मणि काट ली।

हस्तिनापुर में क्रुद्ध घृतराष्ट्र अपने वंश के हत्यारे भीम को पीस डालने के लिए वात्सल्य के बहाने आगे बढ़ते हैं। दुर्योधन के गदायुद्ध के अभ्यास के लिए बनवाई गई भीम की लौह प्रतिमा को आलिंगनबद्ध करके उसे चूर–चूर कर देना चाहते हैं। इस प्रयास में घृतराष्ट्र के मूंह से

रक्तवमन होने लगता है।

उपन्यास का अन्त युधिष्ठिर के प्रति कृष्ण के इस उद्‌बोधन से होता है—

"तो आप भी अपने अवसाद को तिलांजलि दीजिए, ग्लानि का त्याग कीजिए। आपको अपार निर्माण करना है। इस युद्ध में हुए विनाश की क्षतिपूर्ति करनी है। इसलिए इस हताशाा से स्वयं को बंधन मुक्त करता है। वह जीवन में अवसाद नहीं उत्सव लाता हैं।"

नरेन्द्र कोहली के उपन्यासों का स्थान

नरेन्द्र कोहली ने पौराणिकता के आधार पर दो उपन्यास मालायें प्रस्तुत की हैं—

1—राम—कथामूलक उपन्यास

2—कृष्ण—कथामूलक उपन्यास

1—राम—कथामूलक उपन्यास

वैदिक तथा संस्कृत—साहित्य वाङ्मय में राम—कथा से सम्बन्धित विपुल सामग्री है। वैदिक संहिताओं, अथर्ववेद, ब्राह्मण—ग्रन्थ, तैन्तिरीय आरण्यक, उपनिषद—पूर्व तापनीय उपनिषद् उत्तर तपिनीय उपनिषद्, सीतोपनिषद्, वाल्मीकि रामायण, योग वासिष्ठ रामायण, अध्यात्म रामायण, अद्‌भुद रामायण, आनन्द रामायण, भुशिष्डि रामायण, तत्त्व—संग्रह रामायण, महाभारत के वनपर्व, द्रोण—पर्व, शान्ति पर्व में राम—कथा, विष्णु पुराण,

हरिवंश पुराण, वायु पुराण, भागवत पुराण, स्कन्द महापुराण, गरुड़ पुराण, ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, के अतिरिक्त संस्कृत प्रबन्ध काव्यों और नाटकों में राम कथा अनुस्यूत है। लेखक ने उपर्युक्त राम कथा स्रोतो को लेकर किन्तु प्रमुख रूप से वाल्मीकि रामायण पर आघृत होकर राम–कथा माला को सात खण्डो में विरचित किया है–

1–दीक्षा

2–अवसर

3–संघर्ष की ओर

4–साक्षात्कार

5–पृष्ठ भूमि

6–अभियान

7–युद्ध

भारतीय मनीषा अध्यात्म तथा दर्शन के जिस उच्चस्थ विन्दु तक पहुँच गई थी, विश्व की अन्य संस्कृतियों को वहाँ तक पहुँचने में शताब्दियाँ लगेगी। अपरा विद्या के द्वारा प्रेम मार्ग से सांसारिक विभूतियाँ तो प्राप्त हो सकती हैं, किन्तु शाश्वत शांति नहीं प्राप्त हो सकती । शाश्वत शान्ति के लिए तो परा विद्या और श्रेय मार्ग है, जिसे भारत की आर्ष संस्कृति में सवोच्च स्थान प्राप्त है। अपरा विद्या और प्रेम मार्ग से जो भी योग्य ऐश्वर्य प्राप्त होंगे वे नश्वर तथा दुःख परिणामी होगे। आज

प्रगतिशील देश इसी विद्या तथा मार्ग से चलकर अतिभौतिकता तथा उपभोक्तावादी दुःख परिणामी अपसंस्कृति में प्रवेश कर गये हैं। परमाण्विक ध्वंस पर बैठा विश्व ऐश्वर्य के जंगल में क्षुधित, तृषित एवं भयाक्रांत हैं । जो उपभोग हमारी चिंता तथा विनाश का कारण है– उसे प्राप्त कराने वाले पथ और साधन अपवित्र ही होंगे। हमारे आर्ष–चिन्तन तथा आध्यात्मिक अनुभूतियों ने युगों पूर्व हमें नित्य और शाश्वत का संदेश दे दिया था। नित्य एवं शाश्वत की यात्रा वस्तुतः धर्म की यात्रा है। इसी यात्रा पर चलकर राम ईश्वरत्व तक पहुँचे और रावण स्वर्णमयी विनाशशील लंका के राक्षसत्व तक। इसी मार्ग से युधिष्ठिर निर्बन्ध होकर सशरीर स्वर्ग पहुँचे और दुर्योधन सम्पूर्ण कुल का विनाश कर अपमान जनक मृत्यु तक।

यद्यपि नरेन्द्र कोहली के पूर्व भी पौराणिकता का पुनराख्यान हुआ है। वयंरक्षामः" (आचार्य चतुरसेन शास्त्री) जैसे बृहद उपन्यास लिखे गए है, किन्तु नरेन्द्र कोहली की विशेषता है कि वह मात्र शास्त्रीय पक्ष ही नहीं व्यावहारिक पक्ष भी उद्घाटित करते हैं। चमत्कारिकता, अलौकिकता, अविश्वसनीयता, तर्कहीनता के सन्दर्भों को उनकी लेखनी सामान्य सहज, व्यावहारिक, लौकिक, विश्वसनीय तथा तर्कसंगत बना देती है। राम कथा के बहुत ऐसे प्रसंग हैं, जो धर्म भीरुता अथवा श्रद्धा के कारण पूर्ववर्ती साहित्यकारों द्वारा प्रायः ज्यों के त्यों स्वीकार लिए गए हैं, किन्तु नरेन्द्र कोहली ने अविश्वनीय मिथकों को निस्संकोच तोड़ा है। पौराणिक वस्तु

विन्यास के माध्यम से वे समकालीन समस्याओं के कारण और उनके समाधान की भी चेष्टा करते हैं। इसीलिए उनकी रचनाधर्मिता की प्रासंगिकता उनको विशिष्ट स्थान प्रदान करती है। अहिल्या प्रसंग, अजगव प्रसंग, हनुमान का सागर उल्लंघन–प्रसंग मेघनाद का ब्रह्मास्त्र प्रसंग, सेतु बंध प्रसंग, सीता की अग्निपरीक्षा प्रसंग को औचित्य, विश्वसनीयता, सम्भवता तथा तर्कधर्मिता के आधार पर प्रस्तुत करके नरेन्द्र कोहली ने पौराणिकता पर आधारित उपन्यासकारों में अत्युच्च स्थान प्राप्त किया है। लेखक के कुछ समाधानों से अनुसंधित्सु सहमत नहीं हो सकी। जैसे शिव–धनुष अजगव में आत्मविस्फोट पदार्थ का होना तथा अजगव कहीं राक्षसों के हाथ न पड़ जाय नहीं तो वे उसका दुरुपयोग करेंगे इसलिए इसे नष्ट कर देना। यहाँ अनुसंधायिका का तर्क है कि अजगव के रूप में प्रक्षेपकास्त्र की संचालन–विधि सीख कर राम जैसे अस्त्रधारियों को उसे नष्ट करने की बजाय अपने पास ही रखना चाहिए था, जिससे दुष्ट राक्षसों के विरुद्ध वे ओर आसानी से सफलता प्राप्त करते। उपयोगी सामग्री की सुरक्षा की सामर्थ्य महत्त्वपूर्ण है। किसी सामग्री को नष्ट करना समस्या का समाधान नहीं, प्रत्युत उस सामग्री की सुरक्षा और सदुपयोग समस्या का समाधान है। राम को विश्वामित्र तथा अगस्त्यमुनि ने दिव्यास्त्र तथा ब्रह्मास्त्र दिये थे। राक्षसों के हाथ लग जाने की आशंका से क्या राम को इन अस्त्रों को नष्ट कर देना चाहिए था? या

उनका सदुपयोग करना चाहिए था, जैसा करके वेशवण जैसे अजेय राक्षस का संहार कर सके और आर्य—संस्कृति की रक्षा की।

2—कृष्ण कथा मूलक उपन्यास

विष्णु पुराण, हरिवंश पुराण, अत्रि संहिता, लघु हारीति स्मृति, पाराशर स्मृति, की सामग्री का उपयोग करके प्रमुख रूप से वेद व्यास कृत महाभारत पर आघृत कृष्णमूलक उपन्यास माला को उपन्यसकार नरेन्द्र कोहली के आठ खण्डों में प्रस्तुत किया। हिन्दी उपन्यास साहित्य में कदाचित् इससे बृहद् उपन्यास कोई नहीं है। राम—कथामूलक उपन्यास माला की भाँति इस उपन्यास माला में भी लेखक ने विश्वसनीयता तथा तर्कधर्मिता की रक्षा की है। उपन्यास माला के आठ खण्डों के नाम अघोप्रस्तुत है—

1—बन्धन

2—अधिकार

3—कर्म

4—धर्म

5—अंतराल

6—प्रच्छन्न

7—प्रत्यक्ष

8—निर्बन्ध

"बन्धन से –निर्बन्ध" तक की यात्रा में उपन्यासकार कर्म की अमोघ परिणामी सत्ता का साक्षात्कार कराता है। यदि कर्म सत्य अथवा धर्म के लिए किया गया है तो वह कर्म कितना ही महान् क्यों न हो वह बन्धनकारी है।–अतः दुःखद है। देवव्रत भीष्म ने अपने बृद्ध पिता शान्तनु की काम–पिपासा शान्त करने के लिए निषाद् दाशराज की पालिता पुत्री जो पहले ही पाराशर से कानीन पुत्र के रूप में कृष्ण द्वैपायन को जन्म दे चुकी थी–मत्स्यगंधा (सत्यवती) को शान्तनु की पत्नी और अपनी विमाता के रूप में हस्तिनापुर ले आए। सत्यवती को हस्तिनापुर लाकर शान्तनु की पत्नी बनाने के लिए उन्हें प्रतिज्ञा करनी पड़ी थी कि वे अपना युवराज पद त्याग देंगे और आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे अन्यथा उनकी संतति सत्ता के लिए सत्यवती की संतति से संघर्ष कर सकती है। यों तो देवव्रत ने पितृभक्ति का अत्युच्च मूल्य स्थापित किया था, किन्तु इस त्याग का परिणाम तो उनके बृद्ध पिता शान्तनु की विलासिता थी। एक बेमेल विवाह हुआ था। हस्तिनापुर सिंहासन देवब्रत भीष्म जैसे सुयोग्य उत्तराधिकारी से वंचित होकर दूषित महत्त्वाकाक्षाओं वाली माँ सत्यवती तथा विलासी बृद्ध शान्तनु की चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य जैसी अपात्र संतानों को प्राप्त हुआ। चित्रांगद की मृत्यु के बाद विचित्रवीर्य को सत्तारूढ़ किया गया। वह विलासी तथा दुर्बल था। भीष्म उसके लिए भी काशिराज की तीन पुत्रियों अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका का अपने शौर्य के

बल पर हरण किया। विचित्रवीर्य की निस्संतान मृत्यु के बाद सत्यवती के दबाव पर भीष्म में उसके कानीन पुत्र वेदव्यास को अम्बिका तथा अम्बालिका से नियोग पद्धति से क्षेत्रज संतानोत्पत्ति की अनुमति दे दी। अम्बिका से अंधे घृतराष्ट्र का अम्बालिका से रुग्ण तथा नपुंसक पाण्डु का और एक दासी से नीतिज्ञ विदुर का जन्म हुआ। भीष्म अंधे घृतराष्ट्र के लिए हस्तिनापुर की सैनिक सत्ता के दबाव में गांधार राजकुमारी गांधारी को हस्तिनापुर बुलवा लिया, जहाँ घृतराष्ट्र से उसका विवाह करवा दिया। नपुंसक पाण्डु स्वयंवर में कुन्तिभोज की पालिका कन्या कुन्ती से विवाह कर चुके थे, फिर भी सत्यवती की मन्त्रणा पर भद्रराज शल्य को मूल्य देकर उसकी बहन माद्री को पाण्डु से निवाहित करवा दिया। महान पुरुषार्थ तथा चरित्र के स्वामी भीष्म अनजाने ही कर्म बन्धन में न केवेल स्वयं बंधते जा रहे थे, प्रत्युत सम्पूर्ण युग को विध्वंस के अवश्यंभावी बन्धनों में निबद्ध करते जा रहे थे। कुपात्र के हाथ में सत्ता प्रजा के लिए भी घातक होती है और उसके स्वयं के लिए भी। भीष्म के अथक प्रयास के बाद भी कथित कुरु–राजवंश ईर्ष्या, अविश्वास तथा अन्तःकलह से न बच सका। तत्कालीन राजवंशो में अपनी विशिष्ट शक्तिशाली और महत्त्वपूर्ण स्थिति के अनुसार ही हस्तिनापरु अपने नियति के वाल्याचक्र में अन्य भारतीय राज्यवंशों को भी तिनकों की तरह उड़ाये लिये जा जा रहा है था। अधिकार, कर्म, धर्म, अन्तराल, प्रच्छन्न से गुजरती, हुयी यह युग–यात्रा

'प्रत्यक्ष' का साक्षात्कार करने के लिए विवश हो गई। वाह्य संसार का समस्त घटना–चक्र वस्तुतः स्वयं अपने ही मन के सूक्ष्म विकारों का रूपान्तरण मात्र होता है। मार्यादाओं का उल्लंघन करने से ये मनो जगत की विकृतियां समस्त मानसिक परिवेश को विकारग्रस्त कर देती हैं। मानसिक विकार ग्रस्त व्यक्ति इच्छा और आवश्यकता के भेद नहीं कर पाता। वह अपनी उपलब्धियां नहीं देखता दूसरों की असमर्थता और पीड़ा देखना चाहता है। 'बन्धन' से उत्पन्न परिस्थितियों को कुत्सित परिवेश में पले दुर्योघन का विकास इसी परपीड़क मानसिकता से युक्त व्यक्ति के रूप मे ही हो सकता था। वहीं दूसरी ओर आश्रमों के पुनीत वातावरण में युधिष्ठिर का मानसिक धरातल संतोष तथा दूसरों के सुख से प्रसन्न हो जाने वाला है। यद्यपि, भीष्म कालीन सत्ता के कर्म बन्धन में वह भी जकड़ा है, किन्तु उसका मानसिक विकास दुर्योधन के समान कुत्सित नहीं हुआ। दुर्योधन के सुख में प्रच्छन्न रूप से दुख बैठा है। दूसरे को दुःखी देखे बिना वह सुखानुभूति नहीं कर सकात जब कि युधिष्ठिर की अव्यवहारिकता (गैर दुनियादारी) में प्रच्छन्न रूप से बैठा है। धर्म! मनुष्य संघर्ष से नहीं बच सकता। उससे बाहरी परिवेश में भी संघर्ष संन्दर्भ दिखाई पड़ते हैं और आन्तरिक परिवेश में भी। काम–क्रोध–मोह–लोभ–मत्सर तथा अहंकार से बड़ा उसके बाहरी विश्व में कोई शत्रु नहीं हो सकता। यदि व्यक्ति अपने धर्म पर टिका रहता है और उपने अन्तःकरण में समस्त

शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेता है—तो वह इसी देह से युधिष्ठिर की तरह स्वर्ग जा सकता है। यदि वह शान्त और संतुष्ट है, तो स्वर्ग में ही है और यदि असंतुष्ट और अशान्त है, तो नरक में ही है। लोभ, त्रास और स्वार्थ के विरुद्ध मनुष्य के इस सात्विक समर को नरेन्द्र कोहली ने 'महाभारत' के पौराणिक आधार पर मौलिक रूप से प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास के निष्कर्ष नरेन्द्र कोहली को महान् उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। भीष्म जब तक कर्त्ता बनकर अपने त्याग, बलिदान, सहिष्णुता तथा पुरुषार्थ के बल पर स्थितियों को मनोवांछित रूप देने का प्रयास करते रहे, तब तक वे 'बन्धन' के संताप और पीड़ा से व्यथित रहे। किन्तु जब उन्होंने स्वयं को असमर्थ मानकर परिवेश के लिए अपने को अनावश्यक समझा तब स्वयं को समरभूमि से हटाने का प्रबंध कर लिया तब आजीवन स्वयं को बांधे रखने वाले भीष्म ने अन्तिम समय में स्वेच्छा से स्वयं को मुक्त कर लिया। यही 'इच्छामुक्ति' है। धर्म बांधता नहीं मुक्त करता है। जो मुक्त नहीं करता बांधता है, वह अधर्म है।

इस प्रकार अनुसंधित्सु इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि नरेन्द्र कोहली ने पौराणिक पृष्ठभूमि पर तर्क, दर्शन और अध्यात्म से मानवता के लिए ऐसे स्वर्ग को सृजित करने में सफलता पाई है, जिसमें मुक्ति ही मुक्ति है—शान्ति ही शान्ति है।

निश्चय ही नरेन्द्र कोहली के इस सात्विक प्रयास को सफल कहा

जा सकता है और अनुसंधित्सु को अभिमत है कि पौराणिकता के औपन्यासिक प्रयोगधर्मी उपन्यासकारों में उन्होंने सफल तथा सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त किया है।

(ख) नरेन्द्र कोहली का उपन्यासेतर साहित्य परिचयात्मक अवबोध –

लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार नरेन्द्र कोहली को ख्याति उनके पौराणिक सन्दर्भों पर लिखे गये राम–कथामूलक तथा कृष्ण–कथामूलक उपन्यासों से मिली है। इन उपन्यासों के अतिरिक्त उन्होंने अन्य उपन्यास भी विरचित किये हैं जैसे–

1–पुनरारम्भ

2–आतंक

3–आश्रितों का विद्रोह

4–साथ सहा गया दुःख

5–मेरा अपना संसार

6–जंगल की कहानी

7–अभिज्ञान

8–आत्मदान

9–प्रीति कथा

10–तोड़ो कारा तोड़ो

11–क्षमा करना जीजी

नरेन्द्र कोहली की लेखनी ने उपन्यासों के अतिरिक्त हिन्दी गद्य साहित्य की अन्य विधाओं पर भी अपनी अस्मिता के हस्ताक्षर किए हैं। उनके उपन्यासेतर साहित्य का विवरण इस प्रकार है–

कहानी संग्रह

1–परिणति

2–कहानी का अभाव

3–दृष्टिदेश में एकाएक

4–शटल

5–नमक का कैदी

6–निचले प्लैट में

7–संचित भूख

8–मेरी तेरह कहानियाँ

नाटक–

1–शंबूक की हत्या

2–निर्णय रुका हुआ

3–हत्यारे

4–गारे की दीवार

5—संघर्ष की ओर

6—किष्किंधा

7—अगस्त्य—कथा

व्यंग्य—

1—एक और लाल तिकोन

2—पाँच एब्सर्ड उपन्यास

3—जगाने का अपराध

4—आधुनिक लड़की की पीड़ा

5—त्रासदियाँ

6—परेशानियाँ

7—आत्मा की पवित्रता

8—गणतन्त्र का गणित

9—देश के शुभचिन्तक

10—त्राहि—त्राहि

11—इश्क एक शहर का

12—रामलुभाया कहता है

13—मेरे मुहल्ले के फूल

14—मेरी इक्यावन व्यंग्य रचनाएँ

निबन्ध—

1—नेपथ्य

2—माजरा क्या है

3—जहाँ है धर्म, वहीं है जय

4—किसे जगाऊँ?

संस्मरण—

1—बाबा नागार्जुन

2—प्रतिनाद

3—स्मरामि

बाल साहित्य—

1—गणित का प्रश्न

2—आसान रास्ता

3—एक दिन मथुरा में

4—हम सबका घर

5—तुम अभी बच्चे हो

6—समाधान

7—कुकुर

नरेन्द्र कोहली की लेखनी अभी चल रही है। हिन्दी साहित्य को उनसे बहुत आशायें है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1—संघर्ष की ओर —नरेन्द्र कोहली पृ 170

2—दीक्षा—नरेन्द्र कोहली पृ 152

3—अन्तराल— नरेन्द्र कोहली पृ 96

4—अन्तराल— नरेन्द्र कोहली पृ 94

5—अन्तराल—नरेन्द्र कोहली पृ0 100

6—दीक्षा—नरेन्द्र कोहली पृ 192

7—अवसर—नरेन्द्र कोहली पृ 191—92

8—संघर्ष की ओर—नरेन्द्र कोहली—पृ—8—9

9—साक्षात्कार—नरेन्द्र कोहली—पृ—144

10—पृष्ठभूमि—नरेन्द्र कोहली पृ—12

11—पृष्ठभूमि—नरेन्द्र कोहली पृ—189

12—युद्ध—नरेन्द्र कोहली—173

13—ब्रह्मासृष्टिर्विष्णुपलिनंशिर्समाहारं करोति

गरुड़ पुराण 83/242

14—हरिवंश पुराण—23/44

तृतीय अध्याय

(क) नरेन्द्र कोहली के राम कथा मूलक उपन्यासः

सांकेतिक परचिय–

(ख) 'महासमर' उपन्यास माला पर पौराणिकता का प्रभाव

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

तृतीय अध्याय

(क) नरेन्द्र कोहली के राम कथा मूलक उपन्यास : सांकेतिक परिचय–

वैदिक तथा संस्कृत–साहित्य वाङ्मय में राम–कथा से सम्बन्धित विपुल सामग्री है। वैदिक संहिताओं, अथर्ववेद, ब्राह्मण–ग्रन्थ, तैन्तिरीय आरण्यक, उपनिषद–पूर्व तपिनीय उपनिषद् उत्तर तपिनीय उपनिषद्, सीतोपनिषद्, वाल्मीकि रामायण, योग वाशिष्ठ रामायण, अध्यात्म रामायण, अद्भुद रामायण, आनन्द रामायण, भुशिष्डि रामायण, तत्त्व–संग्रह रामायण, महाभारत के वनपर्व, द्रोण–पर्व, शान्ति पर्व में राम–कथा, विष्णु पुराण, हरिवंश पुराण, वायु पुराण, भागवत पुराण, स्कन्द महापुराण, गरुड़ पुराण, ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, के अतिरिक्त संस्कृत प्रबन्ध काव्यों और नाटकों में राम कथा अनुस्यूत है। लेखक ने उपर्युक्त राम कथा स्रोतो को लेकर किन्तु प्रमुख रूप से वाल्मीकि रामायण पर आधृत होकर राम–कथा माला को सात खण्डो में विरचित किया है–

1–दीक्षा

2–अवसर

3–संघर्ष की ओर

4–साक्षात्कार

5—पृष्ठ भूमि

6—अभियान

7—युद्ध

भारतीय मनीषा अध्यात्म तथा दर्शन के जिस उच्चस्थ विन्दु तक पहुँच गई थी, विश्व की अन्य संस्कृतियों को वहाँ तक पहुँचने में शताब्दियाँ लगेगी। अपरा विद्या के द्वारा प्रेम मार्ग से सांसारिक विभूतियाँ तो प्राप्त हो सकती हैं, किन्तु शाश्वत शांति नहीं प्राप्त हो सकती । शाश्वत शान्ति के लिए तो परा विद्या और श्रेय मार्ग है, जिसे भारत की आर्ष संस्कृति में सवोच्च स्थान प्राप्त है। अपरा विद्या और प्रेम मार्ग से जो भी योग्य ऐश्वर्य प्राप्त होंगे वे नश्वर तथा दुःख परिणामी होगे। आज प्रगतिशील देश इसी विद्या तथा मार्ग से चलकर अतिभौतिकता तथा उपभोक्तावादी दुःख परिणामी अपसंस्कृति में प्रवेश कर गये हैं। परमाण्विक ध्वंस पर बैठा विश्व ऐश्वर्य के जंगल में क्षुधित, तृषित एवं भयाक्रांत हैं । जो उपभोग हमारी चिंता तथा विनाश का कारण है– उसे प्राप्त कराने वाले पथ और साधन अपवित्र ही होंगे। हमारे आर्ष–चिन्तन तथा आध्यात्मिक अनुभूतियों ने युगों पूर्व हमें नित्य और शाश्वत का संदेश दे दिया था। नित्य एवं शाश्वत की यात्रा वस्तुतः धर्म की यात्रा है। इसी यात्रा पर चलकर राम ईश्वरत्व तक पहुँचे और रावण स्वर्णमयी विनाशशील लंका के राक्षसत्व तक। इसी मार्ग से युधिष्ठिर निर्बन्ध होकर सशरीर स्वर्ग

पहुँचे और दुर्योधन सम्पूर्ण कुल का विनाश कर अपमान जनक मृत्यु तक।

यद्यपि नरेन्द्र कोहली के पूर्व भी पौराणिकता का पुनराख्यान हुआ है। वयंरक्षामः'' (आचार्य चतुरसेन शास्त्री) जैसे बृहद उपन्यास लिखे गए है, किन्तु नरेन्द्र कोहली की विशेषता है कि वह मात्र शास्त्रीय पक्ष ही नहीं व्यावहारिक पक्ष भी उद्‌घाटित करते हैं। चमत्कारिकता, अलौकिकता, अविश्वसनीयता, तर्कहीनता के सन्दर्भों को उनकी लेखनी सामान्य सहज, व्यावहारिक, लौकिक, विश्वसनीय तथा तर्कसंगत बना देती है। राम कथा के बहुत ऐसे प्रसंग हैं, जो धर्म भीरुता अथवा श्रद्धा के कारण पूर्ववर्ती साहित्यकारों द्वारा प्रायः ज्यों के त्यों स्वीकार लिए गए हैं, किन्तु नरेन्द्र कोहली ने अविश्वनीय मिथकों को निस्संकोच तोड़ा है। पौराणिक वस्तु विन्यास के माध्यम से वे समकालीन समस्याओं के कारण और उनके समाधान की भी चेष्टा करते हैं। इसीलिए उनकी रचनाधर्मिता की प्रासंगिकता उनको विशिष्ट स्थान प्रदान करती है। अहिल्या प्रसंग, अजगव प्रसंग, हनुमान का सागर उल्लंघन–प्रसंग मेघनाद का ब्रह्मास्त्र प्रसंग, सेतु बंध प्रसंग, सीता की अग्निपरीक्षा प्रसंग को औचित्य, विश्वसनीयता, सम्भवता तथा तर्कधर्मिता के आधार पर प्रस्तुत करके नरेन्द्र कोहली ने पौराणिकता पर आधारित उपन्यासकारों में अत्युच्च स्थान प्राप्त किया है। लेखक के कुछ समाधानों से अनुसंधित्सु सहमत नहीं हो सकी। जैसे शिव–धनुष अजगव में आत्मविस्फोट पदार्थ का होना

तथा अजगव कहीं राक्षसों के हाथ न पड़ जाय नहीं तो वे उसका दुरुपयोग करेंगे इसलिए इसे नष्ट कर देना। यहाँ अनुसंधायिका का तर्क है कि अजगव के रूप में प्रक्षेपकास्त्र की संचालन–विधि सीख कर राम जैसे अस्त्रधारियों को उसे नष्ट करने की बजाय अपने पास ही रखना चाहिए था, जिससे दुष्ट राक्षसों के विरुद्ध वे ओर आसानी से सफलता प्राप्त करते। उपयोगी सामग्री की सुरक्षा की सामर्थ्य महत्त्वपूर्ण है। किसी सामग्री को नष्ट करना समस्या का समाधान नहीं, प्रत्युत उस सामग्री की सुरक्षा और सदुपयोग समस्या का समाधान है। राम को विश्वामित्र तथा अगस्त्यमुनि ने दिव्यास्त्र तथा ब्रह्मास्त्र दिये थे। राक्षसों के हाथ लग जाने की आशंका से क्या राम को इन अस्त्रों को नष्ट कर देना चाहिए था? या उनका सदुपयोग करना चाहिए था, जैसा करके वे रावण जैसे अजेय राक्षस का संहार कर सके और आर्य–संस्कृति की रक्षा की।

1 दीक्षा– दीक्षा देश में सर्वत्र राक्षसी आतंकवाद का प्रसाद होता जा रहा है। कौशिमी नदी के तट पर अपनी प्रिय तपोभूमि को छोड़कर महर्षि विश्वामित्र ने ताड़का बन के समीप (वर्तमान विहार प्रान्त का वक्सर) 'सिद्धाश्रम' में आध्यात्मिक अनुष्ठान और यज्ञ आदि करके आर्य संस्कृति को सुरक्षित और प्रसारित करने का उपक्रम करते हैं। राक्षसों के आतंकवादी तन्त्र के अधिनायक रावण की योजना तथा आदेशानुसार वनांचल के निवासियों को यदि उनमें कोई समर्थ है तो उसे राक्षस बनाया

जा रहा है और शेष से निःशुल्क कठोर तथा आत्मघाती उत्पादक कर्म करवाये जा रहे है। आर्य संस्कृति के प्रचारक तपस्विओ, ऋषियों–मुनियों को हिंसक आक्रमणों से आतंकित किया जा रहा है। यद्यपि ये ऋषि अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध किए होते है, तो भी अवसर मिलने पर राक्षस इन्हें मार कर खा भी जाते हैं। वनवासियों की तरुणियों पर बलात्कार तो साधारण बाते हैं। कोल–भील किरात आदि वनवासी जातियों को दास बनाकर उनका पीढ़ी दर पीढ़ी शोषण जारी है। समाज के अतिउच्चवर्ग–देववर्ग का अधिपति इन्द्र राक्षसों का तो विरोधी है किन्तु जनता के शोषण में वह भी किसी से पीछे नहीं। गौतम ऋषि की तेजस्वी तथा सुन्दर पत्नी अहिल्या के साथ इन्द्र बलात्कार करता हैं। युग चेतना को कल्याण मार्ग पर अग्रसर करना अपना कर्तव्य समझ कर विश्वामित्र राक्षसों का आतंक समाप्त करने समाज में प्रचलित अंधविश्वासों तथा शोषक कुरीतियों को नष्ट करने के लिए सशस्त्र शक्ति के अभ्युदय का निश्चय करते हैं। वे अयोध्या से दशरथ पुत्र राम तथा लक्ष्मण को अपने साथ ला कर उन्हें वैचारिक धरातल पर रक्ष संस्कृति के विरुद्ध अभियान के लिए दीक्षित करते हैं। राम के द्वारा ताड़का तथा सुबाहु का बध होता है। मारीचि घायल होकर भाग जाता है। वनांचल में उत्साह छा जाता है। ताड़का और उसके योद्धाओं को मारना तो दूर उनका विरोध तक करना अविश्वसनीय घटना थी। राम इन वनवासियों को संगठित और शस्त्रास्त्र

में प्रशिक्षित करते हैं। दबे कुचले लोगों में आत्मविश्वास उत्पन्न करते हैं। उन्हें इस योग्य बनाते हैं कि वे अन्याय और आंतक का न केवल विरोध कर सकें प्रत्युत उसका उन्मूलन कर सकें। विश्वामित्र राम को विविध शस्त्रास्त्र प्रदान करते हैं और उन्हें सीरध्वज जनक के यहा रखे शिव–चाप 'अजगव' का रहस्य बताते हैं कि वह एक प्रक्षेपास्त्र है। उसमें आत्म विस्फोट पदार्थ है। कोई 'अजगव' की परिचालन विधि नहीं जानता अन्यथा यह बहुत शक्तिशाली अस्त्र है। यदि यह राक्षसों के हाथ पड़ गया तो इसका दुरुपयोग होगा। विश्वामित्र राम को 'अजगव' की परिचालन पद्धति तथा आत्म–विस्फोट पदार्थ को सक्रिय करने की विधि राम को बताते हैं ताकि 'अजगव' नष्ट हो सके। राक्षसों के हाथ पड़ने की आशंका समाप्त हो सके और राम का सीता से विवाह हो सके तब मिथिला और कोसल राज्यों का मनमुटाव दूर हो और आर्य–शक्ति का संगठन दृढ़ हो सके। मार्ग में राम विश्वामित्र की इच्छानुसार बलात्कार के बाद समाज –परित्यक्ता अहिल्या (जिसके कारण उन्हें पत्थर की हो जाना कहा गया) के आश्रम पर गए। उन्हें समाजिक मान्यता दिला कर गौतम ऋषि के आश्रम में उनका प्रवेश कराया अर्थात् पत्थर हो गई अहल्या को जीवित किया। राम द्वारा अहिल्या से कहे शब्द युगीन सन्दर्भों में अपनी अति प्रसंगिकता रखते हैं–मैं उन सम्पूर्ण लोगों की ओर से आपसे क्षमा–याचना करता हूँ, जिन्होंने आपसे अपराध किया है, और प्रतिज्ञा करता हूँ कि

जीवन में जब कभी इन्द्र से साक्षात्कार हुआ, उसे प्राण दण्ड दूँगा।........

....................मैं प्रयत्न करूँगा कि इस जड़ता को यथा–शक्ति तोड़ूँ। आपने वर्षों की प्रतीक्षा की है देवि! आपकी प्रतीक्षा समाप्त हुई। जाइए, अपने पति के आश्रम में पधारिए। अब कोई आपको परित्यक्ता, पतित, हीन तथा सामाजिक और नैतिक दृष्टि से हेय कहने का साहस नहीं करेगा। मैं कौशल्या–पुत्र राम, वचन देता हूँ, कि यदि समाज ने आपको स्वीकार नहीं किया तो मैं या तो आपको प्रतिष्ठा दिलाऊँगा या इस दलित समाज का नाश कर, नया समाज बनाऊँगा।''

सीरध्वज जनक की रंगशाला में विश्वामित्र के निवेदन पर 'अजगव' लाया गया। किसी को विश्वास नहीं था कि कौशल राजकुमार राम 'अजगव' को परिचालित कर सकेंगे।

विश्वामित्र की बताई युक्ति से राम ने न केवल 'अजगव' को परिचालित किया, प्रत्युत उसके आत्म विस्फोट पदार्थ को सक्रिय कर अजगव का विध्वंस कर दिया। सीता राम के कण्ठ में वरमाला डाल देतीं है। ''सीरध्वज प्रेम के आवेश में आंदोलित अपनी राज–मर्यादा को भुला कर प्रायः मागते हुए आगे बढ़े और उन्होंने राम को अपनी भुजाओं में भर, कंठ से लगा लिया।''

(2) अवसर–

अयोध्या की राजनैतिक घटनाओं से यह उपन्यास प्रारम्भ होता है।

दशरथ को साम्राज्य पर कैकेयी के बढ़ते प्रभाव को देख कर उनके मन में राजनैतिक भय व्याप्त होता है। वह भरत–शत्रुघ्न की अनुपस्थिति में कैकेयी की शक्ति को घटाने के लिये राम के युवराज्याभिषेक का निर्णय लेते हैं। मन्थरा के भड़काने पर कैकेयी कोप भवन में जाती है और दशरथ से दो वचन माँग कर कि इसी सामग्री से भरत का युवराज्याभिषेक हो तथा राम तापस वेश चौदह वर्ष के लिए वन में निवास करें–दशरथ को मर्महित कर देती है। राम विश्वामित्र से निर्देशित थे कि उन्हें राक्षसी आतंकवाद को समाप्त करके महान आर्य संस्कृति की प्रतिष्ठा करनी है। इस अवसर को राम ने वरदान समझा और बन जाने के लिए सहमत हो गए। उनके साथ लक्ष्मण तथा सीता भी बन गए। निषादराज गुह से मिलते हुए, प्रयाग में महर्षि भारद्वाज के दर्शन करते हुए राम चित्रकूट में महर्षि वाल्मीकि के दर्शन करते हैं। राम मन्दाकिनी नदी के किनारे आश्रम बनाकर रहने लगते हैं। वहाँ राक्षसी उत्पात नहीं है। राम 'सिद्धाश्रम' के अनुभव के आधार पर यहाँ जनशक्ति को संगठित करते हैं। राक्षसों के विरुद्ध उन्हें सशस्त्र संघर्ष का प्रशिक्षण देते हैं। राम को मनाने के लिए भरत चित्रकूट आते हैं किन्तु राम पिता की आज्ञा पूरी किये बिना अयोध्या लौटने के लिए तैयार नहीं होते।

राम ने चित्रकूट की जनता को मानसिक रूप से राक्षसी अत्याचार का विरोध करने के लिये सुदृढ़ कर लिया। उन्हें शस्त्रास्त्र में भी प्रशिक्षित

किया अब राम ने यहाँ अपना उद्देश्य पूरा हुआ समझ आगे बढ़ने की सोची। चित्रकूट वासियों को राम का जाना अच्छा नहीं लग रहा था। उन्होंने उन्हें उद्बोधित किया–"नहीं! राम ने उसकी आँखों की ओर देखा, तुमने स्वयं अत्याचार सहा है। फिर तुम्हें 'तपस्वी' जीवन का अभ्यास है जो उद्घोष और उसके साथियों को नहीं है। अतः जागरूक श्रमिक तथा बुद्धिजीवी जनता में भाई–चारा बनाए रखने के लिए तुम यहाँ रहोगे। किन्तु सावधान मित्रों! बुद्धिजीवी होने के अहंकार में जन–सामान्य से दूर मत हो जाना–अन्यथा तुम शोषकों के हाथ के खिलौने बन जन सामान्य के शत्रु हो, क्रान्ति की प्रक्रिया की सबसे बड़ी बाधा बन जाओगे।"

3–संघर्ष की ओर–

राम चित्रकूट छोड़कर अत्रि आश्रम से गुजरते हुए शरभंग आश्रम पहुँचे, जहाँ उन्होने महर्षि शरभंग को चिता में जलते देखा। ऋषि के शिष्यों ने बताया कि महर्षि यहाँ पूंजीपतियों का विरोध करके श्रमिकों को प्रश्रय देते थे। कोयले की खानों में खतरे के काम करने वाले श्रमिकों को प्राण–रक्षक सुविधायें तथा उनकों उचित पारिश्रमिक देने के लिए उनका खान –स्वामियों से तनाव चलता रहता था। ज्ञानश्रेष्ठ नामक व्यक्ति ने राम को बताया कि इन दिनों ऋषि आपकी बहुत प्रतीक्षा कर रहे थे, और आपके शस्त्रासों के प्रति जिज्ञासा प्रकट करते थे। आत्मचिंतन के स्थान पर अब वे संगठन और युद्ध जैसे विषयों पर चर्चा करने लगे थे। तीन

दिन पहले यहाँ इन्द्र पधारे तो ऋषि को बहुत प्रसन्नता हुई। इन्द्र ने एकान्त में महर्षि से न जाने क्या बातें की कि इन्द्र के जाने के बाद से ऋषि की आँखों में निराशा प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगी थी। उन्होंने तीन दिन आपकी प्रतीक्षा की किन्तु आज निराश होकर आत्मदाह कर लिया। ज्ञान श्रेष्ठ ने यह भी राम को बताया कि ऋषि अपने आपसे कह रहे थे–''........................न्याय का क्या होगा......................धनवान और सत्तावान तो पहले रक्तपात कर रहा है, बुद्धिजीवी भी उन्हीं के षड्यन्त्र में सम्मिलित हो जायेगा, तो फिर दुर्बल और असहाय मानवता का क्या होगा। ये कमकर, ये श्रमिक, ये दास–ये इसी प्रकार मरते–खपते रहेंगे, पशुओं के समान जीवन काटेंगे? मानव की श्रेणी में ये कभी नहीं आयेंगे. ....रावण बुद्धिजीवियों को खा जाता है, इन्द्र उन्हें खरीद लेता है... ....तो कौन आएगा उनकी सहायता को?''

राम ने समझ लिया कि श्रमिक एक सम्पत्ति है। उनका सब शोषण चाहते हैं। बुद्धिजीवी श्रमिकों को जागरूक कर सकता है, शोषण के विरुद्ध उसे संगठित कर सकता है। उन्हें शोषण का स्वरूप और अपने सुखों के अधिकार का ज्ञान करा सकता है। रावण अपने ढ़ग से बुद्धिजीवियों का प्रयास नष्ट करता है और इन्द्र अपने प्रकार से।

राम मानवता के शोषण के विरुद्ध जन–चेतना को जागरुक करते हैं। वे ज्यो–ज्यों सफल होते हैं त्यों–त्यों राक्षस तन्त्र उनके विरुद्ध विविध

योजनायें बनाता है। राम के शस्त्रास्त्रों तथा जनवाहिनी के सामने राक्षस ठहर नहीं पाते। सुतीक्षण के आश्रम में आते समय एक विकट राक्षस वैदेही को उठाकर भाग रहा था। राम–लक्ष्मण को उससे संघर्ष करना पड़ा। मृत्यु के पूर्व उसने बताया कि मैं पहले विराध गंधर्व था, अब राक्षस हो गया था। यानी जिनमें शारीरिक क्षमता होती थी, उसे रावण का तन्त्र अपने शोषक संगठन में सम्मिलित कर लेता था। उसे राक्षस बना लेता था। इन्द्र और रावण दोनों ही शोषक व्यवस्था के सूत्रधार थे।

राम ने कुछ दिन सुतीक्ष्ण आश्रम में ठहर कर वहाँ जन वाहिनियाँ गठित की, और आगे बढ़कर अगस्त्य आश्रम पहुँचे। महर्षि अगस्त्य और उनकी विदुषी पत्नी लोपामुद्रा चालीस वर्ष से जन–जागरण कर रहे थे। उन्होंने राम को कुछ दिव्यास्त्र और ब्रह्मास्त्र दिये।

4 साक्षात्कार–

अगस्त्य आश्रम से चलकर राम दण्डकारण्य में पंचवटी में अपना आश्रम बनाते हैं। वहीं उनको भेंट गृद्ध जाति के आर्य जटायु से भेंट होती है। जटायु स्वयं राक्षस संस्कृति से संघर्ष कर रहा होता है। जनस्थान में राक्षसों का एक बड़ा स्कन्धावार है। वहाँ चौदह हजार सशस्त्र राक्षस सैनिकों की वाहिनी है, जिसके सेनापति रावण के बन्धु–बान्धव, खर, दूषण तथा त्रिशिरा हैं। स्वयं रावण की बहन शूर्पणखा इस स्कन्धावार का स्वामित्त्व करती है। स्वकन्धारवार के इतने निकट राम का आश्रम बनाना

उसे विस्मित कर गया। राम की ख्याति तो उसके कानों तक पहुँच चुकी थी, किन्तु राम इतना निर्भीक होगा—यह नहीं सोचा था शूर्पणखा ने। उसने छिप कर राम को देखा। राम के पुरुषोचित सौन्दर्य पर वह रीझ गई। उसने विशेष श्रृंगार करके राम को काम मोहित करना चाहा। राम ने स्वयं को विवाहित बताते हुए उससे लक्ष्मण से सम्पर्क करने के लिए कहा। लक्ष्मण के इनकार करने पर उसने समझा कि जब तक सीता जैसी सुन्दरी इन तपस्यियों के साथ है तब तक वह इन्हे प्राप्त नही कर सकती। अतः उसने सीता पर आक्रमण कर दिया। राम के संकेत पर लक्ष्मण ने अपने खड्ग से शूर्पणखा के नाक—कान चिह्नित करके उसे भगा दिया।

अब शूर्पणखा प्रतिशोध लेने के लिए राक्षस सेना पर राम पर आक्रमण करवाने के लिये विवश थी, किन्तु उसका आदेश था कि राम को जीवित बन्दी बनाय जाये। राम ने अपनी प्रशिक्षित जनवाहिनी के सहयोग से खर, दूषण, त्रिशिरा सहित चौदह हजार राक्षसों का बध कर दिया।

शूर्पणखा भागकर लंका पहुँचती है। वहाँ रावण को सीता—हारण के लिए प्रोत्साहित करती है। शूर्पणखा राम को किसी भी स्थिति में प्राप्त करना चाहती है अतः वह अशोक वाटिका से सीता की प्रमुख रक्षिका 'त्रिजटा' को बुलाकर उसे पुरस्कार देने का लालच देती है और कहती है—

"तुम्हें निरन्तर यह प्रयत्न करना है कि सीता का आत्मबल कम न हो। उसे सांत्वना देती रहो। उसे राम के, सेना सहित आने का विश्वास दिलाती चलो................किसी प्रकार वह सम्राट की शक्ति से भयभीत न हो, उनकी सत्ता से अभिभूत न हो। वह हताश न हो— न आत्म हत्या की बात सोचे, न आत्म समर्पण की उसका साहस ओर जिजीविषा बनी रहे।"

शूर्पणखा जानती है कि यदि सीता जीवित रहेगी, तो राम लंका पर अवश्य आक्रमण करेगा। तब राम को बन्दी बनवाकर वह उसका भोग कर सकेगी।

5—पृष्ठ भूमि—

सीता हरण के बाद राम सीता की खोज में जटायु के संकेत पर दक्षिण की ओर यात्रा प्रारम्भ करते हैं। किष्किंधा का वानरराज वाली बहुत शक्ति शाली, किन्तु अंधविश्वासी है। वह अपने प्रचण्ड पराक्रम से महिषरूप में शक्तिशाली दैत्य दुन्दुभी का बध करता है। मय दानव का पुत्र मायावी किष्किंधा में मादक पदार्थों तथा नारी देह का व्यापार करने के अपराध में युवराज सुग्रीव द्वारा बन्दी बनाया जाता है। सुग्रीव की अनुपस्थिति में राज्यसभा में जब वह अभियुक्त के रूप में उपस्थित किया जाता है। तो वह बताता है कि मेरा अपराध मात्र यह है कि मैं थके हुए मन को विश्राम देता हूँ! वाली को यह कार्य अपराध नहीं लगता। वह मायावी से कहता है—

''मायावी'' यदि तुम मेरे थके मन को विश्राम दे पाओगे, तो समझूँगा कि तुम बैद्य का कार्य कर रहे हो, अन्यथा तुम जानते ही होगे कि मैं अपराधी को कठोर दण्ड देता हूँ।

मायावी वाली को अति रूपवती तरुणी अलका को भेंट में देता है। अलका को पाकर वाली कृतार्थ हो जाता है। वह मायावी को न केवल अपने राज्य में व्यापार की छूट देता है बल्कि उसे राज्यपरिषद् में 'महासामन्त' की उपाधि भी प्रदान करता है। वाली को जब यह पता चलता है कि मायावी उसकी प्रिया अलका से अभी शारीरिक संबन्ध बनाये हुए है, तो वह मायावी को मारने का प्रयास करता है। मायावी किष्किंधा की टूटी प्राचीर से कूद कर भाग जाता है। सबके रोकने पर भी वाली उसका पीछा करता है। बहुत खोज करने पर बहुत दिनों बाद मायावी वाली को अपने दो साथियों के साथ मिलता है। वाली उसका पीछा करता है। तो वह एक गुफा में प्रवेश कर जाता है। वाली अपनी गदा से खड्गधारी राक्षसों से युद्ध करता है। अन्त में वह दोनों साथियों समेत मायावी का वध करके किष्किंधा वापस लौटत है तो इस बात पर उसे बहुत क्रोध आता है, कि उसकी अनुपस्थिति में सुग्रीव किष्किंधा का राजा बन चुका है। वह सुग्रीव पर आक्रमण कर देता है। सुग्रीव भाग कर ऋष्यमूक पर्वत पर अपने जीवन की रक्षा करता है। वाली के ज्योत्सी ने दुन्दुभी की मृत्यु के बाद वाली को मंतगवन में स्थित ऋष्यमूक पर्वत पर

न जाने का परामर्श दिया था, क्योंकि वह क्षेत्र उसके लिये काल क्षेत्र था। वाली वहाँ नहीं जाता किन्तु सुग्रीव की पत्नी समा को अपनी पत्नी बना लेता है।

ऋष्यमूक पर्वत पर अग्नि को साक्षी मान कर राम सुग्रीव की मैत्री होती है। राम सात ताल वृक्षों को एक ही बाण से काट कर सुग्रीव को विश्वास दिला जाते हैं कि वह वाली का बध कर सकते हैं। सुग्रीव और वाली का द्वन्द्व युद्ध होता है। राम के बाण से वाली की मृत्यु होती है। सुग्रीव का राज्याभिषेक तथा वाली के पुत्र अंगद का युवाराज्याभिषेक होता है। सुग्रीव अपने भोग–विलास में मस्त हो जाता है। प्रवर्षण गिरि पर निवास कर रहे राम लक्ष्मण को किष्किंधा भेज कर संदेश देते हैं कि सुग्रीव सीता की खोज न करवा कर राम के साथ विश्वास–घात कर रहा है। लक्ष्मण ने सुग्रीव को बहुत फटकारा और कहा कि कि राम का तुम्हारे लिये संदेश है–"जिस मार्ग से वाली गया है वह मार्ग अभी बन्द नहीं हुआ।

पहले वाली की पत्नी रही किन्तु अब सुग्रीव की पत्नी रानी तारा लक्ष्मण को समझाती है और कहती है कि भोगों से वंचित रहे सुग्रीव के लिए विलास में निमग्न हो जाना स्वाभाविक ही था। अब सुग्रीव राम का सहयोग करेंगे।

सुग्रीव चार खोजी दल बनाकर उन्हें चारों दिशाओं में भेजने के

पहले कहते हैं कि यदि एक मास भी सीता की खोज नहीं होती तो वह खोजी दलों को मृत्यु–दण्ड देगा। दक्षिण जाने वाले खोजी दलों का नायक युवराज अंगद को बनाया जाता है। इस दल के साथ हनुमान तथा जाम्बवान जैसे प्रमुख लोग है।

सीता की खोज में भूखे प्यासे अंगद–हनुमान जाम्बवान के संकेत पर एक गुफा मे प्रवेश करते हैं। वहाँ स्वयंप्रभा नाम की तपस्विनी उन्हें बताती है कि मय–दानव ने अपनी अप्सरा पत्नी हेमा के लिए यह प्रासाद, उपवन और दिव्य सरोवर का निर्माण कराया था। हेमा को खोजता इन्द्र आया और इन्द्र के भय से मय–दानव कहीं भाग गया कुछ दिनों बाद हेमा भी चली गई। तब से मैं हेमा के इस प्रासाद की रक्षा कर रही हूँ। स्वयंप्रभा खोजी दल को भोजन कराती है, और उसे गुप्त मार्ग से समुद्र तक पहुँचाती है, जहाँ उनकी भेंट जटायु के बड़े भाई आर्य सम्पाती से होती है। सम्पाती बताता है कि रावण सीता को लंका ले गया है।

6—अभियान—

जाम्बवान के परामर्श पर हनुमान एक ऊँचे टीले से समुद्र में छलांग लगा देते हैं। वह तैरते–तैरते मैनाक पर्वत पार करके जब आगे बढ़े तो हनुमान को एक विशालकाय सर्प निगलने के लिए तैयार था। यह नाग माता सुरसा के आकार का विराट सर्प था। उससे बचकर हनुमान तैरते आगे बढ़े तो उन्हें जलजंतु के रूप में हिंसक सिंहिका मिली।

सिंहिका का बध करके हनुमान लंका के मुख्य द्वार पर उसकी स्त्री रक्षिका पर प्रहार करके लंका में प्रवेश पा सके।

लंका के राजप्रासादों में सीता की खोज व्यर्थ गई। अब हनुमान ने जन–सम्पर्क द्वारा जानकारी प्राप्त की कि इन दिनों अशोक वाटिका निषिद्ध क्षेत्र घोषित है। वाटिका–पथ पर भी कोई नहीं जा सकता। हनुमान किसी प्रकार अशोक–वाटिका पहुँच कर सीता के दर्शन कर सके। वह एक सघन अशोक वृक्ष पर चढ़कर बैठ गए। तभी वहाँ रावण आया और सीता को धमका कर चला गया। रक्षक राक्षसिनियों के सोने जाने के वाद हनुमान ने सीता के पास राम के द्वारा भेजी मुद्रिका डाल दी। सीता को अपना परिचय दिया। उन्हें सांत्वना भी दी। अभिज्ञान के रूप में सीता से चूणामणि लेकर हनुमान अशोक वाटिका के कदलिवन में फलाहार के लिए कूद गए। हनुमान ने फल तो खाये ही, भारी तोड़–फोड़ की। रक्षकों को मारा, रावण–पुत्र अक्षय कुमार का भी बध कर दिया। अंत में मेघनाद रस्सों के फंदो में फंसा कर हनुमान को रावण की सभा में ले गया। रावण हनुमान को प्राण–दण्ड देना चाहता था, किन्तु विभीषण ने दूत को अवध्य बताकर रावण को किसी दूसरे दण्ड के बारे में सोचने के लिए विवश कर दिया। रावण के आदेश पर हनुमान की पूँछ में आग लगा दी गई। हनुमान सैनिकों तथा बन्धनों से छूट कर लंका को जलाने में कूद गए। विस्फोटक सामग्रियों से भरे भण्डारों में आग लगने से पूरी लंका

दहल उठी। अंत में समुद्र मार्ग से तैरते हुए हनुमान खोजी दल से आ मिले।

अब खोजी दल सुग्रीव के रक्षित राज उपवन 'मधुवन' के रक्षको को भगा कर फल–फूल खाता हुआ सुग्रीव के पास लौट आए।

7–युद्ध–

सीता का समाचार पाकर राम वानर–भालुओ के साथ अपनी जनवाहिनी को लेकर सागर–तट पर आए। नल और नील के सहयोग से राम ने समुद्र का वह भाग खोज लिया जिसमें अधिकांश स्तिया (छिछला जल) क्षेत्र था। गहरे जल में पत्थरों से भरे जलपोत डूबो कर मार्ग बनाया गया। स्तिया–क्षेत्र में भी पत्थरों को पाटकर सागर पार करने योग्य सेतु बना लिया गया। राम ने सागर पार कर लिया है, इस सूचना से रावण हैरान रह गया। राज्य सभा में सीता को लौटा कर संधि की सलाह देने वाले अनुज विभीषण को रावण ने लात मारकर लंका से निष्कासित कर दिया। विभीषण अपने चार सचिवों के साथ राम से मिला। राम ने उसे आदर देते हुए उससे मैत्री कर ली और लंका–नरेश के रूप में उसका राज्याभिषेक कर दिया। राम–रावण के बीच भीषण युद्ध हुआ। राम के हाथों कुंभकर्ण तथा लक्ष्मण द्वारा मेघनाद का बध होता है। रावण अन्तिम युद्ध के लिए आता है और महर्षि अगस्त्य द्वारा दिये गये ब्रह्मास्त्र से राम द्वारा मारा जाता है।

लंका विजय के बाद विभीषण तथा हनुमान सीता को देख कर राम प्रसन्न हुए। इतनी यातना के बाद भी सीता के चेहरे प दीनता अथवा याचना नहीं थी।

"आओ सीते!" राम ने अपने हाथ बढ़ाये, 'अपने राम से अब और दूर नहीं रहो। एक वर्ष की दीर्घ अग्नि परीक्षा दी है तुमने। अब तुम्हें कुछ सुख भी मिलना चाहिए............।"

(ख) नरेन्द्र कोहली के कृष्ण कथा मूलक उपन्यास : सांकेतिक परिचय–

नरेन्द्र कोहली ने पौराणिक आख्यानों के आधार पर समसमायिक समस्याओं, उनके समाधान तथा समीक्षा का प्रयास किया है। वस्तुतः पौराणिक सन्दर्भों का पुनर्सृजन संशोधन अथवा पुनर्लेखन नहीं होता साथ ही वह उनका युग–समीक्षा अनुकूलन मात्र भी नहीं होता। किसी वृक्ष के बीज से उत्पन्न वृक्ष वह वृक्ष होते हुए भी जिनका वो बीज है, स्वयं में एक स्वतंत्र अस्मिता रखता है। वह न किसी का अनुसरण है न किसी का नया संस्करण। इसी प्रकार नरेन्द्र कोहली ने पौराणिक वास्तु–विन्यास को आधार बनाकर अपनी कारयित्री तथा भावयित्री प्रतिभा चिन्तन और काल्पनिकता का समन्वय कर युगानुरूप तथ्यों प्रश्नों तथा समस्याओं का प्रस्तुतीकरण करत हुए रचना धर्मिता की मौलिकता की रक्षा की है। मानवता के शाश्वत प्रश्नों का साक्षात्कार लेखक अपने परिवेश से भी और

मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता के आधार ग्रन्थों से भी कर सकता है। नरेन्द्र कोहली का उपन्यास 'महासमर' का प्रथम भाग 'बन्धन' की घटनाऐं तथा पात्र महाभारत से सम्बद्ध हैं, किन्तु लेखक ने इसका सृजन उपन्यास के रूप में किया है। इसलिए महाभारत में वर्णित मूल कथा को समकालीन परिस्थितियों और युगानुकूल जीवन दर्शन प्रस्तुत करने के लिए काल्पनिकता के लिए स्वतन्त्रता का उपयोग किया है। उपन्यास का प्रारम्भ हस्थिनापुर नरेश शान्तनु के निषाद–कन्या मत्स्यगंधा अथवा सत्यवती पर आसक्त होकर उसक पिता दशराज की शर्त[1] ना मान सकने की स्थिति में निराश होकर हस्तिनापुर वापस लौटने से होता है। आखेट के लिए गए महाराज शान्तनु यमुना पट पर निषाद राज दाशराज की धर्मार्थ नौका चलाने वाली कन्या सत्यवती को देखकर उस पर मोहित हो गए।[2]

उस कन्या के पिता दाशराज से जब शान्तनु ने विवाह करने की इच्छा प्रकट की और दाशराज ने सत्यवती के पुत्र को ही युवराज बनाने की शर्त रख दी तो शान्तनु अपनी पूर्व पत्नी गंगा से उत्पन्न सुयोग्य पुत्र देववृत के कारण यह शर्त नहीं मान सके और निराश राजधानी लौट आए। जब युवराज देववृत को इस घटना का ज्ञान हुआ तो वह स्वयं दासराज के पास जाकर उसे बचन दिया कि सत्यवती का पुत्र ही हस्तिनापुर के राज सिंहासन पर बैठेगा। दाशराज ने नया प्रश्न उत्पन्न किया–"आप सत्यवती के पुत्र के लिए अपना राज्यधिकार छोड़ रहे हैं। मैं आपका विश्वास कर रहा हूँ, किन्तु कल आप विवाह करेंगे आप के

पुत्र होंगे, बड़े होगे..........................सम्भव है कि वह आप से सहमत ना हो। सम्भव है कि वह अपना अधिकार माँगें। सम्भव है कि वह आपसे कहें कि आपको अपना राज्याधिकारी अपने जीवन को सुख भोग छोड़ने का पूरा अधिकार है। किन्तु आपको क्या अधिकार है कि आप चक्रवती सम्राट शान्तनु के ज्येष्ठ पुत्र की ज्येष्ठतम संतान से हस्तिनापुर के राज्य का उत्तराधिकारी छीन ले?................................आप अपने पुत्र के स्थान पर यह वचन कैसे दे रहे हैं कि वह अपने उचित नैतिक पारम्परिक और वैधानिक अधिकार की माँग नहीं करेगा?"[3] इस स्थिति में देवव्रत ने प्रतिज्ञा कि मैं विवाह नहीं करूँगा। आजीवन ब्रह्मचर्य ब्रत का पालन करूँगा। जब मेरे कोई पुत्र ही नहीं होगा तो सत्यवती के पुत्र से राज सिंहासन छीनने का प्रयास कौन करेगा? देवव्रत भीष्म सत्यवती का हास्तिनापुर ले आए। पुत्र की प्रतिज्ञा सुनकर शान्तनु ने अपने पुत्र के महान त्याग को बहुत गहराई तक अनुभव किया। शान्तनु ने कहा कि तुमने भीषण प्रतिज्ञा की है अतः आज से तुम्हारा नाम भीष्म होगा। इस घटना के पूर्व ही महाभारत के अनुसार मत्स्यगंधा और पाराशर ऋषि के सम्पर्क से कृष्ण द्वैपायन (व्यास) का जन्म हो चुका था। लेखक यहाँ महाभारत में वर्णित चमत्कारिकता से बचा है। महाभारत के अनुसार कृष्ण द्वैपायन जन्म लेते ही अपनी माँ को यह आश्वासन देकर कि जब भी वह मुझे याद करेगी, मैं उसके समक्ष उपस्थित हो जाऊँगा—वह अपने पैरो से चलकर तप के लिए जब कि नरेन्द्र कोहली ने इस घटना को स्वभाविक

ढ़ंग से दिखाया है। दाशराज अपनी पुत्री को दूर भेज देता है और प्रसव के उपरान्त उस शिशु को उसके पिता पारासर को पालन–पोषण के लिए सौप देता है। इस उपन्यास में पुराणों तथा पुराणों से महाभारत में ग्रहीत प्राय: सभी पौराणिक कथाओं घटनाओं का चित्रण किया गया है। महाभारत के पात्रों को भी सामजियक माँग तथा लेखक के अभिप्रेत की सिद्धि के प्रयोजन से कथा का मौलिक अथवा परिवर्तित रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में महाभारत में वर्णित प्रमुख घटनाओं जैसे सत्यवती के गर्भ से चित्रागंद तथा विचित्रवीर्य का जन्म, चित्रागंद का राज्याभिषेक,गंधर्वो से युद्ध करते चित्रागंद की मृत्यु, विचित्रवीर्य का अल्पायु में राज्याभिषेक, कुरूवंश को बढ़ाने के लिए सत्यवती की चिंता, भीष्म द्वारा काशीराज की तीन पुत्रियों को अपहरण, अम्बिका तथा अम्बालिका का विचित्रवीर्य से विवाह, काशीराज की बड़ी पुत्री अम्बा का सौभराज शाल्य के पास जाना, किन्तु शाल्व के द्वारा अस्वीकृत होकर फिर हस्तिनापुर लौटना और भीष्म से विवाह करने का हठ करना, किसी भी स्थिति में भीष्म द्वारा अपनी प्रतिज्ञा भंग करने पर अम्बा का क्रुद्ध होकर भीष्म के गुरु परशुराम से अपनी व्यथा बताना, परशुराम का भीष्म को कुरुक्षेत्र में बुलाकर अम्बा से विवाह के लिए विविध प्रकार से समझाना, प्रतिज्ञा के कारण भीष्म द्वारा गुरु परशुराम के आदेश को न मानना, क्रुद्ध परशुराम द्वारा भीष्म को द्वन्द्व युद्ध के लिए विवश किया जाना, भीष्म के तर्कों से संतुष्ट होकर परशुराम का तटस्थ होकर वापस चला जाना, अतिकामाचार से सत्यवती को दूसरे

पुत्र विचित्रवीर्य का क्षयरोग से ग्रस्त होकर मृत्यु को प्राप्त होना, सत्यवती को कुरु–राज्य सिंहासन के रिक्त होने, तथा अपने वंशहीन होने से दुखी होने से दुखी तथा चिंतित होना, भीष्म से अम्बिका तथा अम्वालिका से सन्तानोत्पत्ति करने के लिए कहना, भीष्म का असहमत होना, सत्यवती को भीष्म को विवाह पूर्व पाराशर ऋषि के संयोग से उत्पन्न हुए कानीन पुत्र कृष्ण द्वैपायन का रहस्य बताकर कृष्ण द्वैपायन से नियोग पद्धति से सम्पर्क करना, अम्बिका के अंधे घृतराष्ट्र तथा अम्बिका के रुग्ण पाण्डु के जन्म लेने से निराश सत्यवती द्वारा कृष्ण द्वैपायन से पुनः अम्बिका से स्वस्थ पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा प्रकट करना, अम्बिका द्वारा अपने स्थान पर अपनी दासी को नियोग के लिए प्रस्तुत करना जिससे विदुर का जन्म होना, घृतराष्ट्र पाण्डु तथा विदुर के विवाह योग्य होने पर भीष्म का इन युवकों के विवाह की चिंता करना, गांधार राज सुबल पर महामन्त्री कणिक द्वारा दबाव डलवा कर गांधारी का घृतराष्ट्र से विवाह करवाना, कुन्तिभोज की पालिता पुत्री कुन्ती का स्वयंवर में पाण्डु को पति चुनना, भीष्म के प्रयत्न से शुल्क देकर भद्रराज की पुत्री माद्री से पाण्डु का विवाह होना, राजा की दासी पुत्री पारंसवी से विवाह होना, गांधार राजनीति के अनुसार गांधारी को अपने भाई शकुनि को कुरु राज्य–परिषद् का सदस्य बनवाना, शकुनि का कुरु राज्य में षड्यन्त्र प्रारम्भ करना, कान्ती के साथ रति–प्रंसग में विफल होकर पाण्डु का अपनी लज्जा

छिपाने के लिए दिग्विजय के लिए प्रस्थान करना, दिग्विजय से लौटकर अपनी दोनों पत्नियों कुन्ती और माद्री से अपने पौरुष का बढ–चढ़ कर बखान करना ताकि उसकी क्लीवता छिपी रहे, क्लीवता के कारण अपनी पत्नियों से पाण्डु का सदैव दूर भागते रहने का उपक्रम करना, पाण्डु का कुन्ती से सन्यास लेने की इच्छा प्रकट करना, पाण्डु का कुन्ती से तथा माद्री को पितृ–कुल में लौटने का परामर्श देना, कुन्ती के पूछने पर कि अभी गृहस्थ आश्रम का भोग प्रारम्भ नहीं हुआ और आप सन्यास लेने जा रहे हैं–का उत्तर पाण्डु का लज्जित स्वर में देना कि वह पूर्ण पति नहीं है, वह कभी पिता नहीं बन सकता। कुन्ती का पाण्डु के साथ रति–विहीन जीवन बिताने के लिए सहमत होना, कुन्ती का माद्री की ओर से भी पाण्डु को यही आश्वासन देना, कुन्ती के समझाने पर पाण्डु का सन्यास के स्थान पर तपस्वी जीवन बिताने हिमालय के नागशत पर्वत पर कुछ समय बिताने के बाद शतश्रृंग पर्वत पर प्रवास करना, आश्रम के ऋषि कुलपति को पाण्डु का बताना कि उसे पुत्र की कामना है, स्त्री सुख की नहीं, पाण्डु का औषधि सेवन करके स्वयं को रति–सक्षम बनाने का प्रयास करना, असफल होने पर कुन्ती को नियोग से पुत्र प्राप्त करने का परामर्श देना, धर्मराज का ध्यान करने पर नियोग द्वारा कुन्ती का गर्भधारण करना ओर युधिष्ठिर का जन्म, युधिष्ठिर का जन्म सुन कर गांधारी का शोक–ग्रस्त होकर घूँसे मारकर अपने गर्भस्थ शिशु के नाश का प्रयास इसलिए करना कि अब युधिष्ठिर के ज्येष्ट होने के कारण उसका पुत्र युवराज नही बन

सकेगा, वायु का ध्यान करके नियोग से कुन्ती का भीम को जन्म देना, इन्द्र का ध्यान करके नियोग से कुन्ती का अर्जुन को जन्म देना, पाण्डु को कुन्ती से कहना कि वह माद्री को भी नियोग से संतति प्रदान कराये, अवश्विवी कुमारों को ध्यान करके नियोग से माद्री द्वारा पहले नकुल फिर सहदेव को जन्म देना, माद्री के सौन्दर्य पर आसक्त होकर बैद्यों के परामर्श के विरुद्ध पाण्डु का माद्री से रति–क्रिया करने की चेष्टा करना और परिणाम् स्वरूप पाण्डु की मृत्यु होना। अपने दोनों पुत्रों को कुन्ती को सौंप कर माद्री का पाण्डु के साथ सती होना। कुलपति के समझाने पर कुन्ती का अपने पुत्रों को लेकर पैदल ही कुलपति के साथ हस्तिनापुर के 'बर्द्धमान' द्वार पर आना, सूचना पाकर शीघ्रता में विदुर का रथ से कुन्ती के पास आना और हस्तिनापुर की स्थितियों से अवगत कराना, भीष्म के साथ सत्यवती का कुन्ती के पास शोक–विह्वल होकर भागते हुए कुन्ती के पास पहुँचना, तभी घृतराष्ट्र गांधारी, सुयोधन तथा सुशासन का शोक के इस काल में भी राजसी संभार के साथ पहुँचना भीष्म की आज्ञा पर भी सुयोधन का युधिष्ठिर आदि से गले मिलने में आनाकानी करना, शोक के बारह दिन नगर के बाहर निवास कर, तेरहवें दिन राज परिवार तथा प्रमुख नागरिकों का नगर में प्रवेश करना। कृष्ण द्वैपायन (वेदव्यास) का माता सत्यवती को रजोगुण से ओत–प्रोत हस्तिनापुर राजपरिवार को छोड़कर अपने साथ निवृत्तिमूलक आश्रम जीवन जीने के लिए समझाना,

सत्यवती का दोनों पुत्रबधुओं–अम्बिका तथा अम्बालिका के साथ व्यास–आश्रम के लिए प्रस्थान करना।

नरेन्द्र कोहली ने इस उपन्यास में पुराणों तथा महाभारत में वर्णित प्रायः सभी पात्रों को चित्रांकन किया हैं शान्तनु, भीष्म, दाशराज, सत्यवती, पाराशर, चित्रांगद, विचित्रवीर्य, अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका, साल्व, घृतराष्ट्र, पाण्डु, विदुर, सुबल, शकुनि, गांधारी, कुन्ती, शल्य, माद्री, पारसवी, युधि ाष्ठर, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, सुयोधन, सुशासन पौराणिक पात्र हैं। घटनाओं को पौराणिक सन्दर्भ में ग्रहण तो किया गया है, किन्तु उनके चमत्कारिक और अविश्वनीय अंश को परिवर्तित करके उन्हें लैकिक, विश्ववनीय तथ समकालीन परिस्थितियों और समस्याओं के आलोक में प्रस्तुत किया गया है। इससे इस उपन्यास की प्रासंगिता बढ़ गई हैं।

'बन्धन' शांतनु, सत्यवती तथा भीष्म के मनोवैज्ञानिक धरातल तथा जीवन मूल्यों की कथा है। घटनाओं की दृष्टि से यह सत्यवती के हस्तिनापुर आने तथा हस्तिनापुर से चले जाने के मध्य की अवधि की कथा है, जिसमें जीवन के उच्च्च आध्यात्मिक मूल्य जीवन की निम्नता और भौतिकता के समक्ष असमर्थ होते प्रतीत होते है, और हस्तिनापुर का जीवन महाभारत के युद्ध की दिशा ग्रहण करने लगता है। उस भावी विनाश से मानवता को बचाने के लिए कृष्ण द्वैपायन अपनी माता सत्यवती और अपनी अनुज बन्धुओं अम्बिका और अम्बालिका को हस्तिनापुर से निकाल कर अपने साथ ले जाते हैं–

किन्तु तब तक हस्तिनापुर शांतनु, सत्यवती, तथा भीष्म के कर्म–बंधनों में बंध चुका है और भीष्म भी उससे मुक्त होने की स्थिति में नहीं रहे हैं।

'महासमर' उपन्यास के दूसरे भाग 'अधिकार' में वस्तुविन्यास हस्तिनापुर में पाण्ड़वों के शैशव से प्रारम्भ होकर युधिष्ठिर के युवराज्याभिषेक पर जाकर विराम लेता है। वस्तुतः यह खण्ड अधिकारों की व्याख्या, अधिकारों के लिए हस्तिनापुर में होने वाले निरन्तर षड्यन्त्र अधिकार को प्राप्त करने प्रति सन्नद्धता तथ संघर्ष की कथा है। राजनीति में अधिकार प्राप्त करने के लिए होने वाली हिंसा तथा राजनीतिक त्रास के बोझ में दबे हुए असहाय लोगों की पीड़ा का कथानक समानान्तर चलता है। सतोगुणी, राजनीति तथा तमोन्मुख रजोगुणी राजनीति का अन्तर इसमें स्पष्ट होता है। एक ओर निर्ल्लज स्वार्थ और भोग और दूसरी ओर अनासंक्त धर्म–संस्थापना का प्रयत्न–दोंनो पक्ष आमने सामने हैं। इस खण्ड में महाभारत की कथा में कृष्ण का भी प्रवेश हो गया है।

इस खण्ड में शैशव काल में कुन्ती और माद्री पुत्रो–युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव के प्रति हस्तिनापुर के राजमहल में दुर्विनीति दुर्योधन के दुर्व्यवहार के अनेक चित्र हैं,[4] घृतराष्ट्र तथा गांधारी के गुप्त षड्यन्त्रों के प्रभाव से सामान्य दासियो द्वारा कुन्ती से दुर्व्यवहार के प्रसंग है,[5] कृपाचार्य की बहन कृपी के पति आचार्य द्रोण के हस्तिनापुर आकर कुये में गिद गए बीटा को धुनर्विधा से बाहर निकाल कर कुरु राजकुमारों

को चमत्कृत करने की कथा है,[6] भीष्म द्वारा आचार्य द्रोण को कुरु राजकुमारों को शास्त्रास्त्रों तथा युद्ध विद्या का पारंगत बनाने के लिए नियुक्ति,[7] दुर्योधन द्वारा षड्यन्त्र से भीम का विष युक्त मोदक खिलाकर उसका जल प्रवाह किन्तु विष से विष का निवारण होता है के अनुसार जहरीले सर्पों द्वारा डसे जाने के कारण भीम के जीवत बचने का वृतान्त[8] कर्ण का द्रोणाचार्य से निराश होकर परशुराम के आश्रम में जाति छिपाकर शास्त्रास्त्र विद्या प्राप्त करने का वृतान्त तथा परशुराम के सामने यह भेद खुलने पर कि कर्ण सूतपुत्र है तो बिना ब्रह्मास्त्र के उसे आश्रम से निष्कासित करने का वृतान्त,[9] गुरुद्रोण द्वारा एकलव्य का गुरूदक्षिणा में अंगूठा मागने का वृतान्त[10] रंग–शाला में अर्जुन के श्रेष्ठ कौशल के उपरान्त कर्ण का रंगशाला में आकर वे सारे प्रदर्शन करना और अर्जुन को द्वंद्व युद्ध के लिए ललकारने का वृतानत[11], गुरुद्रोण द्वारा गुरु दक्षिणा में पांचाल नरेश को जीवित बन्दी बनाने के लिए अपने शिष्य से कहने का वृतान्त, पहले कौरवों के विफल प्रयास के बाद पाण्डवों द्वारा द्रुपद को पराजित करके गुरु द्रोण के समक्ष प्रस्तुत करने का वृतान्त, मथुरा से अक्रूर का आकर घृतराष्ट्र पर युधिष्ठिर का युवराज्याभिषेक के लिए कूटनीतिक दबाव डालने का वृतान्त, बलराम कृष्ण उद्धव सात्यकि आदि की उपस्थिति में युधिष्ठिर के युवराज्याभिषेक का वृतान्त[12], लेखक ने 'महासमर' उपन्यास के दूसरे खण्ड 'अधिकार' में सुगुम्फित किया है। प्रायः समस्त पात्र पुराणों और महाभारत में वर्णित ही हैं।

'महासमर' उपन्यास के तीसरे खण्ड 'कर्म' में युधिष्ठिर के युवराज्याभिषेक के उपरान्त की कथा है। यादव शक्ति के प्रतिनिधि अक्रूर के दबाव में घृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर का युवराज्याभिषेक किया था। इसी बीच मथुरा पर मगध नरेश जरासंघ और उसके सेनापति कालयवन के आक्रमण पर घृतराष्ट्र की कुटिलता तथा दुर्योधन के दुराग्रह के कारण मथुरा को हस्तिनापुर की सैनिक सहायता नहीं प्राप्त हो पाती, तो यादवों को मथुरा छोड़कर द्वारका को अपनी राजधानी बनाना पड़ता है। अपनी इन परिस्थितियों में उलझजाने के कारण जब यादव पाण्डवों की सहायता नहीं कर पाते दूसरी ओर युवराज युधिष्ठिर द्वारा राज्य—सभा में गुरु—दक्षिणा चुकाने के लिए गुरु—द्रोण द्वारा महाराज द्रुपद को बन्दी बनवाये जाने को भी नृशंसता[13] कहकर पाण्डव गुरु द्रोण के वरद्हस्त से भी हांथ धो बैठते हैं, तब दुर्योधन वरणावत में पाण्डवों को भस्म करने का षड्यन्त्र रच डालता है।

वरणावत से जीवित बचकर पाण्डव पांचालों की राजधानी काम्पिल्य में पहुँचते हैं। पाण्डवों के काम्पिल्य सुरक्षित पहुँचते की व्यवस्था अदृश्य रूप से विदुर कृष्ण तथा महर्षि व्यास कर रहे थे। हिडिम्ब बन में भीम तथा मानव भक्षी दैत्य हिडिम्ब के बीच भीषण युद्ध तथा इस युद्ध में भीम द्वारा हिडिम्ब का बध एक महत्त्वपूर्ण घटना है। हिडिम्ब की बहन हिडिम्बा भीम पर आसक्त हो जाती है। युधिष्ठिर हिडिम्बा के गर्भ—स्थापन

तक भीम को उसके साथ रहने की सशर्त अनुमति देते हैं।[14] काम्पिल्य पहुँच कर कुन्ती समेत पाँचों पाण्डव एक कुम्हार के घर ब्राह्मण वेश में ठहरते हैं। काम्पिल्य में इस समय द्रुपद राजकुमारी याज्ञसेनी कृष्णा का वीर्यशुल्क स्वयंवर हो रहा है। महाराज द्रुपद की शर्त है कि जो योद्धा रंग–वेदी पर रखे धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ा कर घूर्णित यन्त्र के अन्दर स्थित लक्ष्य को बेध देगा वही द्रोपदी से जयमाला ग्रहण कर सकेगा। आर्यावर्त के प्रख्यात नरेश और युवराज अपने प्रयास में असफल रहते हैं। कुछ तो धनुष की प्रत्यंचा ही नहीं चढ़ा पाते। कुछ प्रत्यंचा तो चढ़ा लेते हैं किन्तु लक्ष्य वेध में सफल नहीं होते। तभी प्रख्यात धनुर्धर कर्ण रंग–वेदी के पास आया–''कर्ण धनुष के पा आ पहुँचा था। उसने धनुष को उठाकर, अपनी भुजाओं में तौला। थोड़े से प्रयत्न से उसने प्रत्यंचा भी चढ़ा ली और बाण उठाने के लिए उसने अपना हाथ बढ़ाया .... सहसा स्वयं कृष्णा का एक वाक्य चीत्कार के समान सारे स्वयम्बर–मण्डल में गूंज गया–''स्वयम्बर की प्रतिज्ञा के अनुसार प्रतिभागी को उत्तम कुल, सुन्दर रूप तथा श्रेष्ठ बल से सम्पन्न होना चाहिए।......................मैं सूतपुत्र से विवाह नहीं करूँगी।[15]

इस स्वयंवर में ब्राह्मण–वेश में भीम और अर्जुन भी शामिल हुए थे। अंत में अर्जुन ने लक्ष्य बेध का उपक्रम किया। सर्व प्रथम अर्जुन ने महाराज द्रुपद से प्रतियोगिता के लिए अनुमति ली–'' राजन! तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो। मैं लक्ष्य–बेध का इच्छुक हूँ। मैं प्रतियोगी के रूप में

आपको मान्य हूँ?[16] द्रुपद की स्वीकृति पाकर अर्जुन ने यज्ञवेदी के सम्मुखं आकर यज्ञ के ब्रह्म को साष्टाँग प्रणाम् किया, "राज पुरोहित! आपका आशीर्वाद मुझे प्राप्त है,"[17] राजपुरोहित ने आशीर्वाद की मुझ में हाथ उठा दिया था। अब अर्जुन के समक्ष कर्ण जैसे अपनमान की कोई संभावना नहीं थी।

"अर्जुन ने उत्साह–स्फूर्त हाथों से धनुष को उठा लिया।................
...यह वह धनुष था, जिसकी प्रत्यंचा चढ़ाने के प्रयत्न में आधे से अधिक वीर झटका खाकर भूमि पर आ गिरे थे, और लज्जा से आखें नत किए हुए, बिना आखें उठाए ही, अपने स्थान को लौट गए थे। जिन वीरों ने प्रत्यंचा चढ़ा ली, उनसे धनुष सध नहीं पाया और बाण दिग्भ्रमित हो गए। जिन लोगों ने बाण चलाए, उनकें बाण यन्त्र में उलझ कर रहे गए और लक्ष्य को नहीं बेध सके................अर्जुन ने धनुष को अपने हाथ में उठाया। उसके शरीर के सारे रोम जैसे सिहर उठे। उसे लगा जैसे कई युगों बाद उसने हाथ में धनुष लिया था।......................वारणावत छोड़ने से आज तक वह शस्त्रविहीन, निरीह वनवासी ब्रह्मण था। आजत हाथ में धनुष उठाते ही वह पाण्डु–पुत्र, द्रोण–शिष्य अर्जुन हो गया था। हाथ में धनुष आते ही मन की आशंकायें लुप्त हो गयी। शत्रु का भय विलीन हो गया...............
रक्त के कण–कण में आत्मविश्वास जाग उठा.................उसने धनुष का भली प्रकार निरीक्षण किया। उसकी प्रत्यंचा को देखा। अपने बायें पैर के

अंगूठे के साथ धनुष को टेका, वायें हाथ के बल से उसे झुकाया और इससे पहले कि धनुष की ऐंठ उसके भुजबल को पराजित कर उसके नियंत्रण से निकल कर, उसे झटक कर परे फेंकती उसने स्फूर्ति से अपने दाहिने हाथ की सहायता से उस पर प्रत्यंचा चढ़ा दी।..............उसने बाण हाथ में लिये और यन्त्र की ओर देखा सारी वृत्तियाँ जैसे एकाग्र हो गयीं। उस घूमते हुए यन्त्र के मध्य से होकर अर्जुन के बाणों को ही नहीं, उसकी दृष्टि और ह्रदय को भी लक्ष्य तक पहुँचाना था। इस कार्य के लिए मात्र धनुर्धर की तन्मयता ही नहीं, एक योगी की एकाग्रता अपेक्षित थी। अर्जुन को लगा उसके आस–पास का संसार जैसे विलीन होता रहा रहा है। उसके निकट न स्वयंवर मण्डव था, न यह विराट समाज। उसे अपना भी बोध न रहा....................बस वे बाण थे और घूमते हुए उस यन्त्र के बीच से झांकता हुआ लक्ष्य ....प्रत्यंचा खिंची और बाण छूटे। कठोर शब्द हुआ और लक्ष्य टूट कर भूमि पर आ गिरा.................. ।[18]

भारतीय पौराणिकता में द्रोपदी का पाँच पतियों की पत्नी होना सदैव चरचा और तर्क का विषय रहा है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने इस प्रश्न का उत्तर देने का भी उपक्रम किया है। जब द्रौपदी को लेकर भीम–अर्जुन अपनी माँ कुन्ती के पास कुम्हार के घर लौटे। पूरा वृतान्त सुनकर कुन्ती बहुत प्रसन्न हुई किन्तु बिना ज्येष्ठ युधिष्ठिर और भीम के विवाह के अर्जुन का वीर्यशुल्का–कृष्णा का विवाह कुन्ती को स्वीकार्य नहीं हुआ। आर्यों में बड़े भाई के अविवाहित रहते छोटे भाई का

विवाह दोषपूर्ण 'परिवेदन' माना जाता है। भीम के प्रति कुन्ती का कथन विचारणीय है–"प्रसन्न तो हूँ पुत्र।" कुन्ती के चेहरे पर मुस्कान की एक रेखा तक नहीं थी, "अपने पुत्र की ऐसी उपलब्धि पर कौन सी माँ प्रसन्न नहीं होगीं, किन्तु पांचाली तुम्हारे कंण्ठ में वरमाला डाले अथवा धनुर्धर के ....होगा यह परिबेदन ही। तुम जानते हो धर्मशास्त्र की दृष्टि में परिवेदन पाप है। निर्दोष बडे भाई के अविवाहित रहते, छोटा भाई विवाह करले यह अधर्म है।"[19]

महाराज द्रुपद तथा युवराज घृष्टघुम्न इस बात से सहमत नहीं है कि कृष्णा पाँच पतियों की पत्नी बने। किन्तु कृष्ण और कृष्ण्र द्वैपायन (व्यास) के तर्कों के समक्ष द्रुपद यह कह कर आत्म समर्पण कर देते हैं–

"आपकी इच्छा मेरे लिए धर्म का आदेश है महामुनि!" द्रुपद सहज उल्लासित स्वर में बोले।[20]

कुन्ती और द्रौपदी समेत पाण्डव यादवों तथा पांचालों की सैन्य–सुरक्षा में हस्तिनापुर पहुँचते हैं। भीष्म को जब भीम दुर्योधन के कुकृत्य बताता है कि उसने उसे विषैले मोदक खिलाकर मार कर गंगा में प्रवाहित कर दिया था तथा उसी की चांजल चौकड़ी की योजना पर उन्हें वरणावत भेजा गया था, जहाँ पुरोचन लाक्षा–गृह में आग लगा कर हम सभी को मार डालना चाहता था, किन्तु ईश्वर और गुरुजनों की कृपा से हम सब जीवित आपके समक्ष प्रस्तुत हैं।

वारणावत में कुन्ती समेत पाण्डवों की मृत्यु से घृतराष्ट्र ने ऊपरी

मन से शोक व्यक्त किया था, किन्तु भीतर से संतुष्ट था। उसने अपनी चिरवांछित कामना पूर्ण की और सुयोधन का युवराज्याभिषेक कर दिया।

अब समस्या थी कि एक ही राज्य में दो युवराज कैसे हो सकते हैं। कुन्ती और महर्षि व्यास युधिष्ठिर को न्यायार्थ अधिकार प्राप्त करने के से संघर्ष के लिए प्रेरित करते हैं। द्रोण द्विवधाग्रस्त होकर भी अन्ततः दुर्योधन का साथ देने के लिए विवश प्रतीत होते हैं। भीष्म को राज्य का विभाजन स्वीकार नहीं, किन्तु वे विवश हैं। अन्ततोगत्त्वा धृतराष्ट्र कुटिल राजनीति का प्रयोग करते हुए, युधिष्ठिर को बटवारे में यमुना पार के निर्जन और हिंस पशुओं से युक्त खाण्डव बन प्रदान करते हैं। यह घोर अन्याय न्याय के प्रतीक कुरु बृद्ध भीष्म, आचार्य कृप, गुरुद्रोण तथा नीतिकुशल विदुर के रहते हो सका था। भीष्म को स्वयं के जीवन पर बहुत ग्लानि थी। उनकी वेदना इन शब्दों में छिपी है–

"पुत्र युधिष्ठिर! मैं कभी तुम्हें तुम्हारा अधिकार नहीं दिला सका... ....तुम्हें हस्तिनापुर में कभी न्याय नहीं मिला।"[21]

'महासमर' के चौथे खण्ड 'धर्म' में धर्म के सम्बन्ध की परिस्थिति, आवश्यकता, समस्या तथा पद के अनुसार धर्म की विविध व्याख्याये की गई हैं। कथाओं, घटनाओं तथा पात्रों के सम्बन्ध में महाभारत तथा अन्य पौराणिक ग्रन्थों का ही वस्तुविन्यास स्वीकार किया गया है। पाण्डवों को राज्य के रूप में खाण्डवप्रस्थ मिला है, जहाँ न कृषि है, न व्यापार, न नगर, न नागरिक न समुचित राजप्रासाद–

"देखने को है ही क्या?" युधिष्ठिर के कुछ कहने के पहले ही नकुल बोला, "चारों ओर वन ही वन हैं। जहाँ वन नहीं हैं, वहाँ पथरीली पहाड़ियाँ हैं, जिन पर तृण भी नहीं उगता।"[22]

खाण्डवप्रस्थ के रूप में युधिष्ठिर को वटवारे में प्राप्त इस क्षेत्र में अपराधियों तथा इन्द्र जैसी महाशक्तियों की वाहनियाँ अपने षड्यन्त्र में लगी हुयी हैं। युधिष्ठिर के समक्ष धर्म–संकट है। वह नृशंस नहीं होना चाहता, किन्तु नृशंसता के बिना प्रजा की रक्षा नहीं हो सकती। पाण्डवों के पास इतने साधन भी नहीं है। कि वे इन्द्र–रक्षित खाण्डव–वन को नष्ट कर उसमें छिपे अपराधियों को दण्डित कर सकें। किसी प्रकार खाण्डव–प्रस्थ को नाम इन्द्रप्रस्थ रखकर इन्द्र को संतुष्ट करके उनके वास्तुकारों और मम जैसे विश्वकर्माओं के द्वारा राजप्रासाद, प्राचीर, नगर तथा चतुष्पथ और दिव्य कमलाच्छादित पुष्करिणियों से अलंकृत अभिराम नगर 'इन्द्रप्रस्थ' को सृजन होता है। महर्षि वेदव्यास तथा कृष्ण की उपस्थिति तथा सहयोग निरन्तर पाण्डवों को उपलब्ध रहता है। धीरे–धीरे नगर वसने लगा और उसमें समृद्धि के चिह्न उभरने लगे।

एक दिन राजमाता कुन्ती ने द्रोपदी को बुलाकर प्रस्ताव रक्खा कि क्योंकि देवर्षि नारद की उपस्थिति में युधिष्ठिर द्वारा व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक पाण्डव क्रमशः एक वर्ष पांचाली के साथ पति के रूप में रह सकेगा और इस दौरान उनके विहार गृह में यदि किसी अन्य पाण्डव ने

प्रवेश किया, तो दण्ड स्वरूप उसे बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य पूर्वक बनवास करना पड़ेगा। इस स्थिति में प्रत्येक पाण्डव चार वर्ष तक स्त्री विहीन जीवन बिताने के लिए वाध्य होगा अतः सभी पाण्डवों को एक एक विवाह और कर लेना चाहिए–

"महर्षि नारद ने कहा, यदि मेरा परामर्श मानो तो इसी क्षण से तुम अपने लए नियम निर्धारित कर लो, ताकि मैं निश्चिंत होकर यहाँ से जा सकूँ।" "मेरा प्रस्तवा है' युधिष्ठिर ने उन सबकी ओर देखा, "कि पांचाली हममें से प्रत्येक के घर में एक एक वर्ष निवास करे। उस काल में वह अन्य भाइयों के लिए परस्त्री ही रहे। यद्यपि मैं मानता हूँ कि हममें से कोई भी इस नियम का उल्लंघन नहीं करेगा, फिर भी मर्यादा की रक्षा के लिए हम इसे अनुशासन के रूप में स्वीकार कर ले कि उसकाल में यदि कोई दूसरा भाई उनके एकान्त को अतिक्रमण करे तो यह निन्दनीय कर्म माना जाएगा, अतः वह प्रायश्चित स्वरूप बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य पूर्ण वनवास करे।"[23]

कुन्ती ने सबको समझाते हुए कहा–"पुत्र! पांचाली तुम पाँचों की पत्नी अवश्य है, किन्तु इस व्यवस्था के अन्तर्गत वह एक वर्ष के लिए तुममें से किसी एक भाई की ही पत्नी होगी, उस अवधि के लिए शेष चार भाई तो पत्नी–विहीन ही होंगे न और जो एक पाण्डव एक वर्ष के लिए सपत्नीक होगा, वह अगले चार वर्षों के लिए पत्नी विहीन जीवन व्यतीत करेगा.....................................ऐसे में क्या अच्छा नहीं है, कि तुम अपने तथा

अपने छोटे भाईयों के एक–एक अतिरिक्त विवाह के विषय में सोचो और उन्हें उसके लिए प्रेरित करों............. ।''[24]

काशि राजि की पुत्री वलंधरा को वीर्यशुल्का (शौर्य ही जिसका शुल्क है) घोषित करके उसके स्वयंवर का आयोजन किया गया था। भीम ने वीर्य शुल्क प्रदान करके वलंधरा को पत्नी के रूप में वरण कर लिया।

इसी बीच एक ब्राह्मण के गोधन को रात्रि में कुछ दस्यु हाँके लिए जा रहे थे। ब्राह्मण की पुकार पर अर्जुन को शास्त्रागार में जाना पड़ा जहाँ युधिष्ठिर और पांचाली शास्त्रास्त्र निरीक्षण कर रहे थे। यद्यपि युधि ाष्ठिर और फिर द्रौपदी ने अर्जुन को बहुत समझाया कि शास्त्रागार में उनके प्रवेश से काई मर्यादा भंग नहीं हुई है। अतः अर्जुन को ब्रह्मचर्य पूर्वक बारह वर्ष के वनवास की कोई आवश्यकता नहीं–

''पर उस नियम की आत्मा को समझो धनंजय! द्रौपदी बोली, '' उस एकांत में श्रृंगार का भाव हैं, और अतिक्रमण भी एक प्रकार से लज्जा का अतिक्रमण है। तुमने किसी की लज्जा का अतिक्रमण नहीं किया है। शास्त्रागार में तुम्हारे प्रवेश के सन्दर्भ में, श्रृंगार का भाव तो दोनों ही पक्षों में नहीं था। तुमसे काई अपराध नहीं हुआ, तुमने किसी नियम को नहीं तोड़ा, कोई मर्यादा भंग नहीं की...................................तो तुम अपने इन भाइयों और मुझे छोड़कर वनवास के लिए क्यों जाना चाहते हो,''[25]

अर्जुन इन तर्कों से सहमत नहीं हो सका और बारह वर्ष के लिए बनवास के लिए निकल पड़ा। इसी कालखण्ड में नागकन्या उलीजी द्वारा

अर्जुन का हरण कर लिया जाता है। अर्जुन जब अपने बारह वर्ष के ब्रह्मचर्यपूर्ण प्रायश्चित की बात बताता है, तो उलीपी सहर्ष बारह वर्ष प्रतीक्षा के लिए तैयार हो जाती है और अर्जुन को आश्वासन देती है–

"मैं यथासमय आपके पास पहुँच जाऊँगी।"[26]

अर्जुन उलीपी के साथ रात्रि–विश्राम करके और नारी–साहचर्य प्राप्त करके भी अपने को धर्म–भ्रष्ट नहीं मान सका। यहाँ से जाने के बाद अर्जुन चित्रांगदा से विवाह करता है, फिर अपने मित्र–राज्य की राजकुमारी सुभद्रा का हरण करता है। युधिष्ठिर स्वयंवर में पौरव–नरेश गोवासन की पुत्री से विवाह कर लेता है।

कृष्ण सदैव निरपेक्ष भाव से जम्बू द्वीप में धर्म–पक्ष का पलड़ा भारी रखने के प्रयत्न करते हैं। मर्यादाहीन स्वेच्छाचारी नरेशों के संगठन को छिन्न–भिन्न करता उनका शाश्वत लक्ष्यहै। वह भीम और अर्जुन के साथ मगधदेश के प्रासाद की यज्ञशाला में भीम द्वारा मल्ल युद्ध में उसे दो भागों में चिरवा कर उसका वंध करवा देते हैं और उसके यहाँ बंदी सौ राजाओं को मुक्त करके मगध का राजतिलक जरासंध के पुत्र सहदेव का करके अपने मित्र–संगठन को सुदृढ़ करने का प्रयास करते है।

अर्जुन कृष्ण से पूछते हैं–

"क्या तुम्हारे मन में यह विचार पहले कभी नहीं आया कि तुम्हें जरासंध का बध कर देना चाहिए" "आततायी अपने पाप से मारा जाता

है। अर्जुन! कृष्ण बोले, ''किसी की इच्छा से नहीं।'' ''आततायी अपने पाप से मारा जाता है'' अर्जुन हंसे, ''और जो आततायी न हो।''

''वह अपने कर्म–बंधनों में बंधा आता है और उन्हीं में बंधा चला जाता है।

अर्जुन के मन में अब कोई संशय नहीं रह गया था।......................
.उसका मन एक प्रकार के आश्चर्य–मिश्रित आह्लाद से मर गया था। कृष्ण अपने परम् शत्रु को भी प्रतिशोध के लिए नहीं मारते। वे क्रोध में उसका बध नहीं करते। ....वे प्रजा के हित की बात सोचते हैं। धर्म की बात सोचते हैं।........................इतना ही नहीं जरासंध का इतना बड़ा साम्राज्य, जिसे से सहज ही अपने अथवा यादवों के लिए प्राप्त कर सकते थे, उन्हें लुब्ध नहीं करता, क्योंकि उससे यादव और अधिक सम्पन्न और समृद्ध होकर उद्दण्ड और अहंकारी हो जायेगे। प्रजा को वस्तुतः एक निस्पृह तथा धर्म–प्राण राजा चाहिए।''[27]

अर्जुन के यह कहने पर कि जरासंध एक यज्ञ करने जा रहा था। उपवास कर रहा था। अतः वह धार्मिक नहीं था क्या? यज्ञों को तो पवित्र माना गया है। ''महाराज युधिष्ठिर भी तो राजसूय यज्ञ की तैयारी कर रहे हैं, तो फिर जरासंध को क्यों उसका अधिकार नहीं है?''[28]

कृष्ण–अर्जुन को उत्तर देकर यज्ञों को धर्म से जोड़कर प्रस्तुत करते है–''राजसूय और अश्वमेध यज्ञ प्रजा को एक सुरक्षित तथा विशाल

धर्म–राज्य देने के लिए सम्पन्न किए जाते हैं, अत्याचार, पीड़न तथा शोषण बढ़ाने तथा अधर्म को बल देने के लिए नहीं। क्या लक्ष्य है जरासंध का? क्या उसने सोचा भी है, कि प्रजा के लिए समता, सुरक्षा, सम्मान और समृद्धि का क्या अर्थ है?''[29]

युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ सम्पन्न होता है। कृष्ण विनम्रता पूर्वक सम्मानित जनों के चरण धोने को काम करते हैं। कृष्ण के सम्मान को देखकर चेदिराम शिशुपाल कृष्ण को बहुत भला–बुरा कहता है। अंत में पौराणिक वर्णन के अनुसार ही कृष्ण सुदर्शन चक्र से शिशुपाल का गला काट देते हैं। राजसूय यज्ञ मे आये दुर्योधन आदि पाण्डवों की प्रभुता देखकर ईर्ष्यालु हो उठते हैं। स्फटिक स्थल पर कहीं दुर्योधन द्वार समझकर दीवार से टकरा कर धराशाही होते हैं, तो कहीं स्थल समझकर जल में जा गिरते हैं। दासियाँ उन्हें निकाल कर उनको वस्त्रसज्जित तो करती हैं, किन्तु उनके आंखों में उपहास की छाया देखकर दुर्योधन का अभिमान आहत होता है। अन्त में भीम आकर जब दुर्योधन से कहते हैं–''घबराओं नहीं घृतराष्ट्र पुत्र ....यहाँ जल तो है किन्तु वह इस पारदर्शी स्फटिक शिला के नीचे है। ऊपर तो स्थल ही है।''[30]

दुर्योधन को भीम के 'घृतराष्ट्र पुत्र' सम्बोधन में अपमान जनक व्यंग्यका बोध होता है और इसकी शिकायत वह भीष्म पितामह से यह कहकर करता है कि यह व्यंग्य द्रौपदी ने किया था। राजसूय यज्ञ से वापस लौट कर दुर्योधन एक क्षण भी चैन से नहीं रह सका। पाण्डवों के

ऐश्वर्य को देखकर उसकी चेतना लहूलुहान हो गई थी। उसने अपने पिता को पाण्डवों पर आक्रमण के लिए उकसाया। सफल न होने पर शकुनि का प्रयोग किया। शकुनि ने समझाया यदि युधिष्ठिर को द्यूत–क्रीडा के लिए आमन्त्रित करके वंचना पूर्वक उनका सारा वैभव जीत लिया जाये, तो बिना एक भी बूंद रक्त बहाये लक्ष्य सिद्ध हो जायेगा। घृतराष्ट्र इससे सहमत हो जाते हैं। युधिष्ठिर को विदुर के द्वारा आमंत्रित करवाया जाता है। न चाहते हुए भी युधिष्ठिर पितृव्य धृतराष्ट्र की आज्ञा का अनादर नहीं कर पाते और द्रौपदी तथा सभी भाइयों के साथ हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान करते हैं।

हस्तिनापुर के स्फटिक सभागार के उद्‌घाटन के लिए समारोह में घृतराष्ट्र की आज्ञा से द्यूत–क्रीड़ा प्रारम्भ होती है। दुर्योधन की तरफ से सिद्धहस्त कैतव शकुनि पांसे फेंकता है। वह युधिष्ठिर को पांसे दिखाता तक नहीं क्योंकि वे पांसे छल से बनाये गए थे। परिणाम स्वरूप युधिष्ठिर हर दांव हारता है। सारी सम्पत्ति हारने के बाद अपने भाइयों तथा स्वयं को भी हार जाता है। शकुनि के कहने पर वह द्रौपदी को दांव पर लगाता है और उसे भी हार जाता है। दुर्योधन एकवज्ञत्रा रजाचला द्रौपदी को बलात् सभा–भवन में बुलाकर उसे अपमानति करता है। वह कर्ण द्वारा द्रौपदी को पंचभोग्या वेश्या कहने पर उत्साहित होकर अपनी नग्न जंधा पर द्रौपदी को बैठने के लिए बुलाता है। इस पर भीम प्रतिज्ञा करता है–

"मैं पाण्डु पुत्र भीमसेन प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस दुष्ट 'युवराज दुर्योधन की जंघा इसी गदा से तोडूँगा। न तोडूँ तो मुझे सद्गति न मिले।"[31]

दुःशासन द्वारा द्रौपदी के केश पकड़ने और उसे नग्न करने के प्रयास से क्रुध भम तथा द्रौपदी प्रतिज्ञा करते हैं– "भीम अपने स्थान पर बैठा नहीं रह सका। वह उठकर खड़ा हो गया और जैसे आकाश भेद देने के लिए ऊपर आखें उठाकर बोला–"युद्ध में इस नीच दुःशासन का वक्ष चीर कर मैंने इसका रक्तपान नहीं किया, तो मैं पाण्डु–पुत्र भीम नहीं।"[32]

द्रौपदी ने भी न्याय की याचना की मुद्रा एक झटके के साथ त्याग दी। वह भीम के स्वर में अपना तेजस्वी स्वर मिला कर बोली–"राजसूय यज्ञ के पश्चात अवभृथ स्नान करने वाले ये केश, जो तूने खींचे हैं नीच! ये जब तक तेर वक्ष के रक्त से नहीं धुलेंगे, तब तक इनकी वेणी नहीं बनेगी।"[33]

इसी समय स्फटिक सभागार में महारानी गांधारी का आवेशपूर्ण प्रवेश होता है। वह घृतराष्ट्र से कहती है–

"मुझे ज्ञात हुआ है कि दुःशासन एकवस्त्रा द्रौपदी को केशों से पकड़ घसीटता हुआ सभा में लाया है। वह अपनी रक्षा के लिए मेरे कक्ष की ओर भागी थी, किन्तु उसे दुःशासन ने मेरे पास पहुँचने नहीं दिया....
....गांधार के राजप्रासाद से मैं तो पशुबल से घसीटकर हस्तिनापुर लाई ही गई थी, अब का कुरुकुलकी बधुएं भी घसीटी जाकर

सभाओ में लाई जायेंगी?"[34]

घृतराष्ट्र के यह पूछने पर की गांधारी क्या चाहती है तो गाधारी ने कहा–"द्रौपदी को मुक्त कीजिए और पाण्डवों को उनका राज्य लौटा दीजिए।"[35] घृतराष्ट्र का विवश उत्तर था कि इसे दुर्योधन नहीं मानेगा। इस पर गांधारी ने तत्काल कहा–"आपके पुत्र आपके नियंत्रण में रहने चाहिए। दुर्योधन न माने तो उसका त्याग कीजिए। वह अपने शत्रुओं से युद्ध करे, राजनीति के षड़्यन्त्र रचे, किन्तु मुझे ऐसा पुत्र नहीं चाहिए जो नारी के सम्मान की रक्षा न कर सके।"[36]

दुर्योधन को लगा कि इस समय कृष्ण का प्रभाव बहुत बढ़ गया है। उसी का नाम द्रौपदी के आर्त कण्ठ से सुनकर दुःशासन को चक्कर आ गया। पिता श्री का कण्ठ सूख गया और अब माता गांधारी का इस प्रकार सभा में आकर उसके किए कराए पर पानी फेरने का प्रयास वस्तुतः कृष्ण के अदृश्य प्रभाव ही हैं।

अन्त में घृतराष्ट्र प्रत्यक्षतः न्याय का और अप्रत्यक्षतः छल का प्रयोग करते हुए निर्णय दिया–"द्रौपदी दासी है या नहीं............................ ......इसका निर्णय धर्म करे, पर यदि द्यूत के नियमों के अधीन वह दासी है भी, तो कुलधर्म का निर्वाह करते हुए मैं उसे दासत्व से मुक्त करता हूँ। कुरुकुल की पुत्र–बधू दासी नहीं रह सकती।......................कुरुकुल के पुत्र भी दास नहीं रह सकते। इसलिए पाँचों पाण्डव दासत्त्व–मुक्ति के प्रतिशोध

ा में बारह वर्षों तक वनवास करेंगे, और न राज्य स्थापित करेंगे और न सैन्य–संग्रह करेंगे। यदि वे बारह वर्षों का यह प्रतिबन्धित वनवास पूरा कर लेंगे तो तेरहवें वर्ष अज्ञातवास करेंगे। यदि अज्ञात वास की अवधि में उन्हें खोज निकाला गया, ता उन्हें पुनः बारह वर्षों के लिए वनवास करना होगा और यदि उन्हें अज्ञातवास में कोई खोज नहीं पाया तो इन्द्रप्रस्थ के राज्य को अपने धन–धान्य के साथ पुनः प्राप्त करने के अधिकारी होंगे।''[37]

'महासमर' के 'अन्तराल' खण्ड में हस्तिनापुर के स्फटिक सभागार में द्यूत–क्रीड़ा में पराजित होकर घृतराष्ट्र की आज्ञानुसार युधिष्ठिर का वन–गमन और वनवास कालीन घटनाओं का चित्रांकन है। पाण्डव–माता कुन्ती पुत्रों के साथ वन जाने के स्थान पर विदुर के साथ हस्तिनापुर में इस लिए रहना चाहती है ताकि उसके धर्म–भीरू साधु–पुत्र अपने राज्याधिकार को भूल न जायें। उन्हें स्मरण रहे कि हस्तिनापुर में उनकी माँ उन्हें सत्ता और अधिकारयुक्त देखने के लिए प्रतीक्षा कर रही है। युधिष्ठिर के बहुत पूछने पर कि वह किससे भयभीत होकर अपने पुत्रों के साथ बनगमन नहीं कर रही–कुन्ती उत्तर देती है–''मैं यदि किसी से भयभीत हूँ, तो वह तुम हो पुत्र! धर्मराज तुम!......................................तमसे भयभीत हूँ क्योंकि तुम्हारा स्वभाव बहुत ही सात्त्विक हैं, तुम तनिक भी क्रूरता नहीं चाहते। तुम शत्रुओं को क्षमा कर देते हो। अपनी क्षति होते देखकर भी तुम दूसरे की क्षति नहीं करते..............................मुझे भय है कि

तुम वन में भी, संतुष्ट ही नहीं, प्रसन्न होकर रह लोगे। तुम भूल जाओगे कि तुम्हारा अपना कोई राज्य भी था, जो तुमसे छीन लिया गया था, जिसे तुम्हें पुनः प्राप्त करना है। ....तुम अपनी राज्य लक्ष्मी को भूल भी जाओ, तो यह नहीं भूलने दूँगी कि तुम्हारी माँ यहाँ बैठी है, हस्तिनापुर में, जिन लोगो ने तुम्हें तुम्हारी राज्य–लक्ष्मी से सत्ता और सम्पत्ति से, प्रजा और धरती से वंचित किया है, उन्हीं के नगर में बैठी है। तुम्हारी माँ! धरती और माता में बहुत अंतर नहीं है पुत्र! अपनी धरती जीतकर उसे स्वाधीन करने आना और अपनी माँ को हस्तिनापुर से मुक्त कराकर ले जाना।[38]

वह जीवन की विपत्तियों और विशेष रूप से बच्चों की शिक्षा–दीक्षा की दृष्टि से साधनों के अभाव को ध्यान में रखकर पाँचों पाण्डवों को उनके पुत्रों समेत उनके मायके भेजने का निर्णय लिया जाता है। द्रौपदी के पाँचों राजकुमारों को भी ननिहाल में भेज दिया जाता है। पाण्डवों के साथ एक मात्र द्रौपदी ही वन–यात्रा करती है। उसकी वन यात्रा का उद्देश्य है कि उसके खुले केश पाण्डवों को अपने कर्त्तव्य की याद दिलाते रहें। वह अपने भाई द्रुपद पुत्र घृष्टद्युम्न के यह कहने पर अपने उत्तर में वनवास की अपनी योजना का परिचय देती है–''और तुम कृष्णा? तुम्हारे मन में प्रतिशोध का भाव नहीं है?

इस बार द्रौपदी मुस्कुराई तो घृष्टद्युम्न को अपनी परिचित बहन

दिखाइ दी। उसकी मुस्कान में ज्वाला थी, "ये केश मैंने श्रृंगार अथवा प्रसाधन की दृष्टि से मुक्त नहीं छोड़े। ये दुःशासन के रक्त से स्नान करने की प्रतीक्षा में खुले हैं.................।"[39] "इन तेरह वर्षों में मेरे वीर पति निरंतर मेरे इन खुले केशों को देखते रहे, जिन्हें अपनी मुट्ठी में जकड़ कर दुःशासन मुझे घसीटता हुआ घुत–सभा में लाया था।[40]

कृष्ण युधिष्ठिर के द्यूत–सभा के संयम से सहमत नहीं। वह इसे अधर्म निरूपित करते हैं–"और आप क्या कर रहे हैं, धर्मराज! कृष्ण के स्वर में कुछ तेल झलका, धृतराष्ट्र ने मनमाने नियमों में बांध कर आपका सर्वस्व हरण कर लिया और कृष्णा का सार्वजनिक रूप से अपमान किया। आप यह सब देखते रहे और समझते रहे कि आप धर्म की रक्षा कर रहे है, अतः धर्म आपकी रक्षा करेगा। नहीं धर्मराज! यही धर्म नहीं है। मैं वहाँ उपस्थित होता तो द्यूत को रोक देता, चाहे मुझे बल प्रयोग ही क्यों न करना पड़ता। वे न मानते तो मैं सारे धार्तराष्ट्रों का बध कर देता। इस प्रकार अपमानित और वंचित होना धर्म नहीं है।"[41]

कृष्ण ने भीष्म की भूमिका पर भी कटाक्ष किया कि अपनी निर्दोष पौत्र–बधू के सम्मान की रक्षा करना पितामह का धर्म था या नहीं।[42] युधिष्ठिर को 'हाँ' कहना पड़ा।[43]

"किन्तु आप दोनों ने ही धर्म के मर्म को नहीं पहचाना।–कृष्णा बोले–धर्म का एक मार्ग तपस्या और त्याग भी है, किन्तु तपस्या का

परिणाम् भी सामाजिक हित में होना चाहिए। आप अपने धर्म पर टिके रहें और आपके सम्मुख एक स्त्री का अपमान होता रहे—यह समाज धर्म नहीं हो सकता। आपको अपने धर्म में से व्यक्ति—तत्त्व निकालकर समष्टि तत्त्व डालना होगा, उसमें जनहित का योग भी करना होगा, अन्यथा वह आत्मदाह हो जाएगा।"[44]

युधिष्ठिर कृष्ण द्वारा पितामह की निन्दा को रोकने के लिए कृष्ण को याद दिलाया कि पितामह तो सदैव आपको पूज्य दृष्टि से देखते हैं। राजसूय यज्ञ में पितामह ने ही आपको शिशुपाल का प्रखर विरोध सहकर आपको 'अग्रपूज्य' घोषित किया था। किन्तु कृष्ण पितामह को दोषमुक्त नहीं मान पाते हैं—

कृष्ण बोले, "किन्तु जिस समय उन्हें निसर्ग नियम से उन्हें स्वयं विवाह करना चाहिए था, उस समय उन्होंने युवती स्त्री से अपने बृद्ध पिता का विवाह कराया। उसी क्षण से कुरुकुल में सब अस्त—व्यस्त हो गया। उन्होंने पितृ भक्ति की तपस्या को अपने जीवन का लक्ष्य मान लिया। वह एकांगी सत्य था, जीवन का समग्र सत्य नहीं। वह उनके व्यक्तिगत उत्थान के लिए साधना हो सकती है, किन्तु समाज का सम्यक् धर्म नहीं। एकांगी धर्म, समग्र धर्म नहीं होता। यदि व्यक्ति सावधान न हो तो, एकांगी धर्म अनेक बार अधर्म और पाप का उत्स बन जाता है। पितामह ने अपनी व्यक्तिगत साधना के सम्मुख लोकधर्म तथा राजधर्म की सर्वथा अवहेलना की। ....उनका सारा प्रयत्न शासन—तन्त्र की

रक्षा के लिए होगा, उसके लिए अपने प्राण दे देंगे, चाहे शासन–तन्त्र कितना ही अत्याचारी क्यों न हो।"[45]

अन्त में युधिष्ठिर की प्रार्थना पर कृष्ण धर्म का मर्म समझाते हैं– "अनासक्त विवेक है धर्म! अनासक्ति। मोह का पूर्ण त्याग। मोह किसी के प्रति नहीं होना चाहिए–न जाति के प्रति न सम्बन्ध के प्रति, न सिद्धान्त के प्रति। धर्म सदेच्छा और सद्परिणाम् में है। यदि परिणाम् शुभ नहीं है, तो व्यक्ति को अत्यन्त निर्भय होकर अपनी धर्म–व्यवस्था, समाज–व्यवस्था और शासन व्यवस्था को परखना चाहिए।"[46]

वन–मार्ग में भीम द्वारा किरभीर तथा बदरिकाश्रम में जटासुर राक्षस का बध हुआ। पाण्डव पुरोहित धौम्य ऋषि के साथ काम्यक् वन में निवास करने लगे। इसी बीच दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा का हस्तिनापुर में स्वयंवर होने वाला होता है, तभी कृष्ण पुत्र साम्ब उसका अपहरण कर ले जाता है। साम्ब को बन्दी बना लिया जाता है। दुर्योधन उसका बध इसलिए नहीं करवाता कि साम्ब की मुक्ति के लिए उनका चिर शत्रु कृष्ण आयेगा। कृष्ण सेनायें सजाने का आदेश भी देते हैं, कि दुर्योधन पर शिष्य भाव रखने वाले बलराम उन्हें रोककर अपने कुछ अंगरक्षकों के साथ हस्तिनापुर जाते हैं। दुर्योधन को ज्ञात है कि कभी न कभी तो पाण्डवों की वनवास अवधि समाप्त होगी और वे अपना राज्य वापस चाहेंगे। दुर्योधन राज्य लौटायेगा नहीं अतः युद्ध सुनिश्चित है। यदि पाण्डवों के शक्ति स्रोत

यादवों को अपने पक्ष में या कम से कम तटस्थ कर लिया जाय तो भविष्य के युद्ध में पाण्डवों के पराजय निश्चत है। दुर्योधन बलराम के प्रति विनीत शिष्य का व्यवहार करता है। लक्ष्मणा से साम्ब का विवाह करने को भी राजी हो जाता है किन्तु वह अपनी कूटनीतिक चतुराई से बलराम को बचनबद्ध कर देता है कि कौरव–पाण्डव युद्ध में यादव तटस्थ रहेंगे–शस्त्र ग्रहण नहीं करेगे–

"ठीक है। तो अपने कुल की ओर से ही आप ऐसा वचन दीजिए–दुर्योधन बोला–यदि आपकी भगिनी सुभद्रा, पाण्डवों के परिवार में व्याही है, तो अब मैं लक्ष्मणा का विवाह साम्ब से कर रहा हूँ। आपके परिवार से हमारा और पाण्डवों का समान संबंध है।..........................तो फिर किसी एक की पक्षधरता क्यों? ....यदि हमारा और पाण्डवों का सशस्त्र संघर्ष हुआ, तो आपके कुल का कोई व्यक्ति शस्त्र नहीं उठायेगा, न हमारी ओर से, न पाण्डवों की ओर से.......................हमे कभी आपसे राजनीतिक अथवा सैनिक सहायता की आवश्यकता हुई, तो आपका कुल हमें भी उसी प्रकार सहायता देगा, जैसी सहायता आप पाण्डवों को देते आए हैं।"[47]

युधिष्ठिर को भी युद्ध की आशंका है। वह अर्जुन को देवलोक जाकर इन्द्र से देवास्त्र प्राप्त करने की आज्ञा देते है। अर्जुन को याद है कि इन्द्र से खाण्डव–प्रस्थ युद्ध के बाद अर्जुन ने इन्द्र से देवास्त्रों के लिये

प्रार्थना की थी, किन्तु इन्द्र ने कहा था, तुम शिव को प्रसन्न करके पाशुपतास्त्र प्राप्त कर लो तो मैं तुम्हें देवास्त्र प्रदान कर दूँगा। अर्जुन तपस्वी रूप में अमरावती की ओर प्रस्थान करते हैं। फल तथा वृक्षों के पत्ते और सरोवरों या नदियों के पानी से तृषा शान्त करते हैं। एक बार वह ध्यान में बैठे थे, तभी उन्हें कुछ आहट हुई। अर्जुन ने देखा कि सामने एक वाराह था। अर्जुन ने धनुष से बाण छोड़ा जो बाराह के लगा। किन्तु इसी समय एक बाण और भी बाराह को लगा। अर्जुन को आश्चर्य हुआ कि इस पर्वतीय क्षेत्र में किसी आखेटक ने लक्ष्य बेध किया है। तभी कुछ बन–महिलाओं के साथ हाथ में धनुष लिए एक किरात का आगमन होता है। किरात और अर्जुन का विवाद होता है। किरात के सामने अर्जुन विवश हो जाते है। तब किरात अपना वास्तविक परिचय देता है कि मैं शिव हूँ और तुम्हारी साधना से प्रसन्न हूँ। तुम्हें पाशुपत अस्त्र दे रहा हूँ किन्तु इसका प्रयोग स्वयं की आसुरी वृत्तियों के प्रति करके पशुता से मुक्त होना । अमरावती पहुँचकर इन्द्र की इच्छा से अर्जुन शस्त्राभ्यास करता है। शास्त्रास्त्र में पारंगत होकर इन्द्र की इच्छा से वह संगीत और नृत्य का भी अभ्यास करने लगा, यद्यपि इसमें उसकी रुचि नहीं थी। एक रात्रि जब अर्जुन अपने कक्ष में विश्राम कर रहा था तभी दासी ने आकर सूचना दी कि "द्वार पर अमरावती की शोभा, देवी उर्वशी खड़ी हैं। वे आपके साक्षात्कार का आग्रह कर रही हैं। क्या देव उन पर अनुग्रह करेंगे?[48]

अपनी विचार श्रृंखला की अन्विति में अर्जुन को इतनी रात गए उर्वशी का आना अच्छा नहीं लगा। अर्जुन उर्वशी का तिरस्कार नहीं कर सके। उर्वशी का अमरावती में अपना महत्त्व था। वह वैजयन्त की सभा की श्रेष्ठ अप्सराओं में थी। स्वयं वैजयन्त उसकी कृपा के आकांक्षी रहा करते थे। अर्जुन ने उर्वशी को ससम्मान लिवा लाने की अनुमति दी। उर्वशी ने अर्जुन से रति–निवेदन किया, जिसे अर्जुन से अस्वीकृत कर दिया–''न तुम मेरी प्रणयिनी हो, न मैं तुम्हारा प्रेमी! तुमने मुझसे काम–याचना कर मर्यादा का उल्लंघन किया है। इस प्रकार के सम्बन्ध के विषय में सोचना भी मेरे लिए पाप है।......................मैंने आपमे उस उर्वशी को देखा था, जो हमारे पूर्वज पुरुरवा की प्रेयसी थी, जिससे हमारे वंश की बृद्धि हुई थी। ....मेरी दृष्टि में तो पूज्य–भाव था, मातृ–भाव! उसमें वात्सल्य न देखकर आपने काम–भाव देखा।''[49]

इस पर उर्वशी ने रुष्ट होकर कहा–''अपसराओं को भी किसी ने मातृ–भाव से देखा है?......................अप्सरा का तत्यलीन शरीर, उसके कम्पित उरोज और उद्वेलित नितम्ब तुम्हारे पौरुष को नहीं ललकारते, तुम्हारे मन में वात्सल्य जगाते हैं। तुम पुरुष नहीं हो, नपुसक हो, पुंसत्त्वहीन क्लीव! छोड़ दो यह धनुष बाण। पैरों में नूपुर बाधों और नपुंसको के समान नाचो। नारी तुम बन नहीं सकते, पुरुष तुम हो नहीं। धिक्कार है तुम पर।''[50]

इधर कुलिन्दराज सुबाहु के राज्य में स्थित काम्यक वन से पाण्डव सुरक्षा एवं कालक्षेप की दृष्टि से हिमालय क्षेत्र की ओर चल पड़े। पाण्डव राजर्षि वृषपर्वा के आश्रम से होते हुए, श्वेत पर्वत तथा माल्यवान पर्वत को लांघते हुए गंधमादन क्षेत्र में राजर्षि आर्ष्टिषेण के आश्रम में आ पहुँचे आश्रम में पाण्डवों का सत्कार हुआ। यहाँ सौगन्धिक सरोवर से द्रौपदी के लिए सुगन्धित नीलकमल लेने गये भीम का सरोवर रक्षकों से संघर्ष होता है, तो भी कमल पुष्प लाने में सफल होते हैं। यहाँ द्रौपदी भीम के पौरुष की प्रशंसा करके एक और कामना करती है–"भीमसेन! मैं चाहती हूँ कि तुम्हारे बाहुबल के वेग से धर्राकर सम्पूर्ण राक्षस इस पर्वत को छोड़ दें और दसों दिशाओं की शरण लें। तत्पश्चात् शिव स्वरूप इस उत्तम शैल–शिखर को तुम्हारे सारे सुहृद भय रहित होकर देखें.........................
.........भीमसेन! दीर्घकाल से मैं अपने मन में यही इच्छा पाल रही हूँ कि तुम्हारे बाहुबल से सुरक्षित हो, मैं इस शैल–शिखर के दर्शन करूँ।"[51]

द्रौपदी की प्रेरणा पर भीम ने गंधमादन पर्वत पर चढ़कर यक्ष–शक्ति को चुनौती देने का निश्चय किया। यक्ष–नगर–प्राचीर को फांदकर भीम ने द्रौपदी का अपमान करने वाले तथा जटासुर के संरक्षक मणिमान को खोजने का प्रयास किया। भीम ने एक चतुष्पथ पर खड़े होकर अपना वज्रघोषी शंख फूँका। भीम की उपस्थिति से यक्ष सैनिक उसे घेर लेते है। भीम अपनी गदा से सबको खदेड़ देता है। तब मणिमान उससे द्वन्द्व युद्ध

करने आता है। भीम अपनी गदा से मणिमान का बध कर देता है। अंत में यक्षों का स्वामी कुबेर आता है। अब तक धौम्यऋषि के साथ युधिष्ठिर भी वहाँ पहुँच चुके होते हैं। कुबेर मणिमान तथा अन्य यक्षों के बध पर क्रुद्ध होता हुआ भी भीम को रक्षणीय कहता है– " शत्रुओं का मान–मर्दन और सुहृदों का आनन्दवर्धन करने वाले वनों............................किन्तु तुम अधार्मिक न होते हुए भी बार–बार ऐसी उच्छृखलतायें क्यो करते हो? तुम मेरे रक्षणीय न होते, तो जानते हो परिणाम क्या होता?[52]

भीम के यह पूछने पर कि वह धनद का रक्षणीय क्यों है,? कुबेर कहता है–"तुम्हे मुझे नष्ट करने के लिए आक्रमण नहीं कर रहे। इस भूमि पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए युद्ध नहीं कर रहे। तुम मेरे ध ान तथा अधिकार का अपहरण नहीं कर रहे। तुम मेरे प्रति पूज्य बुद्धि रखते हो। इसलिए तुम मेरे द्वारा रक्षणीय हो।"[53]

अंत में कुबेर ने भीम से कहा–"कि अब तुम्हें मेरी ओर से अधिकार है कि मेरे क्षेत्र में तुम जहाँ भी रहना चाहो सुख–सुविधा पूर्वक रह सकते हो। यक्ष और गन्धर्व तुम्हारी सहायता भी करेंगे और सेवा भी। क्या तुम गंधमादन पर्वत अथवा मेरे प्रासाद में रहना चाहोगे?"[54]

किन्तु युधिष्ठिर ने आतिष्टसेण आश्रम में रहने की ही अनुमति चाही, जिसे कुबेर ने स्वीकार कर लिया।

गंधमादन पर्वत को दैवास्त्र प्राप्त अर्जुन को पहुँचाने इन्द्र का रथ

आया। इसकी सूचना कुबेर को मिली। कुबेर ने अर्जुन को बताया कि द्रौपदी समेत उनके भाई आध्ठिषेणा आश्रम में निवास कर रहे हैं। कृष्ण पाण्डवों से मिलने आए। ऋषियों ने कृष्ण से अनेक प्रश्न किये। एक ब्राह्मण ने पूछा कि ''ईश्वर से क्या शब्दों से माँगने पर सब कुछ मिल जाता है।''[55] कृष्ण ने उत्तर दिया–''कामना कर्म का पूर्व रूप है। आपने अपने हाथों में एक पक्षी पकड़ रखा हो, और आपको यह भय निरन्तर पीड़ित कर रहा हो कि आपके हथेलियाँ पसारते ही पंक्षी उड़ जायेगा, तो आप ईश्वर से माँग तो सकते हैं, उसकी कृपा प्राप्त नहीं कर सकते। जब आप अपनी मुट्ठी खोल देंगे, साांसारिकता का पक्षी उड़ जाएगा, हथेलियाँ पसार देंगे, तो ईश्वर की अनुकम्पा विभूति बन आपकी हथेलियों पर प्रकट हो जायेगीं।''[56]

अन्त में लेखक कर्म की महत्ता कृष्ण के मुख से करवाता हुआ कहता है–''हमारे कर्म से ही उसकी दया प्रेरित होती है।..................भक्ति, ज्ञान, कर्म, सबमें योग है, सबमें आसक्ति रहित उद्यम है। अकर्म से ईश्वर कभी प्रसन्न नहीं होता।''[57]

'महासमर' उपन्यास के छठे खण्ड 'प्रच्छन्न' में मानवीय मनोवृत्तियों को जो संस्कृति और सभ्यता के आवरण में छिपी रहती है–उन्हें निरावृत किया गया है। काल–संवाह अगणित संवत्सरों की अविराम यात्रा कर चुका है। परिवेश का सब कुछ परिवर्तनशील होत हुए भी आश्चर्य है कि

मानव की जैविकीय प्रवृत्तियाँ ज्यों की त्यों हैं। अन्तर है तो केवल इतना कि कुछ मानव संयम अथवा प्रग्रह के द्वारा इन प्रवृत्तियों का दमन कर लेते हैं। इन प्रवृत्तियों का जितना अधिक इमन जिस समाज में होता है, वह समाज उतना ही सभ्य और सुसंस्कृत माना जाता है। किन्तु ये प्रवृत्तियाँ प्रच्छन्न रूप से अवचेतन में दबी पड़ी रहती हैं, और संयम के शिथिल होते ही उदग्र हो उठती हैं। इस उपन्यास के माध्यम से नरेन्द्र कोहली ने यही कहना चाहा है कि मानव की प्रकृति के नियमों की भाँति ही अपरिवर्तनशील है। उसका ऊपरी आवरण कितना ही भिन्न क्यों न दिखाई देतो हो, मनुष्य की मनोभूमि आज भी वही है, जो लाखों वर्ष पूर्व थी।

वाह्य विश्व के घटनापरक सारे समर वास्तव में मन द्वारा परिचालित तन्मात्राओं–शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध के स्थूल रूपान्तरण मात्र है। अपनी मर्यादा का अतिक्रमण कर जायें, तो ये मनोविकृतियाँ व्यक्ति के मानसिक धरातल को विकार ग्रस्त कर देती हैं।

''दुर्योधन इसी प्रक्रिया का शिकार हुआ है। अपनी आवश्यकता भर पाकर वह संतुष्ठ नहीं हुआ। दूसरों का सर्वस्व छीनकर भी वह शांत नहीं हुआ। पाण्डवों की पीड़ा उसके सुख की अनिवार्य शर्त थी। इसलिए वंचित पाण्डवों को पीड़ित और अपमानति कर सुख प्राप्त करने की योजना बनाई गई। घायल पक्षी को तड़पाकर बच्चों को क्रीड़ा का सा

आनन्द आता है मिहिरकुल को अपने युद्धक गजों को पर्वत से खाई में गिरा कर उनके पीड़ित चीत्कारों को सुनकर असाधारण सुख मिला था। अरब शेखों को ऊँटों की दौड़ में, उनकी पीठ मे बैठे बच्चों की अस्थियाँ टूटने और पीड़ा से चिल्लाने को देख–सुन कर सुख मिलता है।.............
........दुर्वासा ने बहुत तपस्या की है, किन्तु न अपना अहंकार जीता है, न क्रोध। एक अहंकारी और परपीड़क व्यक्तित्व, प्रच्छन्न रूप से उस तापस के भीतर विद्यमान है। वह किसी के द्वार पर आता है, तो धर्म देने के लिए नहीं। वह तमोगुणी और रजोगुणी लोगों को बरदान देने के लिए और सतोगुणी लोगों को वंचित करने के लिए आता है। पर पाण्डव पहचानते है कि तपस्यियों का यह समूह, जो उनके द्वार पर आया है, सात्त्विक संन्यासियों का समूह नहीं है। यह एक प्रच्छन्न टिड्डी दल है, जो उनके अन्न–भण्डार को समाप्त करने आया है, ताकि जो पाण्डव दुर्योधन के शस्त्रों से न मारे जा सके, वे अपनी भूंख से मर जाये।''[58]

इस उपन्यास में पाण्डवों के वनवास की कथा है। वंचित पाण्डवों को दुर्योधन के सुख में प्रछन्न रूप से बैठा हे दुःख और युधिष्ठिर की आलौकिक सहिष्णुता में प्रछन्न रूप से बैठा है धर्म। यह माया की सृष्टि है। जो प्रकट रूप में दिखाई देता है, वह वस्तुतः होता नहीं, और जो वर्तमान है। वह कहीं दिखाई नहीं देता।

वस्तुतः महाभारत की कथा मनुष्य के उस अनवरत युद्ध की कथा

है जो उसे अपने बाहरी और भीतरी शत्रुओ के साथ निरंतर करना पड़ता है। वह उस संसार में रहता है, जिसमें चारों और लाभ और स्वार्थ की शक्तियाँ संघर्षरत हैं। बाहर से अधिक उसे अपने भीतर से लड़ना पड़ता है। परायों से अधिक उसे अपनों से लड़ना पड़ता है और यदि वह अपने धर्म पर टिका रहता है तो वह इसी देह में स्वर्ग जा सकता है—इसका आश्वासन महाभारत देता है। लोभ, त्रास और स्वार्थ के विरुद्ध धर्म के इस सात्विक युद्ध को नरेन्द्र कोहली साम्प्रतिक परिवेश और युगबोध के आलोक में प्रस्तुत किया है।

कुत्सित मनोविकारों वाला व्यक्ति अपने सुख से सुखी नहीं होता—दूसरों के दुःख से सुखी होता है। पाण्डवों के अधर्मपूर्ण वनवास के बाद भविष्य में इसके परिणाम स्वरूप महासमर की सम्भावनाये सबके मनोजगत में प्रछन्न हैं। कुन्ती हस्तिनापुर छोड़कर पुत्रों के साथ वन यात्रा पर इसलिए नहीं गई है कि उसके सहिष्णु और धर्मात्मा पुत्र कहीं इसे सहन करने का अधर्म न कर डालें। उन्हें हस्तिनापुर में न्याय की प्रतीक्षा करती अपनी माँ की स्मृति धर्म युद्ध के लिये या धर्मधिकार के लिए हस्तिनापुर लौटायेगी। अपने छोटे बच्चों से वियुक्त होकर पांचाली पाण्डवों के साथ वन में इसलिए गई है कि उसके मुक्तकेश उनके पतियों को नारी के अपमान और प्रतिज्ञा की याद दिलाते रहें। वस्तुत5 जो स्फटिक द्यूत सभा में अध ार्म के रूप में कर्म घटित हो चुका था—वह कर्म के अमोघपरिणामी नियम

के अनुसार एक भीषण महासमर भविष्य के गर्भ में प्रछन्न किए हुए है। कौरव माता गांधारी को भी वर्तमान में बोये बीजों से भविष्य में उत्पन्न होने जा रही विषैली फसल का आभास है। उसका मातृ–हृदय पुत्रों के अनर्थ की संभावना से आशंकित है। वह अपने भाई तथा दुर्योधन के निकटतम प्रेरक शकुनि को अपने प्रासाद में बुलाकर पहले तो उसका आत्मीय स्वागत करती है, किन्तु बाद में उसे दुर्योधन को कुमन्त्रणा न देने का आदेश देती है– "तुम्हें मैं भली प्रकार जानती हूँ भैया! तुम्हारी ही बहन हूँ।..............................किन्तु अब हस्तिनापुर की महारानी के रूप में तुम्हें आदेश दे रही हूँ। दुर्योधन को कामनाओं की सूली पर मत टांगों, अन्यथा हस्तिनापुर में तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं रहेगा। जाओ! विवाद अथवा प्रतिवाद की अनुमति नहीं है तुम्हें! जाओं!"[59]

बहन से फटकार खाने के बाद शकुनि कुरुवंश के प्रति प्रतिशोध से और ग्रस्त हो उठता है। वह पहले तो दुर्योधन की ज्येष्ठ पत्नी काशिका को अतिमूल्यवान स्कंधावरण यह कर भेंट करता है कि शकुनि की माँ ने उसे गांधार से रुरुमृगों के भृसण रोमावली से बुना यह स्कन्धावरण शकुनि की पत्नी के लिए भेजा है, किन्तु शकुनि ने जसे राजसूय यज्ञ में द्रौपदी का अत्युत्त्म और मूल्यवान स्कन्धावरण देखा था, तभी से वह काशिका के लिए उससे भी श्रेष्ठ स्कन्धावरण की कल्पना काशिका को यह भी बताता है कि इस समय पाण्डव द्वैत वन में हस्तिनापुर क अति

समीप आ गए है। वह काशिका के मन में बीज डालता है कि वह विपन्न द्रौपदी को अपना ऐश्वर्य दिखाने किसी बहाने द्वैतवन जाय। कर्ण को भी अपनी योजना में शामिल कर धूर्त शकुनि घृतराष्ट्र को विवश कर देता है कि दुर्योधन गोधन के सम्यक् प्रबन्धन हेतु द्वैतवन जाय साथ ही कुरुवंश की बधुयें भी वन–विहार की दृष्टि से मन बहला आवें। दुर्योधन इस बात से बहुत प्रसन्न था कि भूखे–नंगे पाण्डव दुर्योधन का राजैश्वर्य देखकर कितने जलें–भुनेंगे?

जब दुर्योधन का द्वैतवन के लिए ससैन्य प्रयाण हुआ तो मार्ग में चित्ररथ गंधर्व से उसकी मुटभेड़ हो गई। चित्ररथ की गन्धर्व सेना में कौरव–कुल–बधुओं समेत कुरु राजकुमारों को बन्दी बना लिया। कर्ण विकर्ण के रथ में बैठकर पलायन कर गया। सेना के साथ चलने वाले विपणक श्रेष्ठियों ने जब यह समाचार युधिष्ठिर को दिया, तो युधिष्ठिर ने इस कुरूवंश का अपमान माना। महामना युधिष्ठिर ने यह तक कहा कि वैसे तो हम पाँच भाई हैं, किन्तु शत्रुओं के लिए एक सौ पाँच। भीम तथा द्रौपदी के असमत होते हुए भ युधिष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन को चित्ररथ से दुर्योधन और उसके परिवार को मुक्त करवाना पड़ा। पाण्डवों के इस उपकार से भी दुरात्मा दुर्योधन का मन निष्कलुष नहीं हुआ, बल्कि वह पाण्डवों के उत्कर्ष से और जल–भुन गया। उसने ईर्ष्या तथा अपमान दुःख से प्रायोपवेश के द्वारा शरीर के अन्त का निश्चय किया। कर्ण ने

दुर्योधन को बहुत समझाया और कहा कि मैं तुम्हारी पीड़ा–निवृत्ति के लिए वह दिग्विजय अकेले करूँगा, जो युधिष्ठिर के सब भाइयों ने मिलकर की थी। कर्ण दिग्विजय करके लौटता है तो हस्तिनापुर के 'बर्द्धमान' द्वार पर उसका अभूतपूर्व स्वागत होता है। कर्ण पुष्कल धन–रत्न लेकर लौटा था, जिससे हस्तिनापुर का राजकोष बहुत समृद्ध हो गया।

पाण्डवों के उत्पीड़न की दुर्योधन ने अपनी कुत्सित योजनायें निरस्त नहीं की थी। उसने अपनी बहन दुःशला के पति सिन्धु नरेश जयद्रथ का वनवास कर रही द्रौपदी के हरण के लिए उसकाया। जयद्रथ पांचाली का हरण कर भ ले गया किन्तु शीघ्र ही भीम–अर्जुन उसे बन्दी बना लाये। युधिष्ठिर का अपने बहनोई जयद्रथ को इस स्थिति में देखकर धर्म–भाव जाग्रत हो गया। भीम ने उसके सिर को मूड़कर पाँच चोटियाँ बना दीं थी। जयद्रथ को मुक्त करना भीम के लिए स्वीकार्य नहीं था। द्रौपदी ने भी कहा– "मैंने कहा था उससे कि वह दुःशला का पति होने के नाते मेरा भाई है....................उसे तो एक बार भी स्मरण नहीं हुआ कि मैं उसकी पत्नी दुःशला के भाइयों की पत्नी हूँ। उसे तो माता कुंती का स्मरण नहीं हुआ। आपको ही क्यों प्रत्येक अवसर पर माता गांधारी स्मरण आ जाती हैं?"[60]

द्रौपदी के इस प्रश्न का उत्तर धर्मराज ने उस व्यक्ति के रूप में दिया जिसने अपनी पाशनिक वृत्तियों को निग्रहीत कर लिया हो– "क्यों

कि जयद्रथ नहीं हूँ—युधिष्ठिर बोले—मैं मनुष्य हूँ, इसलिए मानवीय संमंध मेरे लिए महत्त्वपूर्ण हैं। मैं अपने शत्रुओं को भी कष्ट देकर कोइ सुख नहीं पाता। क्रूरता मेरे मन को आह्लादित नहीं करती। न्याय तथा अपनी रक्षा के लिए हम क्षत्रिय—धर्म का अवलंव ग्रहण करते हैं, किन्तु हाथ में शस्त्र आ जाने पर और अपने सम्मुख एक अक्षम मनुष्य को देख कर हमें राक्षस नहीं बन जाना है।''[61]

हस्तिापुर से विशोक आकर बताता है कि इस समय कुरु राज्य में यह कथा बहुत प्रचारित हो रही है कि सूतपुत्र कर्ण को सूर्य ने स्वप्न में सावधान किया है कि देवराज इन्द्र उससे ब्राह्मण का वेश बनाकर कर्ण से उसके सुधाभिसिक्त जन्मजात कवच—कुण्डल मांगेगे। वस्तुतः ऐसा हुआ भी। कर्ण ने कवच—कुण्डल तो देवराज को दे दिए किन्तु बदले में एक ऐसी शक्ति प्राप्त की है, जो अमोघ है। सहदेव इसे काल्पनिक कथा मानते हैं। उसके अनुसार कर्ण को गौरवान्वित करने के लिए ही यह कथा गढ़ी गई ह। भीम सहदेव से सहमत होकर कहते हैं— ''मैं सहदेव से सहमत हूँ। वह कथा कर्ण का महत्त्व बढ़ाने के लिए है। सभवतः हमें डराने के लिए भी है। कर्ण के पास कोइ दिव्यास्त्र नहीं था। इस बात से वह पीड़ित भी था। उसने आचार्य द्रोण से ब्रह्मास्त्र नहीं मिला। अब उसने सोचा होगा, दिव्यास्त्र नहीं है तो क्या हुआ। ऐसी कथा से यह ख्याति तो प्राप्त कर ही लेना चाहिए कि उसने पास दिव्यास्त्र है। एक अमोघ शक्ति

है, देवराज इन्द्र की दी हुई। पाण्डवों को उससे डरकर रहना चाहिए।"[62]

एक ब्राह्मण की अरणि कोई महाभृग ले गया। पाँचों पाण्डव भृग से अरणि छीनने के लिए उसके पीछे भागे। वे जंगल में बहुत गहरे पैठ गये थे। उन्हें प्यास लगी थी। आस–पास किसी जल–स्रोत को कोई आभास नहीं पहले सहदेव को जल की खोज में भेजा गया। उसके न लौटने पर क्रमशः नकुल अर्जुन और भीम जल खोजने गए। युधिष्ठिर को आश्चर्य था, उनका कोई भाई वापस क्यों नहीं लौटा? अन्त में युधिष्ठिर स्वतः जल और अपने भाईयों की खोज में निकले। वे थोड़ी ही देर में एक सरोवर के तट पर पहुँच गए। सरोवर का जल स्वच्छ और पारदर्शी था..................

.....उसके चारों भाई सरोवर के तट पर ऐसे लेटे हुए थे, जैसे इच्छा भर जल पीकर तृषा मिट जाने के पश्चात् विश्राम कर रहे हों। युधिष्ठिर ने उनके पास जाकर देखा तो वे सब अचेत थे। पहले तो युधिष्ठिर को यह कृत्य दुर्योधन का ही लगा। लेकिन युधिष्ठिर किसी ठोस निश्चय पर नहीं पहुँ सके। युधिष्ठिर बहुत प्यासे थे, वे जल की ओर बढ़े। तभी उन्हें ध्वनि सुनाई दी–

"ठहरो!"[63]

युधिष्ठिर के पूछने पर कि वह कौन था, उसे उत्तर मिलता है–

"मैं एक यक्ष हूँ!" और यक्ष उनके सम्मुख प्रकट हो गया। वह ताड़ के वृक्ष के बरावर ऊँचा, अमावस्या के समान काला और किसी भयंकर

शस्त्र के समान क्रूर लग रहा था। उसकी आखें बड़ी–बड़ी और भयंकर थी। "और यह सरोवर मेरा है। मेरी अनुमति के बिना तुम इसका जल नहीं पी सकोगे।"[64]

यक्ष ने युधिष्ठिर को बताया कि उसने युधिष्ठिर के भाइयों को जल पीने से रोका था, जब वे न माने तो उसे उनकी यह गति करनी पड़ी। यक्ष ने कहा कि यदि तुमने भी मेरी अनुमति के बिना सरोवर का जल पिया तो तुम्हारी भी यही गति होगी। युधिष्ठिर ने विनम्रता से कहा कि मैं बिना आपकी अनुमति से जल नहीं पिऊँगा, किन्तु मैं बहुत प्यासा हूँ। इस सरोवर का जल पीने के लिए मुझे आपकी अनुमति कैसे मिलेगी। यक्ष ने कहा इसके लिए तुम्हें मेरे प्रश्नों का उत्तर देना होगा। युधिष्ठिर प्रश्नों का उत्तर देने को तैयार हो गए। यक्ष ने पूछा–

"पृथ्वी से भारी क्या है,"[65]

युधिष्ठिर ने सोचा कि यह तो भूगोल का प्रश्न है। सारी पृथ्वी से युधिष्ठिर का परिचय नहीं है। वे तो अपनी उसी धरती को जानते हैं, जिसके अन्न से उनके इस शरीर का पोषण हुआ है। धरती हमारी माता है।..........................पर वास्तविक माता तो हमारी कुन्ती हैं। यदि माँ ने युधिष्ठिर को जन्म दिया होता, तो धरती किसका भरण–पोषण करती? धरती वनस्पति को जन्म दे सकती है, मनुष्य को नहीं।

"माता का गौरव पृथ्वी से भी अधिक गरिमापूर्ण है।" युधिष्ठिर उसे

भूगोल क्षेत्र से बहका कर भावना के क्षेत्र में ले आए।

"आकाश से ऊँचा क्या है?" यक्ष ने पूछा 'पिता आकाश से भी ऊँचा है?" युधिष्ठिर ने उत्तर दिया।

"वायु से भी अधिक गति से कौन चलता है?" यक्ष से पूछा

"मन वायु से भी अधिक तीव्रगामी है।" युधिष्ठिर बोले।

"तिनकों से भी अधिक संख्या किसकी है?"

"चिंताओं की संख्या तिनको से भी अधिक है।"

"प्रवासी का मित्र कौन है?"

"प्रवासी का मित्र सहयात्री होता है।"

"और गृहवासी का मित्र कौन है?"

"गृहवासी का मित्र उसकी पत्नी है।"

"संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है?"

"संसार में प्रत्येक जीव को मरते देखकर भी व्यक्ति इस भ्रम में जीता है कि उसकी मृत्यु कभी नहीं होगी।"

"समाज की रक्षा कौन करता है?"

"राज्य की रक्षा राजा करता है, किन्तु राष्ट्र और समाज की रक्षा ब्राह्मण करता है।"[66]

यक्ष कुछ देर मौन रहा फिर बोला कि वह युधिष्ठिर के उत्तरों से संतुष्ठ है। वह सरोवर से इच्छानुसार जल पी सकता है। युधिष्ठिर के

आग्रह पर यक्ष किसी एक भाई को जीवित करने का बचन देता है। युधिष्ठिर नकुल का जीवन मांगते हैं। तब यक्ष को आश्चर्य होता है। वह कहता है तुम्हारे सहोदर और पराक्रमी भाई भीम और अर्जुन का जीवन युधिष्ठिर ने क्यों नहीं मांगा। युधिष्ठिर कहता है कि मेरी दो मातायें हैं। कुन्ती के पुत्र के रूप में तो मैं जीवित ही हूँ, माद्री का भी एक पुत्र जीवित रहना चाहिए। यक्ष प्रसन्न होकर बोला–''तुमने अर्थ और काम से भी अधिक दया और समता का आदर किया है। तुमने सिद्ध किया है कि तुम्हें शास्त्र का ज्ञान ही नहीं है, तुम उस पर आचरण भी कर रहे हो। इसीलिए तुम्हारे सभी भाई जीवित हो जायेंगे।''[67] वनवास की बारह वर्ष की कालावधि समाप्त होने के पश्चात् पाण्डवों का एक वर्ष का अज्ञातवास करना था। बहुत विचार विमर्श के बाद मत्स्यराज विराट के राज्य में अलग–अलग नामों से चलकर कोई कार्य प्राप्त करके कालक्षेप का निर्णय किया गया। उन्होंने पारस्पर एक दूसरे को सम्बोधित करने के लिए जय (युधिष्ठिर), जयंत (भीम), विजय (अर्जुन), जयत्सेन (नकुल), जयद्रल (सहदेव) छद्म नाम सुनिश्चित किये। सबने अपने कार्य तथा मत्स्य राज्य में अपने नाम भी निश्चित कर लिए। युधिष्ठिर कंक बनकर राज विराट को द्यूत–क्रीड़ा में सहयोग देगा। भीम बल्लव बनकर रसोइये की भूमिका निभायेगा, अर्जुन नपुंसक ब्रहन्नला बन कर अन्तःपुर की राजकुमारियों को नृत्य और संगीत की शिक्षा देगा, नकुल ग्रन्थिक बन कर अखशाला का

काम सम्हालेगा तथा सहदेव तंतिपाल के नाम से गोशाला–कर्मचारी बनेगा और द्रौपदी सैरन्ध्री बनकर महारानी सुदेष्णा की शृंगार–परिचारिका का कार्य करेगी। योजनानुसार विराट नगर में सबको उनके इच्छित कार्यों पर नियुक्त कर लिया जाता है।

मत्स्यराज विराट का साला और सेनापति कीचक शारीरिक शक्ति और षड्यन्त्रकारी मस्तिष्क के कारण राज्य का सबसे शक्तिशाली क्षत्रप हो गया था। स्वयं राज विराट भी उससे डरते थे। राज्य में उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी होना संभव नहीं था। कीचक की दृष्टि मालिनी नामक सैरन्ध्री पर पड़ी वह कामासक्त होकर उसके पीछे पड़ गया। एक बार तो वह सैरन्ध्री को खदेड़ता हुआ विराट की राज्यसभा तक पहुँच गया और सैरन्ध्री को केश पकड़ कर पटक कर उसके लात मारी। वहाँ उपस्थित कंक तो मौन रहे किन्तु किसी कारण राज्यसभा में आया बल्लव सैरन्ध्री का यह अपमान सह नहीं सका और उसने कीचक को उठाकर दूर फेंक दिया। अंत में एक योजनानुसार यह अफवाह फैलाई गई कि सैरन्ध्री के पति के पाँच गंधर्वमित्र उसकी रक्षा करते हैं। कीचक ने सैरन्ध्री का पीछा नहीं छोड़ा था, अतः उसका बध अनिवार्य हो उठा था। सैरन्ध्री ने उससे प्रेम का अभिनय किया और ब्रहन्नला के नृत्य–अभ्यास मण्डप में उसे गोपनीय रूप से अभिसार कि लिए बुलाया। कीचक प्रसन्नतापूर्वक कुछ उपहार लिये संकेतस्थल पर पहुँचा, तो सैरन्ध्री के स्थान पर उसका

स्वागत बल्लव ने किया। बल्लव ने कीचक को बिना शस्त्र के ही मार–मार कर मांस का लोथड़ा बना दिया। लोकश्रुति हुई कि अदृश्य गन्धर्वो ने कीचक का नृशंस बध कर दियौ उन्होंने राजा विराट पर दवाव डालकर कीचक के शव के साथ कीचक की मृत्यु के कारण सैरन्ध्री को जीवित जलोने की आज्ञा प्राप्त कर ली। सैरन्ध्री को कीचक के शव के साथ टिकटी में बांधकर श्मशान ले जाया जा रहा था, तभी एक पेड़ पर घात लगाकर बैठे बल्लव में शववाहकों पर वृक्ष की मोटी शाखा के साथ छलांग लगा दी। सभी उपकीचक इसे प्रेत अथ्ज्ञवा गन्धर्व उपद्रव समझकर बदहवाश इधर–उधर भागने लगे। बल्लव ने पहले तो सैरन्ध्री को बन्धन मुक्त किया फिर वह उपकीचकों का पीट–पीट कर बध करने लगा। जो उपकीचक और सैनिक भागते थे उन्हें गो–झुण्ड में छिपे ग्रन्थिक और तन्तिपाल मार डालते थे। कीचक के शव के साथ गया कोई भी जीवित नहीं बचा। जनश्रुति हुई की सैरन्ध्री के आदृश्य गन्धर्व सहायकों ने उपकीचकों का बध कर दिया।

कीचक बध की सूचना सर्वत्र फैल गई। दुर्योधन ने अनुमान लगाया कि भीम के अतिरिक्त कीचक का बध कोई अन्य नहीं कर सकता था। उसने अनुमान लगाया कि पाण्डव विराट–नगर में ही अज्ञातवाश कर रहे है। तुरन्त ही मत्स्यराज्य पर आक्रमण की योजना बनाई गई। काल–गणना के अनुसार अब पाण्डवों के अज्ञात–वाश के केवल सात

दिन बचे थे। त्रिगर्तराज सुशर्मा तथा कुरु युवराज दुर्योधन की सेनाओं ने संयुक्त रूप से मत्स्य राज्य के गोधन हरण का प्रयास किया। इस समय तक अज्ञातवाश की अवधि समाप्त हो चुकी थी। बृहन्नला ने पहले राजकुमार उत्तर का सारथी बन कर पुनः राजकुमार के भयभीत होने पर रथी बन कर उस सभी बृक्ष से अपने शास्त्रास्त्र प्राप्त किये और अपना शंख बजा कर कौरव सेना को स्तम्भित कर दिया। भीष्म तथा द्रोण के विरूद्ध शालीन संघर्ष करते हुए अर्जुन ने कर्ण समेत सारी कुरुसेना को तहस–नहस कर दिया। मत्स्यराज्य का गोधन वापस लेकर जब अर्जुन और राजकुमार उत्तर वापस प्रसाद में आए तो वहां एक अघट घटना घट चुकी थी। महाराज विराट राजकुमार उत्तर के विजयोन्माद में के नाम से उपस्थित युधिष्ठिर के नाम पर धूत–पा से मार कर उनका रक्त इसलिए निकाल दिया था कि युधिष्ठिर कह रहे थे कि यह कृत्य बृहन्नला का है। अंत में पाण्डवों को भेद खुलता है। महाराज विराट बहुत लज्जित होते हैं। वह अपनी पुत्री का विवाह अर्जुन से करना चाहते हैं, किन्तु अर्जुन इसे यह कह कर अस्वीकार कर देते है, कि उन्होंने उत्तरा को नृत्य–गान की शिक्षा पुत्री भाव से दी है। वह मेरी पुत्र–बधू तो हो सकती है, पत्नी नहीं। अंत में सुभद्रा–पुत्र अभिमन्यु से उत्तरा के विवाह की बात पक्की होती है।

'महासमर' के सातवें खण्ड 'प्रत्यक्ष' में युद्ध के उद्योग और युद्ध के

पर पाण्डवों की असंगत मांग का समर्थन भी नहीं करना चाहिए। सारा दोष दुर्योधन का ही नहीं है। युधिष्ठिर को द्यूत का व्यसन नहीं होता, तो ऐसी स्थिति ही क्यों आती।''[69]

युद्ध के लिए सहायतार्थ दोनों पक्ष अपने दूत युद्ध में सहायतार्थ अपने–अपने संबधियों तथा मित्रों के पास भेजते हैं। द्वारका में अर्जुन और दुर्योधन–दोनों सहायतार्थ पहुँचते हैं। कृष्ण कदाचित् अब तक अधर्म की और अग्रसर यादव–शक्ति को ध्वस्त करने का मन बना चुके थे । उन्होने एक पक्ष के लिए निश्शस्त्र स्वयं को रखा और दूसरी ओर अपनी नारायणी सेना को । पहले अर्जुन को अधिकार दिया कि वह मांग ले कि वह क्या चाहता है। अर्जुन ने निश्शस्त्र कृष्ण को पाण्डव पक्ष के लिए मांगा। दुर्योधन को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह निश्शस्त्र कृष्ण का क्या करता। वह नारायणी सेना पाकर कृतार्थ हो गया। यदुक्षमप कृतवर्या ने भी सेना की एक वाहिनी के साथ स्वयं को इस युद्ध में दुर्योधन का पक्ष लेने का आश्वासन दिया, जबकि सात्यकि अपनी वाहिनी के साथ पाण्डव पक्ष में रहे। दाऊ बलराम ने कृष्ण के पुत्रों प्रद्युम्न, साम्ब आदि के साथ इस लिए तीर्थयात्रा में जाने का निश्चय किया कि यदि वे उपस्थित रहे तो वे दुर्योधन के पक्ष में युद्ध करने को विवश हो जायेंगे और उन्हे पाण्डव पक्षधर निश्शस्त्र कृष्ण का विरोध करना पड़ेगा, जो वे करना नही चाहेंगे।

इकलव्य की सभा में प्रमुख यादवों द्वारा कृष्ण का समर्थन न करना

प्रथम चरण महाभारत के अनुसार 'भीष्मपर्व' का वृतांत है।

उपप्लव्य में विराट –पुत्री राजकुमारी उत्तरा और सुभद्रापुत्र अभिमन्यु का विवाह होता है। विवाह के निमित्त से ही पाण्डवों ने अपने समस्त हितैषियों को आमंत्रित करके इन्द्रप्रस्थ का अपना राज्याधिकार प्राप्त करने की मन्त्रणा की। कृष्ण का मत तो सदैव धर्म के पक्ष में ही रहता है, किन्तु विभिन्न कारणों से यदुवंश में मतैक्य नहीं रहता। दुर्योधन दाऊ बलभद्र का प्रिय शिष्य है और कृष्ण पुत्र–साम्ब का श्वसुर भी है अतः यदुकुल के अन्तःपुर में भी दुर्योधन की शक्ति का प्रभाव उसकी पुत्री लक्ष्मणा के माध्यम से हो गया था। यादव क्षत्रप अक्रूर तथा कृतवर्मा क्रमशः कृष्ण और सात्यकि से असंतुष्ट थे। परिणामतः महाभारत के महासमर के पूर्व की कृष्ण सात्यकि के अतिरिक्त और किसी यदुवीर को पाएडवों के समर्थ के पक्ष में युद्ध लड़वाने की स्थिति में नहीं रह गये थे। उपप्लव्य की सभा में बलराम जी ने स्पष्ट ही कह दिया था, कि इसमें दोष युधिष्ठिर का भी है। क्यों उन्होंने अर्मादित द्यूत–क्रीड़ा की।"[68]

"बलराम बोले यहाँ से कोई बहुत ही बुद्धिमान, प्रतिभाशाली और तटस्थ व्यक्ति हस्तिनापुर जाए।................कोई शान्तिपूर्ण समाधान निकाले।. ....युद्ध की तो चर्चा ही नहीं करनी चाहिए। ....कृष्ण ने बहुत ठीक कहा है कि हम दुर्योधन के शुभ चिन्तक हैं, अतः हमें उसके बढ़े हुए लोभ को रोकना चाहिए, पर उसने यह नहीं कहा कि धर्म के नाम

बलराम और कृष्ण के पिता वसुदेव को अच्छा नहीं लगा। उनका स्पष्ट मत था कि यदुवंश के उत्थान में जितना योग–दान कृष्ण का है, उतना किसी का नहीं। धर्म के लिए समर्पित कृष्ण का समर्थन यादव एक मत से क्यों नहीं कर रहे !–

" वसुदेव का मन जैसे कांप उठा : कृष्ण को त्याग दिया तो यादवों के पास शेष रह ही क्या गया ? वे नही जानते कि कृष्ण को त्यागने के पश्चात उनके पास केवल अधर्म बचेगा। .... और कृष्ण ने उन्हे त्याग दिया तो ?.......... एक पाण्डव थे कि जिन्होने अपने असमर्थ बड़े भाई का कठिन से कठिन परीक्षा में साथ नही छोड़ा, क्योंकि वह धर्म के मार्ग पर चल रहा था और एक यह वसुदेव का यह अपना परिवार था, जो कृष्ण का परित्याग केवल इसलिए कर रहा था, क्योंकि कृष्ण धर्म पर चल रहा था।"[70]

कृष्ण पुत्र सांब ने अपनी पत्नी लक्ष्मण के प्रभाव में आकर कृष्ण को दुर्योधन के पक्ष में करने का अप्रत्यक्ष प्रयास किया । साबं का मत है कि " लक्ष्मण यदि अपने पिता की सुरक्षा को लेकर चिन्तित है, तो यह स्वा भाविक ही है। मैं उसे सुखी देखना चाहता हूँ , तो मुझे उसे उसके पिता की रक्षा की ओर से आश्वस्त करना होगा ।''[71]

कृष्ण जाम्बवन्ती – पुत्र सांब को उत्तर देते हैं –

" मुझे खेद है साबं कि तुम मेरे पुत्र होते हुए भी अपनी पत्नी की

अपेक्षाओं और अपने धर्म में अन्तर नही कर पा रहे हो।......... धर्म व्यापक मानवता के हित में होता है । प्रकृति के नियमो के अनुकूल होता है। ईश्वर की इच्छा के अनुसार चलने मे होता है। पत्नी को उसके धर्म में सहयोग देना तुम्हारा धर्म नही है। पत्नी को प्रसन्न रखने के लिए उसके पिता के पापो मे सहयोगी होना तुम्हारा धर्म नहीं है। .... और सबका अपना–अपना धर्म नही होता। धर्म परस्पर विरोधी नही हो सकता ।"[72]

यादव – जनो के प्रच्छन्न विरोध से यद्यपि कृष्ण मुस्कराते रहते हैं , किन्तु उनका अन्तःकरण आहत होता है। वे विभिन्न दुश्चिन्तिाओं से ग्रस्त होकर स्वयं को वन और मन से शिक्षित अनुभव करते हैं " उन्हे लग रहा था, कि उनके हाथ पैर बांध कर उन्हे एक ओर डाल दिया गया था। बलराम का दृष्टिकोण स्पष्ट था। इसीलिए उन्होने दुर्योधन का ऐसा बचन दे दिया था। कृष्ण अपने बड़े भाई का विरोध नहीं कर सकते थे।.......... ...... यदि समान आधार पर वे पाण्डवो को कोई सहायता करना चाहे, तो भी उन्हे कौरवो के विरूद्ध शस्त्र नहीं उठाना था। वे ही नहीं, उनके सारे वंश में से कोई भी दुर्योधन के विरूद्ध शस्त्रबद्ध नहीं हो सकता था।...... .. सहसा कृष्ण चौके: वे भी क्या भीष्म और युधिष्ठिर के समान धर्म के बन्धन में बंध कर निष्क्रिय हो रहे हैं। उनका कर्म तो बांधता नही मुक्त करता है। तो फिर वे इतने असहाय क्यों हैं ?..... बचन तो बलराम ने दिया है। कृष्ण की कोई बाध्यता नहीं हैं कि वे बलराम के दिए हुए सारे बचनो की

रक्षो करें।...... कृष्ण बलराम के बचन की रक्षा न करे और वे पाण्डवों की ओर से युद्ध सज्जित हो जाएं , तो बलराम क्या करेंगे। ....बहुत संभव है कि बलराम अपने रोष में दुर्योधन के पक्ष से लड़ने के लिए पहुच जाएं । यदि ऐसा कुछ हुआं तो वह इस युद्ध की सबसे बड़ी दुर्घटना होगी । यादवों में भयंकर विमापन हो जाएगा । कृतवर्मा, अक्रूर तथा उनके सहयोगी अपनी सेनाओं के साथ बलराम के पक्ष मे आ खड़े होंगें। कहीं ऐसा न हो कि कृष्ण पाण्डवों के ओर बड़ा संकट खड़ा कर दें।.........[73]

कृष्ण को निश्शस्त्र रह कर ही पाण्डवो को सहयोग देने में सुविधा थी।

कृष्ण द्वारा संधि का अन्तिम प्रयास किया गया। दुर्योधन किसी तर्क को स्वीकार ही नहीं कर रहा था। उसके पाण्डवो को पांच गांव देने तक से इन्कार कर दिया । इतना ही नही उसने कृष्ण के बन्दी बनाने की भी चेस्टा की। कृष्ण पहले से ही सावधान थे । सत्याकि तथा कृतवर्मा अपनी वाहिनी के साथ सन्नद्ध थे। पांच सशस्त्र गरूणो की सुरक्षा में पहले से सभा द्वार पर शस्त्र – सज्जित रथ में कृष्ण सुरक्षित आरूढ़ होकर विदुर गृह की ओर प्रयाग कर गए। अब युद्ध के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नही बचा था।

पाण्डवों के पक्ष में सात तथा कौरवों के पक्ष मे इग्यारह अक्षोहणी सेनाये कुरूक्षे में आमने – सामने खड़ी थीं। कुरूसेना के प्रधान सेनापति

भीष्म पितामह तथा पाण्डव सेना के द्रुपद – पुत्र धृष्टद्युम्न मनोनीत हुए।

युद्ध के पूर्व अर्जुन को अपने गुरूजनों तथा परिजनों के प्रतिमोह उत्पन्न हुआ और उसने युद्ध न करने का निश्चय किया। श्रीमद्भगवत गीता में वर्णित तत्वों तथा तथ्यों को अपनी सोच तथा युगानुरूप तर्कशीलता को समन्वित कर कृष्ण ने अर्जुन का मोह समाप्त करके उसे रण – सन्नद्ध किया।

युधिष्ठिर तथा अर्जुन ने युद्ध होने के पहले अपने अस्त्र–शस्त्र रथ पर रख कर और अपने कवच उतार कर अत्यधिक सौम्य भाव से कुरूसेना की ओर प्रयाग किया । दुर्योधन आदि ने इसे पाण्डवों का भयभीत होकर आत्मसमर्पण समता और उपहास करने की चेष्टा की। युधि ाष्ठिर और अर्जुन ने श्रद्धापूर्वक भीष्म पितामह को प्रणाम करके उनसे युद्ध की अनुमति चाही । अनुमति मिलने पर विजय का आशीर्वाद मिला, जिसे पितामह ने भाव –विमोर होकर प्रदान किया , गुरूद्रोण तथा आचार्य कृप से भी आशीर्वाद लेकर युधिष्ठिर ने घोषणा की –

" युद्ध आरंभ करने से पहले मैं दुर्योधन की सेना में खड़े योद्धाओं को एक निमंत्रण देना चाहता हूं । आप में से जो कोई भी हमारी सहायता करने के लिए हमारी ओर से युद्ध करने का इच्छुक हो, वहा दुर्योधन की सेना छोड़कर बाहर आ जाए, हम उसे स्वीकार करेंगे । "

युधिष्ठिर के इस आहान पर धृतराष्ट्र पुत्र युयुत्सु कौरव पक्ष से अपना रथ लेकर पाण्डव पक्ष में सम्मिलित हो गया और युधिष्ठिर के प्रति आभार व्यक्त किया –

" मैं आभारी हूं धर्मराज! कि आपने मुझे अंगीकार किया और अधर्म के पक्ष से लड़ने `को वाध्यता से मुक्ति दिलाई ।"[74]

भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया । भीष्म के नेत्रत्व में कौरव सेना अजेय हो उठी थी। पहले दिन ही मत्स्यराज विराट के दो पुत्र राजकुमार उत्तर तथा राजकुमार श्वेत वीरगति को प्राप्त हुए। समर का विध्वंस प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। भीष्म तथा द्रोण ने किसी पाण्डव का बध न करने की प्रतिज्ञा की थी। अर्जुन भी क्षाम – धर्म की अनिवार्यता के कारण ही आमना सामना होने पर ही वाण दृष्टि करता था, वह भी अघातक। किन्तु भीष्म का क्षाम – तेज अप्रतिहत गति से पाण्डव सेना का संहार कर रहा था। द्रोण भी द्रुपद तथा उसकी पांचाल सेना के लिए काल बने हुए थें।

युद्ध चलते नौ दिन हो गए थें, किन्तु कौरव सेना भीष्म के सेनापतित्व में अजेय थी।

कृष्ण की नीति के अनुसार पाण्डव युद्धोपरान्त पितामह के शिविर में गए। पाण्डवों को देख कर पितामह वात्सल्य से विभोर हो गए। युधि ाष्ठिर ने पितामह से पूछा –

" पितामह! विजय का आशीर्वाद आप हमें दे रहे हैं, और धनुष लेकर दुर्योधन के पक्ष से युद्ध भी आप ही करते हैं। आपके जीवित रहते हमारी विजय हो कैसे सकती है ? और आपके बध की हम कल्पना भी नहीं कर सकते। आपकी कामना और कर्म क्या परस्पर विरोधी नहीं है पितामह ?"[75]

पितामह अपनी भीगी आखों को छिपाने के लिए हंस पड़े " मेरा सारा जीवन ऐसा ही रहा है पुत्र ! मेरी इच्छाएं , कामनाएं , मेरा चिंतन इन सबके विरूद्ध रहा है मेरा कर्म।...... किन्तु अब द्वंद्ध अधिक दिन नहीं चलेंगे .... तुम्हारी विजय की कामना कर रहा हूं , तो तुम्हारे मार्ग में खड़ा भी नही रहूंगा।............"[76]

" आप युद्ध से निरस्त होंगे पितामह ? अर्जुन चकित थे।"[77]

" नहीं ! पितामह जैसे अपने आप में लौट आए थें –"क्षत्रिय युद्ध से निरस्त नहीं होता पार्थ ! जीवन से निरथ्त होता है।"[78]

" तो हमारी विजय कैसे होगी पितामह ? युधिष्ठिर ने कहा, सत्य तो यह हैकि हम लोग युद्ध में आपसे यस्त हो रहे हैं। हम आपसे इसी विषय में चर्चा करने आए थे। हमारी विजय का रथ किस मार्ग से होकर जाएगा !''[79]

भीष्म हंसे ''यदि मैं तुम्हारी विजय के मार्ग में खड़ा हूं तो मुझे हटाना तो तनिक भी कठिन नहीं है। मैने इस युद्ध के पूर्व दो प्रतिज्ञायें

की हैं क्या तुम्हे उनका ज्ञान नहीं है ?"[80]

हमे ज्ञात हैं युधिष्ठिर बोले, " आपने प्रतिज्ञा की है कि आप हम पांचों में से किसी का बध नहीं करेंगे और शिखंडी से युद्ध नहीं करेंगे।"[81]

" तो फिर कठिनाई क्या है ? " भीष्म हंस रहे थे।[82]

" मै शिखण्डी जैसे साधारण योद्धा के बाणों नही मरना चाहता। भीष्म जैसे योद्धा के लिए यह बहुत सम्मान जनक मृत्यु नहीं है वत्स । मुझे वीरों की सम्मान जनक मृत्यु चाहिए पुत्र ! मेरी तो कामना हैकि मैं संसार के अन्यतम धनुर्धारी के बाणों से आहत होकर गिरें। देवव्रत भीष्म युद्ध में साधारण सैनिक की मृत्यु नहीं करना चाहता .... यह पार्थ समझता है और पार्थ सारथि – पितामह हंस रहे थें "[83]

" पर मैं आपका बध नही कर सकता पितामह ।" अर्जुन का स्वर सदन के निकट पहुंच चुका था।

" मत करना बध। मैं तो केवल इवना ही कह रहा हूं कि मुझे युद्धक्षेत्र से हटा दो।....... मेरे सुख के लिए इतना तो तुम्हें करना ही चाहिए।"[84]

" चलो अर्जून " कृष्ण ने अर्जुन को और बोलने नहीं दिया। वह पितामह की ओर मुड़े, " आपकी इच्छा पूरी होगी पितामह ! आप युद्धक्षेत्र से अर्जुन के द्वारा हटायें जायेंगे।"[85]

' महासमर ' के आठवें और अंतिम खण्ड 'निर्बध ' में महाभारत पर

आधृत कथा द्रोण पर्व से प्रारम्भ होकर शांति पर्व तक चलती है। यह कदाचित हिन्दी का सर्वाधिक वृहदाकार उपन्याास ' बन्धन ' से प्रारम्भ होकर ' निर्बध ' तक की अपनी माया में वस्तु विन्यास के प्रवाह में गहन चिन्तन तथा सम सामथिकता के सन्दर्भ भी समायोजित किए है। बन्धन! किसका बन्धन ? कैसा बन्धन जैसे प्रश्नो के उत्तर इस वृहंत उपन्यास की श्रंखला में अन्तर्निहित हैं। वस्तुतः अमोध परिणामी कर्म ही कर्म फल के रूप में कर्ता तो अपने बंघन में बांधता है।यदि कर्म सकाम है तो धार्मिक कर्म होकर भी वह अन्ततः बन्धनकारी ही होता है । पितामह भीष्म की पितृभक्ति तथा त्याग भी उनके लिए बन्धनकारी ही हुए। पिता की संतुष्टि की कामना और कुरू साम्राज्य की रक्षा का मोह परक कर्म ने स्वयं उन्हे तथा उनसे सम्बन्धित परिवेश को धर्म की कठोर श्रंखलाओं मे निर्बध कर दिया था। वस्तुतः कर्म करना अथवा न करना हमें मुक्त नही करता, प्रत्युत कर्म फल के प्रति अनासक्ति ही हमें निर्बध करती है–

कर्मर्णेवअधिकारास्ते मा फलेषु कदाचन्[86]

कृष्ण के द्वारा गीता का संदेश है –

" योगस्थः कुरू कर्माणि संगत्यच्वा धनंजय "[87]

(समच्व योग में स्थित होकर आसक्ति रहित होकर धनंजय तू कर्म कर)

यदि निष्काम कार्य करना सम्भव नहीं तो कर्मफल को परम्सत्ता

को समर्पित करके कर्म – फल से बचा जा सकता है–

" यत्करोसि यदश्नाशि यज्जूहोषि ददासि यत्

यत्पश्यसि कौन्तेय तद् कुरूस्व मदार्पणम्"[88]

(हे कौन्तेय तू जो करता है, जो सूंघता है, जो यज्ञ करता है, जो दान करता है, जो देखता है वह सब तू मुझे अर्पित कर दे)

कर्मबीज को निरंकुरित करने के यहो उपाय वस्तुतः भारतीय मनीषा की अन्तर्यात्रा के कीर्ति स्तम्भ हैं।

'निर्बन्ध' के कथानक का अधिकांश भाग तो समर–क्षेत्र में सम्पन्न होता है। शिखण्डी को आगे करके कुरू सेना के प्रधान सेनापति देवव्रत भीष्म को अर्जुन तथा शिखण्डी द्वारा शरशैय्या पर पहुंचा कर उन्हे उनकी इच्छानुसार युद्ध बन्धन से मुक्त कर दिया जाता है। दुर्योधन अब आचार्य द्रोण को प्रधान सेनापति नियुक्त करता है। द्रोण पहले ही प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि वे किसी पाण्डव का बघ नही करेंगें। तब दुर्योधन उन्हे युधिष्ठिर को बन्दी बनाने के अभियान में लगाता है। पाण्डव महारथियों की सतर्कता के कारण सफलता के निकट पहुंच कर भी द्रोण युधिष्ठिर को वन्दी नही बना पाते। युद्ध क्रमशः भीषण होता चला जाता है। दुर्योधन के उपालम्ब से पीड़ित द्रोण चक्रव्यूह का निर्माण करते हैं, जिसका भेदन पाण्डव पक्ष में अर्जुन के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। योजनानुसार अर्जुन को भिगर्तराज सुशर्मा के संसप्रक योद्धा मुख्य युद्ध–क्षेत्र से दूर ले

जाते हैं। चक्रव्यूह के समक्ष सम्पूर्ण पाण्डव – पक्ष हताश हे, तभी अर्जुन का किशोर पुत्र अभिमन्यु बताता है कि वह चक्रवयूह का भेदन कर सकता है । केवल उसे व्यूह से बाहर निकलना नहीं आता। भीम आदि योद्धा इस आपत्तिकाल में इसी से संतुष्ट हो जाते हैं कि अभिमन्यु हमें व्यूह में प्रवेश करा देगा। व्यूह से निकलने का मार्ग तो वह अपने शौर्य से बना लेगा। अभिमन्यु व्यूह में प्रवेश कर जाता है किन्तु सिन्धु नरेश जयद्रथ के पराक्रम के कारण अन्य कोई पाण्डव योद्धा व्यूह में प्रवेश नहीं कर पाता । अकेला अभिमन्यु भीषण युद्ध करके दुर्योधन के पुत्र लक्ष्मण का बध कर देता था। बड़े – बड़े योद्धा अभिमन्यु के बाणों से यमलोक पहुंच जाते है। अंत में छै महारथियों द्वारा उसे निशस्त्र करके उसका बध ा कर दिया जाता है। अर्जुन अपने प्रतापी पुत्र का अन्यायमुक्त बध सहन नहीं कर पाता। उसे मुख्य अभियुक्त जयद्रथ प्रतीत होता हैं क्योंकि उसी के कारण कोई पाण्डव योद्धा व्यूह में प्रवेश नही कर सका था। अर्जुन प्रतिज्ञा करता है कि कल सूर्यास्त तक यदि वह पयद्रथ का बध नहीं कर पायेगा, तो वह स्वयं को अग्नि में भस्म कर देगा। दूसरे दिन भीषण युद्ध होता है। दुर्योधन जयद्रथ की रक्षा में पूरी शक्ति झोंक देताा है किन्तु कृष्ण की चतुराई से अर्जुन जयद्रथ का बध करने में सफल होता है। जयद्रथ बध से संतप्त कौरव सेना नियमानुसार सूर्यास्त के बाद भी युद्धबन्द नहीं करती। रात्रि में भी युद्ध चलता रहता है। भीम–पुत्र घटोत्कच कृष्ण को

व्याकुल कर देता है। वह कौरव पक्ष के दो राक्षसों अलम्बुस तथा अलायुध का भी बध कर देता है। अंत में दुर्योधन के कहने पर कर्ण अर्जुन के लिए सुरक्षित वैजयन्ती शक्ति से घटोत्कच का बध करता है।इससे कृष्ण को बहुत संतुष्टि मिलती हैकि अब कर्ण इस अमोध शि से अर्जुन का संहार नहीं कर पायेगा। कर्ण कुनती को बचन दे चुका था, कि वह अर्जुन के अतिरिक्त किसी पाण्डव का बध नही करेगा। कर्ण अपने बचन की रक्षा करता है और अवसर प्राप्त करके भी युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव को नहीं मारता।

आचार्य द्रोण पाण्डव सेना–विशेष रूप से पांचालो का निर्मम विनाश कर रहे थे। उनके द्वारा दिव्यास्त्रों का भी प्रयोग हो रहा था। उनके तेज के सामने पाण्डव सेना टिक नहीं पा रही थी। द्रोण ने पांचाल राज द्रुपद तथा मत्स्यराज विराट का बध करके पाण्डव सेना में हताशा उत्पन्न कर दी। अर्जुन अपने गुरू का इवना सम्मान करते थे, कि कृष्ण द्रोण के विरूद्ध विशेष आशाा नहीं कर सकते थे। उन्होने सोचा कि द्रोण को अपने पुत्र अश्वत्थामा से मोह की सीमा तक प्रेम है। यदि द्रोण तक अश्वत्थामा के बध की सूचना पहुंचा दी जाय तो वे युद्ध से विरत हो जायेंगे। लेकिन समस्या यह थी कि अश्वत्थामा का शव देखे बिना मात्र सूचना से द्रोण कैसे मान लेंगे कि अश्वत्थामा मारा गया। कृष्ण ने सोचा यदि धर्मराज युधिष्ठिर अश्वत्थामा के मृत्यु का साक्ष्य दे दे तो उस गुरू

द्रोण अविश्वास नहीं कर सकेंगे। किन्तु युधिष्ठिर इस मिथ्याचरण के लिए सहमत नहीं थे। तब भीम ने अश्वत्थामा नाम के एक हांथी का बध किया और बहुत दबाब में आकर युधिष्ठिर ने 'अश्वत्थमा ' के मृत्यु की पुष्टि की। पुत्र–बद्ध का शोक द्रोण सहन नहीं कर सके। वैसे भी उनके द्वारा प्रयुक्त दिव्यास्त्रों के विरूद्ध ऋषिगण उनको युद्ध से विरत होने का आग्रह कर रहे थे। द्रोण ने शस्त्र त्याग कर पक्षासन में बैठकर ध्यानस्थ हो गये। तभी उनके चिर शत्रु पांचाल राजकुमार घृष्टद्युम्न ने अर्जुन द्वारा रोके जाने पर भी आचार्य द्रोण के जटाजूट पकड़ कर खड़ग से उनका कण्ठोच्छेद कर दिया। इस घटना को लेकर पाण्डव – शिविर में अन्तर्कलह उत्पन्न हो गई। अर्जुन अपने गुरू का ऐसा तिरस्कारपूर्ण बध सह नही पा रहा था। प्रत्युत्तर में घृष्टद्युम्न ने भी अर्जुन को भला–बुरा कहा। अर्जुन का अपमान उनका शिष्या सात्यकि सहन नहीं कर सका और उसने घृष्टद्युम्न की कटु भर्त्सना की। परस्पर द्वंद्व युद्ध की नौबत आ गई। कृष्ण के कहने पर भीम ने सात्यकि को पकड़ा। कृष्ण ने घृष्टद्युम्न का समझाया।

द्रोण के बध के पश्चात दुर्योधन ने कर्ण को प्रधान सेनापति बनाया। अपने पिता द्रोण की अपमानजनक हत्या से अश्वत्थामा ने घोषणा की कि वह अब तक दुर्योधन का युद्ध लड़ रहा था, अब अपना युद्ध लड़ेगा। अश्वत्थामा बास्तव में भीषण हो चुका था। उसने पाण्डव

सेना पर ' नारायणास्त्र ' का प्रयोग किया। इस अस्त्र के सम्बन्ध में कृष्ण और अर्जुन को भी कोई ज्ञान नहीं था। नारायणास्त्र का अद्भुद प्रभाव यह था, कि जो जितना उग्रता से उसका प्रतिरोध करना चाहता था, अस्त्र उसको उतना ही अधिक उत्तप्त करके भस्म करता था। यह अस्त्र उच्छेदन न करके अपनी तापीय शक्ति से भस्मीकरण कर रहा था। मनोभावनाओं के आधार पर अस्त्र प्रतिकारक शक्तियों की तरफ चुम्बकीय आकर्षण से बढ़ कर उसे भस्मी भूत करता जाता था। कृष्ण ने उस्त्र की प्रवृति समझ ली और सबको अस्त्र–शस्त्र त्यागने का आदेश दिया। युद्ध से उपराम सैनिकों को अस्त्र भस्म नहीं कर रहा था। किन्तु भीम शस्त्र समर्पण के लिए सहमत नहीं हुआ। परिणाम स्वरूप अस्त्र ने समस्त प्रवाह के साथ अपनी लपटों में भीम को घेर लिया। कृष्ण और अर्जुन ने बड़े प्रयास से भीम को अस्त्र के प्रवाहक क्षेत्र से भीम को निकाल कर उसका शस्त्र सम्पात करवाया। किसी प्रतिद्वंद्वी के न देख कर अस्त्र स्वयं शान्त हो गया। भीम द्वारा इस विचित्र अस्त्र के सम्बन्ध में जिज्ञासा करने पर कृष्ण ने बताया –

" इसका अर्थ हुआ कि हमारे अपने मन में प्रेम हो तो वह बाहर से भी प्रेम को आकृष्ट करता है । हमारे मन में शत्रुता हो तो वह अन्य लोगो के मन में भी हमारे लिए शत्रुता को जन्म देती है। वस्तुतः हमारा मन अपना प्रतिबिम्ब ही संसार में पाता है......... इसी सिद्धान्त का प्रयोग है

नारायणास्त्र। वह सूक्ष्म जगत् को स्थूल में बदल देता है। एक प्रकार से युद्ध शास्त्र में यह योग का प्रयोग है......... अश्वत्थामा ने अपने योग–बल से अपने हृदय की ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा और घृणा को एक अस्त्र से जोड़ दिया। उसका विक्षेपएर योग के क्षेत्र में न कर युद्ध के क्षेत्र में किया।अश्वात्थामा के मन की वह हिंसा, नारायणास्त्र के रूप में सारे स्थानो पर अपनी समकक्ष हिंसा को खोजती फिरी। जहां कहीं हिंसा दिखाई देती, नारायास्त्र की आधारभूत हिंसा उस पर प्रहार करती।"[89]

अश्वात्थामा प्रतिहिंसा की अग्नि में जल रहा था। उसने पाण्डवों और पांचालो के नाश के लिए अभिमंत्रित आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया।

" चारो ओर अग्नि ही अग्नि दिखाई पड़ रही थी। पवन जैसे तपने लगा और आकाश से उल्कायें गिरके लगीं। जहां–जहां पाण्डव सेनायें थी, उन्हें अग्नि ने घेर लिया था।"[90] अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र प्रकट करके अश्वत्थामा के आग्नेयास्त्र को शान्त कर दिया। अपने देवास्त्रो को निष्फल देख अश्वात्थामा इतना हताश हुआ कि सहसा अपना धनुष फेंक रथ से कूद एक दिशा में "धिक्कार है–धिक्कार है" चिल्लाता हुआ दौड़ता चला गया। अश्वात्थामा सरस्वती नदी के तट पर वेदव्यास के आश्रम में पहंच कर उनके चरणों में गिर कर रोने लगा। उसने कहा–

" ऋषिवर ! मेरे इन अस्त्रो से देवता भी जीवित नही बच सकते थे, किन्तु कृष्ण और अर्जुन ने उन्हे भी शान्त कर दिया। अब मेरा तो इन

अस्त्रो पर से विश्वास ही उठ गया। यदि नारायणास्त्र और आगनेयास्त्र कुछ नहीं कर सकता। अब मैं अपने पिता के हत्यारे से प्रतिशोध कैसे लूंगा।''[91]

महर्षि व्यास ने समझाया –

''तुम मेरा विश्वास कर सको तो इस सत्य को हृदय में धारण कर लो कि चाहे किसी का भी बध कर लो, किन्तु न कृष्ण का बध कर सकोगे और न अर्जुन का। उनका धर्म उनकी रक्षा करा रहा है; और धर्म का बध शस्त्रो से नही होता।''[92]

अर्जुन और कर्ण के हैरथ युद्ध में प्रचण्ड संघर्ष हुआ। पौराणिकता के अनुसार ही रथ–चक्र मुक्त करने के प्रयत्न में कर्ण अर्जुन द्वारा मारा जाता है। दुर्योधन शल्य को प्रधान सेनापति बनाता है। शल्य अविश्वसनीय भीषण युद्ध करता हुआ युधिष्ठिर द्वारा मारा जाता है।

अंत में अपने को असहाय पाकर दुर्योधन वैपावन सरोवर में जा छिपा। युधिष्ठिर के ललकारने पर वह बाहर निकलता है। इसी समय दुर्योधन के पक्षधर बलराम जी का आगमन होता है। अपने शुभचिंतक बलराम को देख कर दुर्योधन का मनोबल बढ़ जाता है। भीम और दुर्योधन के बीच निर्णायक युद्ध के रूप में गदा–युद्ध की बात तय होती है। बलराम युधिष्ठिर से कहते है –

'' यह गदायुद्ध वैसा नहीं होगा, जैसा युद्ध पिछले अट्ठारह दिनो से

होता आ रहा है....... मेरे अखाड़े में जैसे गदायुद्ध होता है, वैसे ही उन्ही नियमों के अधीन, यहां भी युद्ध होगा।''[93]

कृष्ण बलराम के नकट आए और बोले '' भैया! नियम केवल क्रीडा में होते हैं। युद्ध में कोई नियम नहीं होता। युद्ध के नियमों को केवल दुर्बल पक्ष मानता है। अन्यथा युद्ध का एक मात्र नियम और धर्म बल है; और उसका एक मात्र न्याय विजय है। दुर्योधन ने पिछले अट्ठारह दिनो मे ही नही आजीवन यही किया है।''[94]

महाभारत के वस्तुविन्यास के अनुसार ही समन्त पंचक क्षेत्र में भीम तथा दुर्योधन का विकट गदायुद्ध होता है। गदा युद्ध के नियमानुसार कटि के नीचे प्रहार नहीं किया जाता, किन्तु अर्जुन के संकेत पर भीम दुर्योधन की दोनो जंघाओ पर प्रहार करता है। उसके गिरने पर कई घातक प्रहार करके उसे मरणासन्न कर देता है। भीम का जीवन भर का आक्रोश प्रक्षेप्त हो उठता है और वह तिरष्कार पूर्वक दुर्योधन के मस्तक पर लात से प्रहार करता है। युधिष्ठिर भीम को वर्जित करते है। बलराम को तो इतना क्रोध आता है कि वे अपने शस्त्र हल को लेकर भीम को मारने दौड़ते हैं। कृष्ण बलराम को पकड़ लेते है और उन्हें शान्त करने का प्रयास करतें हैं। अंत में क्रुद्ध बलराम द्वारका के लिए प्रस्थान करते है।

मरणासन दुर्योधन अश्वत्थामा को अपना अन्तिम प्रधान सेनापति

बनाता है। रात में कृपाचार्य तथा कृतवर्मा के साथ अश्वत्थामा विजयोल्लास में निमग्न पांचाल–शिविर पर आक्रमण करता हैं। वह आक्रोश में पाण्डव सेना के प्रधान सेनापति और अपने पिता आचार्य द्रोण के हत्यारे घृष्टद्युम्न का पीट–पीट कर नृशंस बध कर देवा है। उधामन्यु और उत्तमौजा को भी विना शस्त्र प्रयोग के कण्ठ दबा कर मार डालता है। द्रोपदी के पांचो पुत्रों– प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, शतानीक, श्रुतकर्मा तथा श्रुतकीर्ति का खड़ग से बध करता है। शिखण्डी`खण्ड–खण्ड कर देता है। पांचाल–शिविर के कुछ सैनिक ही भाग सके, अश्वत्थामा ने क्रोघ की अतिशयता में पूरे शिविर का बध कर दिया। जो सैनिक भाग रहे थे, उनका बध द्वार पर खड़े कृपाचार्य तथा कृतवर्मा कर रहे थे।

दुर्योधन की मृत्यू के बाद जब युधिष्ठिर ने कहा कि –

'' अपने कुज के संहार से मैं प्रसन्न नहीं हू।'' तो कृष्ण ने भारतीय आर्य मनीषा की तात्विक अभिव्यक्ति इन शब्दों में की –

'' और जहां तक कुल के संहार की बात है महाराज! जो नष्ट हुआ, वह आपका नहीं था। उस नाश के कर्त्ता भी आप नहीं है...... जिसे आप नष्ट होना कहते हैं, वस्तुतः वह प्रकृति द्वारा किया गया सृष्टि का समाहारा है''[95]

द्रोपदी को अपने सारे पुत्रो के बध की सूचना मिली, तो वह मर्माहट हो उठी। उसने कृष्ण से कहा –

" गोविन्द! द्रोपदी की स्वर कांप गया और उसकी आंखो में अक्षु आ गए –" मनुष्य मरणशील है, यह तो मैं जानती हूं , किन्तु मृत्यु का यह कौन–सा रूप हुआ।"[96]

कृष्ण का उत्तर था –

" महाकाल की लीला को कौन जान सका है सखि........ यह सब मनुरूस को स्तब्ध कर देने के लिए है; किन्तु महाकाल को कुछ भी तो स्तब्ध नहीं करता। उसके लिए तो यह सब कुछ ही स्वाभाविक है। यह सब होना ही था, इसलिए हुआ।"[97]

युधिष्ठिर का विषाद इन शब्दों में प्रकट हुआ –

" लगता हैकि मेरे लिए भी हिमालय पर जाकर स्वयं को गलाने का समय आ गया है।"[98] "वह सब बाद में।" द्रोपदी की दीनता नष्ट हो गई। उसके स्वर मे तेज लौट आया –

" यदि आज आप रणभूमि में पराक्रम प्रकट कर, उस पापाचारी अश्वत्थामा के प्राण नहीं हर लेते, तो मैं यहीं अनशन कर अपने जीवन का अंत कर दूंगी।"[99]

कृष्ण, अर्जुन और भीम ने वेदव्यास आश्रम में गंगा की रेत में सन्यासियों के झुण्ड के बीच अश्वत्थामा को बैठे देखा। भीम को अपनी ओर क्रुद्ध रूप में अति दो अश्वत्थामा ने मन को एकाग्र कर 'ब्रह्मशिर ' नामक देवास्त्र का स्मरण किया –

"मन की तरंगो ने जाकर ब्रह्मशिर को जाग्रत किया। अश्वत्थामा ने उसे मन की विद्युत तरंगो के संकेत भेजे " समस्त पाण्डवो का विनाश करो।"[100]

ब्रह्मशिर देवास्त्र जाग्रत होकर विध्वंसक विकिरण के साथ अग्रसर हुआ। कृष्ण के कहने पर अर्जुन ने भी गुरूद्रोण द्वारा दिए गए देवास्त्र को मन की एकाग्रत से जाग्रत कर उसे संदेश दिया –

" शत्रु का ब्रह्मशिर शांत हो जाए।"[101]

" दोनो के ब्रह्मशिार जेसे आकाश में स्थिर हो गए थे। वे निरन्तर अग्नि उगला रहे थे। उनकी प्रक्रिया आरंभ हो गई थी और वे लक्ष्य को साध ा रहे थे। ऐसे लग रहा था जैसे संसार एक भयंकर अग्नि–सागर में स्नान करने की तैयारी मे है। आकाश पर उल्कायें उड़ रहीं थी और बज्रपात हो रहा था।"[102]

विश्व के विध्वंस की प्रक्रिया देख कर नारद और वेदव्यास ने अर्जुन और अश्वत्थामा से इन देवास्त्रों को प्रत्यावर्तित करने का आदेश दिया। अश्वत्थामा ने अजितेन्द्रिय होने के कारण अस्त्र का लौआने में असमर्थता प्रकट की। नारद और व्यास ने अश्वत्थामा को बहुत फटकारा और 'ब्रह्मशिर ' देवास्त्र के प्रभाव को सूक्ष्म करने का आदेश दिया। अश्वत्थामा ने कहा –

" तो यह विकसित पाण्डवों को नहीं उनके रक्त को पहचान कर उनके

गर्भस्थ शिशुओं को नष्ट कर देगा।''[103]

'' ठीक है। इसे पाण्डवों के गर्मों पर छोड़कर ही तू शान्त हो जा'' व्यास बोले '' अपने मन को निर्मल कर। विरोध त्याग। वैर त्याग। हिंसा त्याग।''[104]

'' जैसी आप की आज्ञा महर्षि ''........ ने अपने हाथों से अपनी मणि निकाल नहीं सकता।

धर्मराज अपने हाथों से इसे मेरे केशो से निकाल लें। मैं विरोध नहीं करूंगा।'' किसी के कुछ कहने और करने के पहले ही भीम आगे बढ़ा। उसके हांथ में उसका खड़ग था। उसने उसी खड़ग से अश्वत्थामा के सिर पर बने जटा जूट पर लपेटे गए वस्त्र को चीर कर उसके केशों से मणि प्रकट कर ली........ सभी ने देखा, मणि, खड़ग और अशतत्थामा के केश रक्त से भीग गए थे।''[105]

व्यास के आदेशानुसार अश्वत्थामा का प्राणदान देकर माम उसकी मणि लेकर कृष्ण, भीम और अर्जुन चले गए। हस्तिनापुर पहुंचकर कृष्ण और पाण्डव, धृतराष्ट्र और गांधारी से मिलते है। धृतराष्ट्र भीम को आलिगंन में बांधना चाहता है। कृष्ण धृतराष्ट्र का कुत्सित उद्देश्य समझ जाते है और भीम की वह लौह प्रतिमा आगे करवा देते हैं, जिससे दुर्योधन गदा अभयास करता रहा था। धृतराष्ट्र ने अपने बाहुबल से लौह प्रतिमा को पीस डालना चाहा। इस प्रयास में वह रक्तवमन करने लगे। अंत में

सब शरशैय्या पर लेटे भीष्म पितामह के पास पहुंचते हैं। वहां कृष्ण अपने दु:ख का उद्घाटन करते हैं कि यादवों में अंधक तथा वृष्णिवंश के अजेय योद्धा हैं। उनके कृत्य भी अमांगलिक हैं फिर भी मैं उन्हें सहन करने के द्वंद्ध से पीड़ित हूं। कृष्ण की व्यथा सुनकर पितामह ने युधिष्ठिर से कहा –

"युधिष्ठिर! सोचो मेरे पुत्र ....इसी प्रकार मैं भी सदा दोनो पक्षों का हित चाहने के कारण, दोनो ही ओर से कष्ट पाता रहा हूं। दोनो की रक्षा करने का प्रयत्न करता रहा हूं। परिणाम् तुम्हारे सामने हैं।"[106]

उपन्यास का अंत युधिष्ठिर के प्रति कृष्ण के इस उद्बोधन से होता हैं –

" तो आप भी अपने अवसाद को तिलांजलि दीजिए, ग्लानि का त्याग कीजिये " कृष्ण बोले, " आपको अपार निर्माण करना है। इस युद्ध में हुए विनाश की क्षतिपूर्ति करनी है। इसलिए इस हताशा से स्वयं को बंधन मुक्त कीजिए। धर्म किसी को बांधता नही; वह मुक्त करता है। वह जीवन में अवसाद नहीं उत्सव लाता हैं।[107]

नरेन्द्र कोहली ने महासमर का वस्तु विन्यास विभिन्न पुराणों, संहिताओं तथा स्मृतियों से ग्रहण किया है, किन्तु मुख्यतय: वह वेदव्यास कृत महाभारत जिसे पंचम वेद भी कहा जाता है– पर आघृत है।

पुराणों में महाभारत के कथानक के सूत्र

1–शिव पुराण[108]

2–विष्णु पुराण[109]

3–भागवत पुराण[110]

4–ब्रह्मवैवर्त पुराण[111]

संहिताओं में महाभारत के कथानक के सूत्र

1–अभिसंहिता[112]

स्मृतियों में महाभारत के कथानक के सूत्र

1–लघु हारीति स्मृति[113]

2–पाराशर स्मृति[114]

नरेन्द्र कोहली ने पारम्परिक वस्तुविन्यास के प्रमुख प्रवाह को पकड़े रह कर भी उसके अविश्वसनीय चमत्कारिक अंशो को वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक तथा तर्कमान्य रूप में ढालने का प्रयास किया है।

पुराणों तथा महाभारत में बर्णित शान्तनु तथा गंगा की अलौकिक कथा को भी नरेन्द्र कोहली ने यथासम्भव लौकिक बनाने की चेष्टा की। महाभारत के आदि पर्व शान्तनु औहर गंगा का प्रसंग इस रूप में आया है–

एक समय सब देवता ब्रह्मा जी की सेवा में उनके समीप बैठे हुए थे। वहां बहुत से राजर्षि तथा इक्ष्वाकुवंशी नरेश महाभिष भी उपस्थित थे।

इसी समय सरिताओं में श्रेष्ठ गंगा ब्रह्मा जी के समीप आईं। उस समया वायु के झोंके से उसके शरीर का चांदनी के समान उज्जवल वस्त्र सहसा ऊपर की ओर उठ गया। यह देख सब देवताओं ने तुरंत अपना मुंह नीचे की ओर कर लिया; किन्तु राजर्षि महाभिष निःशंक होकर देवनदी की ओर देखते ही रह गए। तब ब्रह्मा जी ने महाभिष को शाप देते हुए कहा – दुर्मते! तुम मनुष्यों में जन्म लेकर फिर पुण्यलोकों में आओगे। जिस गंगा ने तुम्हारा चित्त चुरा लिया है, वही मनुष्य लोक में प्रतिकूल आाचरण करेगी।[115]

गंगा को मार्ग में वशिष्ठ जी से अभिशप्त बसुओं स्वर्ग से गिरते हुए धरती की ओर पतनशील देखा। वसुओं ने गंगा से प्रार्थना की वे मर्त्यनोक में अपने उदर से जन्म देकर हमारा शापो द्वार करें।[116]

मर्त्यलोक में यही महाभिष हस्तिनापुर नरेश महाराज प्रतीप के पुत्र के रूप मे जन्मे और ब्रह्मा के शापानुसार महाराज प्रतीप का यह पुत्र (शान्तनु) गंगा का पति हुआ। शान्तनु तथा गंगा से उत्पन्न सात पुत्रों के रूप में अंश लेकर आठवें पुत्र के रूप में देवव्रत (भीष्म) का जन्म हुआ।

गंगा ने शान्तनु से विवाह के लिए शर्त रखी थी और कहा था, कि जिस आपने मुझे किसी कार्य से रोका था अप्रिय बचन कहा तो मैं निश्चय ही आपका साथ छोड़ दूंगी।[117]

जब गंगा आठवें पुत्र को गंगा नदी में फेंकने जा रही थी, तो

शान्तनु का धैर्य समाप्त हो गया और महाराज शान्तनु ने गंगा से कठोर बचन कहते हुए उनसें उस पुत्र को न फेंकने के लिए कहा। शर्त के अनुसार गंगा अब शान्तनु के साथ नहीं रह सकती थी। गंगा ने वसुओं के शाप का वृतान्त बताया और कहा कि वह सात वसु ही थे, जिन्हें गंगा में फेंक कर मैने उनका शापोद्वार किया है। अब सभी वसुओं के अंशी भूत इस आठवें सवु को तुम पुत्र के रूप में जीवित रखों। इसका नाम देवव्रत अथवा गंगादत्त होगा। तुम इस शिशु का पालन पोषण नही कर सकोगे अतः मैं इसे अभी लिए जाती हूं। बड़ा होने पर आपके पास आ जायेगा और आप जब मुझे बुलायेगे, आपके पास उपस्थित हो जाऊंगी।[118]

नरेन्द्र कोहली ने कथानक तो प्रायः यही रखा है किन्तु उसके अलौकिक अंशो को उन्होंने लौकिक तथा विश्वसनीय बनाने की चेष्टा की है। शान्तनु पुत्र देवव्रत विचार करता हैकि उनके पिता ने उनकी मां से बिना विशेष परिचय तथा बिना कुलशील का ज्ञान किये विवाह कैसे कर लिया?–

" उनके पिता ने मां को गंगा – तट पर देखा था और तत्काल मुग्ध हो उठे थे। उनके विषय में पिता ने कोई खोज, कोई पुंछ–पड़ताल नहीं की थी। वह कौन थी ? किसकी बेटी थी ? उसके साथ विवाह के लिए किससे अनुमति की आवश्यकता है......... उनके पिता ने कुछ जानना नहीं चाहा था।........ आर्य लोग रक्त की शुद्धता के लिए दृढ़ आग्रही होते हैं तो

आर्य – सम्राट शान्तनु ने मां का कुल – गोत्र जानने की तनिक भी चेष्टा क्यों नहीं की थी।[119]

महाभारत के अनुसार गंगा देवव्रत को साथ ले गई थीं, किन्तु नरेन्द्र कोहली ने इसमें परिवर्तन किया है। इन्होने दिखाया है कि शान्तनु द्वारा वर्जित किये जाने से सष्ट गंगा ने वह शिशु शान्तनु की गोद में डाल दिया और स्वयं घर छोड़कर चली गयी।[120]

लेखक ने कुन्ती के मन्माछान से पधारकर देवताओं द्वारा सन्तनोत्पत्ति को भी परिवर्तित करके विश्वसनीय रूप में प्रस्तुत किया है।

महाभारत के अनुसार कुन्ती ने अपने पति पाण्डु को बताया था कि उनके कौमर्यकाल में महर्षि दुर्वासा प्रसन्न होकर एक मंत्र बताया था, जिसके प्रभाव से मैं किसी देवता का आहान करके उसे पुत्र पुत्र प्राप्त कर सकती हूं, आप मुझे आज्ञा दे कि मैं किसका आहान करूं ?[121]

नरेन्द्र कोहली के अनुसार कुन्ती तथा भाद्री कु पुत्र पाण्डु की इच्छा से नियोग पद्धति से हुये थे।नियोग के समय नियुक्त पुरूष की कलपना उस देवता के यप में कर ली जाती थी। युधिष्ठिर के गर्भस्थापन के समय नियुक्त पुरूष की कल्पना कर्मराज के रूप में, भीम के गर्भस्थाप के समय वायु की, अर्जुन के गर्भस्थापन के समय इन्द्र की तथा नकुल–सहदेव (यमज) के गर्भस्थापन के समय अश्विनी कुमारों की कल्पना की गई थी।

नरेन्द्र कोहली के 'बन्धन ' उपन्यास के अनुसार यह प्रसंग इस

प्रकार है –"चकित मत होओ प्रिये।" पाण्डु धरी से बोले, " औरस पुत्र उत्पन्न करने की क्षमता मुझ में नही है, अतः क्षेत्रज –पुत्र की सम्भावना को अपद्धर्म के रूप में स्वीकार करना पड़ेगा।"[122]

" तो तुम नियुक्त वुरूष से देव प्रदत्त सन्तान प्राप्त करने का प्रयत्न करो. .... इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है देवि! पाण्डु बोला ...."[123]

X X X

कुन्ती ने पाण्डु के बताया कि "दुर्वासा ऐसी मन्त्रणा मुझे दे चुके हैं।"

" मन्त्रणा क्या थी " पाण्डु अधीर हो उठा " ऋतुस्नान के पश्चात यदि सभी पति विहीन हो तो किसी देव–शक्ति का ध्यान कर, किसी श्रेष्ठ पुरूष को, उस देवशक्ति का प्रतिनिधि मान उससे देव–प्रदत्त स्नतान प्राप्त करनी चाहिए।"[124]

संक्षेप यदि कहा जाय तो इतना यथेष्ट होना कि नरेन्द्र कोहली ने इस उपन्यास को महाभारत के वस्तु–विन्यास की रक्षा करते हुए उसमें उन प्रसंगो को स्वाभाविक, सहज, बोधगम्य, विज्ञान और मनोविज्ञान सम्मत तथा तर्क सम्मत बनाने के लिए काल्पनिकता तथा प्रयोगधर्मिता का आश्रय लिया है। उपन्यासकार को अपने प्रयास में सफल कहा जा सकता है।

समकालीन परिवेश को दृष्टिपथ पर रखकर ही नरेन्द्र कोहली

'महासमर' उपन्यास का सृजन किया है। कथावस्तु मले हो पौराणिक आधार लिए हुए हों किन्तु अद्यतन समस्याए, विसंगतियों , शोषण, वंचना, छत्र, प्रपंच और भोग की अतिशयता के स्वरूप और उनके समाधान भी इस कृति में समायोजित हैं। आज अतिभौतिकता तथा उपभोक्तादारी युग में विश्वव्यापी स्वार्थी हथकंडो के परिदृश्य सर्वत्र व्याप्त परिलक्षित होते हैं, जिनके मूल में काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या तथा अहंकार जैसे विकार हैं। ऐन्द्रिय भोग की लालसायें अनन्त विकृतियों को जन्म देती हैं। यदि शान्तनु अज्ञात कुलशीलता अिवा अपात्र निषाद–कन्या के यौन–आकर्षण में न फंसते तो देवव्रत भीष्म को इतनी कठोर प्रतिज्ञा न करनी पड़ती और हस्तिनापुर सिंहासन एक सुपात्र युवराज की सेवाओं से वंचित न होता। सत्ता जब सुपात्रों के हांथ से निकल कर कुपात्रों के पास पहुचती है तो अनाचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार, व्यभिचार, दुराचार तथा स्वैराचार का सर्वत्र प्रसार हो जाता है। समकालीन परिस्थितियों में कुशासन अथवा दुर्बल शासन का उपर्युक्त विकार सहज ही देखे जा सकते हैं। प्रत्येक बन्धन अनर्थकारी होता है। सत्ता से जुड़ी शक्तियाँ जब किन्हीं कारणों से न्याय का संघर्ष नहीं कर सकतीं तो उसका दुष्परिणाम समान्य प्रजा से लेकर शासक शक्तियों तक को भोगना पड़ता हैं। देवब्रत जिस धर्म बन्धन में बंधे त्याग और बलिदान की यात्रा कर रहे हैं, उससे न उनके पिता शान्तनु का हित हुआ, न प्रजा का, न देश–काल का और न देवब्रत भीष्म

का। भीष्म जिसे धर्म समझ रहे थे, क्या वह वास्तव में धर्म था? धर्म बांधता नही वह तो मुक्त करता है। कर्म की अमोघ परिणामी सत्ता है। कर्म फलहीन नहीं हो सकता। शान्तनु, भीष्म, सत्यवती के कर्मों ने फल के रूप में विनाशकारी महाभारत के युद्ध की संभावनायें उत्पन्न कर दीं थीं। युग–नायक कृष्ण भी उसे नहीं टाल सके। भीष्म महान योद्धा, आज्ञाकारी पुत्र, तत्त्वचिन्तक, संकल्पवान तथा व्यक्तिगत आकांक्षाओं से मुक्त अतिमानव हैं। ऐसे महान गुण होते हुए भी वह युग का कल्याण नहीं कर सके। वस्तुतः वह दूसरों के स्वार्थ के साधन बन कर अपना नहीं प्रत्युत् युग का अनर्थ कर रहे थे। अपने बृद्ध विलासी पिता के लिए निषाद–कन्या सत्यवती को लाने के लिए युवराज पद का त्याग भावी अनर्थ की आधार शिला सृजित कर चुका था। सत्यवती का महत्त्वाकांक्षी, अज्ञानी तथा हठी चरित्र हस्तिनापुर के भविष्य के लिए विनाश की आधार भूमि रच रहा था। वृद्धावस्था की ऊपर से सत्यवती जैसी निम्न मनोभूमि वाली माँ की छत्र–छाया में पलने वाली संतति चित्रांगद और विचित्रवीर्य जैसी ही हो सकती थी। भीष्म विचित्रवीर्य के अक्षम और अस्वस्थ राजकुमार के लिए काशिराज की तीन कन्याओं अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका का अपहरण कर लाये। अतिकामाचार के कारण विचित्रवीर्य की भी मृत्यु हो गई। हस्तिनापुर का राजसिंहासन पुनः रिक्त हो गया। सत्यवती पूर्णतः असहिष्णु और त्याग के प्रतीक भीष्म के प्रति ईर्ष्यालु स्त्री भर बनकर रह गई।

नियोग के द्वारा क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न करने की योजनायें बनाने लगीं। उन्हें अपने कानीन पुर कृष्ण द्वैपायन की याद आई जो उसके कौमार्य–काल में पाराशर मुनि के संसग से उत्पन्न हुआ था। कृष्ण द्वैपायन (व्यास) माँ की आज्ञा मानकर अम्बिका से घृतराष्ट्र, अम्बालिका से पाण्डु और एक दासी से विदुर को नियोग पद्धति से जन्म देते हैं। घृतराष्ट्र जन्मांध हैं। पाण्डु रक्ताल्पता से रूग्ण तथा नपुंसक हैं। भीष्म की योजना तथा शक्ति से अंधे घृतराष्ट्र का विवाह गांधारराज सुबल की सुन्दर पुत्री गांधारी से होता है। नपुंसक पाण्डु की दो पत्नियाँ हो जाती हैं– कुन्ती और भाद्री। बेमेल विवाह के इससे दूषित उदाहरण और कौन होंगे? राजकीय स्तर पर हो रहे इन कर्मों का परिणाम् राजपरिवार प्रजा तथा युग–सबको भोगने पड़े। सत्यवती की कामनाओं का चित्रण उपन्यासकार ने कितने सजीव ढ़ंग से किया है– ''राजमाता को तो अनेक पुत्र चाहिए थे, पुत्रों के लिए राज्य चाहिए था, राज्य को उत्तराधिकारी चाहिए था, उत्तराधिकारी उत्पन्न करने के लिए राजकुमारियाँ चाहिए थीं, राजकुमारियों का हरण के लिए भीष्म चाहिए थे, भीष्म को बांध रखने के लिए बचन चाहिए था, बचन के परिणाम स्वरूप दास चाहिए थे, सब ओर दास ही दास, आज्ञा–पालन करने वाली काष्ठ पुत्तिलिकायें।''[125] तरुणी रानियों से भागता राजा पाण्डु अपने अंधे भाई घृतराष्ट्र को हस्तिनापुर की सत्ता सौंप कर सप्तश्रृंग पर्वत मालाओं के आश्रम में तपोनिष्ठ जीवन व्यतीत करता है। पुत्र और

सत्ता–मोह में घृतराष्ट्र ने जघन्य कुकर्म किये। समसामयिक परिस्थितियों में सत्तालोलुप और मोह में अन्धें अनेक घृतराष्ट्र सत्ता के गलियारों में भटकते देखे जा सकते हैं। अक्रूर का युधिष्ठिर के प्रति कथन समकालीन सन्दर्भो में अपनी प्रासंगिकता रखता है–"मुझे प्रसन्नता है पुत्र! किसी का नायकत्त्व आंख मूंद कर नहीं स्वीकार कर रहे, मात्र परिजन होने के नाते, किसी को अपना सुह्रद अथवा न्यायी नहीं मान रहे।"[126]

वाह्य संसार के सारे घटनात्मक संघर्ष वास्तव में मनोजगत में उत्पन्न होने वाले संकल्प–विकल्प से उद्भूत विकारों के स्थूल रूपान्तरण मात्र हैं। मर्यादा की लक्ष्मण रेखायें पार करते ही ये मनोविकार मानसिक विकृतियों में परिणत हो जाते हैं। दुर्योधन इसी मानसिक विकृति का शिकार हुआ है। अपनी आवश्यकता भर पाकर वह संतुष्ट नहीं हुआ। पाण्डवों का सर्वस्व पीड़ा दुर्योधन के सुख की अनिवार्य शर्त थी। यदि भारत को पाण्डव मान लिया जाय तो पाकिस्तान को दुर्योधन तो इस उपन्यास में दुर्योधन के माध्यम से प्राप्त होने वाली परपीड़न की सुखानुभूति स्पष्ट दृष्टिगोचर होगी। समाज में विशेष रूप से अतिभौतिकता की ओर अग्रसर समाज में ऐसे बहुत से दुर्योधन अनायास मिल जायेंगे, जो अपने सुख से नहीं दूसरों के दुख से सुखी हैं।

मानवीय कुत्सित वृत्तियों में ईर्ष्या सार्वभौम और सार्वकालिक है। दूसरों से स्वयं को सम्पन्न और श्रेष्ठ अनुभव करना मनोवैज्ञानिक दुर्बलता

है। आभूषण इत्यादि के प्रदर्शन के माध्यम से तब तक किसी की तुष्टि नहीं होती जब तक किसी दूसरे की उस पर सराहनीय दृष्टि नहीं पड़ती। वस्तुतः वैभव के सारे प्रदर्शन दूसरों को हीनभावना से ग्रस्त करके उन्हें दुखी करने में सर्वाधिक सुखानुभूति होती है। महाभारत की कथा वस्तु के माध्यम से नरेन्द्र कोहली ने वस्तुतः सार्वसामयिक तथ्य प्रस्तुत करने का सफल उपक्रम किया है–''अपने शत्रुओं की दुर्दशा देखकर मनुष्य को जो प्रसन्नता होती है, वह धन, पुत्र तथा राज्य मिलने से भी नहीं होती।''[127]

नरेन्द्र कोहली द्वारा भारतीय संस्कृति तथा भारतीय चितंन की अमूल्य थाती महाभारत को आधार बनाकर लिखे गए इस उपन्यास में मानव के उस अविराम संघर्ष की कथा है, जो उसे अपने बाहरी औरी भातरी शत्रुओं के साथ निरन्तर करना पड़ता है। वह उस परिवेश में रहता है, जिसमें सर्वत्र लाभ और स्वार्थ की शक्तियाँ रण–सन्नद्ध हैं। जरायों से अधिक उसे अपने भीतर लड़ना पड़ता है। यदि वह अपने कर्त्तव्य कर्म अर्थात धर्म पर टिका रहता है तो महाभारत के महान चरित्र युधिष्ठिर की भाँति वह संशरीर स्वर्ग जा सकता है। सदेह स्वर्ग जाने से आशय मृत्यु के उपरान्त किसी स्वर्ग से नहीं, प्रत्युत काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर, अहंकार पर विजय प्राप्त करने वाला जितेन्द्रिय इसी देह में और इसी संसार में रहता हुआ स्वर्ग में ही है।

अंत में युधिष्ठिर के प्रति कृष्ण के कथन में प्रत्येक युग के प्रत्येक मनुष्य के लिए उद्बोधक संदेश है जो इस कृति को सार्वकालिक प्रासंगिक बनाने में समर्थ है–"पितामह की बात पर विचार करें धर्मराज! अग्नि यज्ञ की प्रतीक है और यज्ञ कर्म का। पितामह अंत समय तक कर्म करते जाना चाहते हैं। सूर्य बुद्धि का प्रतिनिधि है। जीवन के अन्तिम क्षण तक कर्म–यज्ञ की ज्वाला जलती रहनी चाहिए। सतत् कर्त्तव्य करते हुए मृत्यु आजाये तो मनुष्य धन्य होता है। मन में ग्लानि रखने का कोई अर्थ नहीं है। पितामह ने अपने हाथों से इतने लोगों का बध किया है। वे भी तो सोच सकते हैं कि उनकी असमर्थता के कारण ही कौरवों का विनाश हुआ है। यदि वे घृतराष्ट्र या दुर्योधन को नियन्त्रित कर पाते तो यह युद्ध होता ही क्यों। फिर भी वे मन में ग्लानि नहीं रखना चाहते, पूरे चन्द्रमा को देखकर जाना चाहते हैं। चन्द्रमा मन का, मन की भावना का प्रतिनिधि है। प्रसन्न मन से जाना चाहते हैं, क्योंकि वे अपना कर्म कर रहे थे। समरभूमि मे गिरने के क्षण तक उनके हाथ में धनुष था, फिर भी वे प्रसन्न हैं। अंतिम समय तक हाथ से कोई कार्य होता रहे, भावना की पूर्णिमा चमकती रहे, हृदयाकाश में आसक्ति के मेघ न हों, बुद्धि सतेज रहे। ऐसा परम् कल्याणकारी अंत पाने के लिए, निरंतर दक्ष रहकर अंत समय तक लड़ते रहना होता है। एक क्षण के लिए भी मन में कोई अशुभ भाव नहीं आने देना चाहिए..............................तो उनकी ही बात मानें, हम धर्म की ओर थे।

पितामह अधर्म के पक्ष में लड़े, तो भी उनके मन मे ग्लानि नहीं है, क्योंकि उन्होंने जिसे अपना धर्म माना वही किया, जब स्वयं को असमर्थ अथवा अनावश्यक पाया, स्वयं को समरभूमि से हटा लेने का प्रबन्ध कर लिया। आजीवन स्वयं को बांधे रखने वाले उस महापुरुष ने इस समय स्वेच्छा से स्वयं को मुक्त कर लिया। यही इच्छा–मुक्ति है..................................तो आप भी अपने अवसाद को तिलांजलि दीजिए ग्लानि का त्याग कीजिए। कृष्ण बोले...............आपको अपार निर्माण करना है। इस युद्ध मे हुए नाश की क्षतिपूर्ति करनी है। इसलिए इस हताशा से स्वयं को बंधन मुक्त करता है। वह जीवन में अवसाद नहीं उत्सव लाता है।''[128]

इस प्रकार हम देखते हैं 'बंधन' से प्रारम्भ होने वाला यह उपन्यास 'निर्बन्ध' में समाप्त हुआ। पितामह जैसे 'बद्ध' चरित्र अंत में निर्बन्ध हो गए। समसामयिकता की दृष्टि से इतना शाश्वत एवं शुभ संदेश और कौन हो सकता है? अनुसंधित्सु समसामयिकता की दृष्टि से इस कृति को सफल मानती है।

उपन्यासों का सांकेतिक परिचय

1–बंधन

नरेन्द्र कोहली के वृहदाकार उपन्यास 'महासमर' का यह प्रथम खण्ड है। इस उपन्यास की घटनायें तथा पात्र महाभारत पर आधारित हैं। किन्तु मनोविज्ञान, तर्क, तथा चिन्तन के धरातल पर इस कृति की

औपन्यासिकता ने महाभारत के वस्तुविन्यास के अनन्तर भी अपनी मौलिकता स्थापित की है। 'बन्धन' मनोप्रेरित कर्मों के द्वन्द से उत्पन्न होता था। संसार की भोग तथा स्वार्थवादी संलिप्तता बन्धन का कारण है। इस उपन्यास में शान्तनु सत्यवती तथा भीष्म की मनोभूमि तथा उनके स्वयं की इच्छा से सृजित जीवन–मूल्यों की कथा है। घटनाओं की दृष्टि से यह सत्यवती के हस्तिनापुर आने, उनके दोनों पुत्रो–चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य से निस्संतान मरने, नियोग पद्धति से सत्यवती के कनीन पुत्र वेदव्यास द्वारा अम्बिका, अम्बालिका तथा एक दासी के गर्भ से घृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर का नियोग पद्धति से जन्म, कुन्ती तथा माद्री द्वारा नियोग पद्धति से पाँच पाण्डु के क्षेत्रज पुत्रों का जन्म, माडी के साथ सहावास करने की चेष्टा में पाण्डु की मृत्यु, कुन्ती का सप्तशृंग आश्रम से ऋषियों और अपने पुत्रों के साथ हस्तिनापुर आगमन। कौरव तथा पाण्डव बालकों के बीच बचपन में ही विरोध, दुर्योधन और घृतराष्ट्र की सहमति से पाण्डवों के विनाश के षड्यंत्र और हस्तिनापुर के भीषण भविष्य को देखते हुए वेदव्यास के कहने पर सत्यवती का अम्बिका तथा अम्बालिका के साथ हस्तिनापुर त्याग की कथा है।

2–अधिकार

'अधिकार' का वस्तुविन्यास हस्तिनापुर में पाण्डवों के शैशव से प्रारम्भ होकर वरणावत के अग्निकाण्ड में जाकर समाप्त होता है। वस्तुतः

इस खण्ड में सत्ता लोलुपता, सत्ता पर अधिकार करने की अदम्य इच्छा सत्ता के माध्यम से अधिकार प्राप्त करने की लालसा, के विविध सन्दर्भ सुगिम्फित है। इस खण्ड में अधिकारों की व्याख्या की गई है। राजनीति में अधिकार प्राप्त करने के लिए होने वाली हिंसा तथा राजनीतिक संत्रास के बोझ में दबे असहाय मानवता की व्यथा–कथा भी समानान्तर चलती है। एक ओर घृतराष्ट्र और दुयोधन का निर्लज्ज स्वार्थ और उद्दाम भोग–लालसा और दूसरी आरे अनासक्त धर्म शांति के लिए भीष्म का सकाम प्रयत्न दोनो पक्ष आमने–सामने हैं।

3–कर्म

'महासमर' उपन्यास के तीसरे खण्ड 'कर्म' में युधिष्ठिर के युवराज्याभिषेक के उपरान्त की कथा है। यद्यपि शक्ति के प्रतिनिधि अक्रूर के दबाव में घृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर का युवराज्याभिषेक किया था दुर्योधन घृतराष्ट्र की प्रच्छन्न इच्छानुसार पाण्डवों को वरणावत के लाक्षाभवन में कुन्ती समेत भस्म करने का असफल प्रयास करता है। विदुर, कृष्ण तथा व्यास के अदृश्य सहयोग से पाण्डव पाँचालों की राजधानी 'काम्पिल्य' सुरक्षित पहुँच जाते है। काम्पिल्प में इस समय याज्ञसेनी कृष्णा (दौपद्री) का वीर्यशुल्क स्वयंम्बर हो रहा है। स्वयंवर की शर्त कोई नहीं पूरी कर पाता। कर्ण धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर लक्ष्यबेध में सफल होने जा रहा प्रतीत होता हैं, किन्तु द्रौपदी उसे सूत–पुत्र होने के कारण स्वयं में भाग

लेने का अधिकारी नहीं मानती। अंत में ब्राह्मण वेश में अर्जुन लक्ष्यवंध करके द्रोपदी की वरमाला धारण करने का अधिकारी होता है। कुम्हार को धर में ठहरी कुन्ती द्रौपदी के अर्जुन से विवाह को 'परिवेदन' दोष से मुक्त मानती है। अतः कृष्णा (द्रौपदी) का विवाह पाँचों पाण्डवों से हो जाता है।

युधिष्ठिर के हस्तिनापुर लौट आने पर समस्या उत्पन्न हुई कि एक राज्य में दो युवराज कैसे हो सकते हैं। अतः घृतराष्ट्र भावनात्मक छल का प्रयोग करते हुए युधिष्ठिर को यमुना–पार खाण्डव प्रस्थ में राजधानी बनाकर साम्राज्य स्थापित करने के लिए कहते है। भीष्म और विदुर के रहते हस्तिनापुर में निरन्तर हो रहा अन्याय रुक नहीं पा रहा था। भीष्म युद्ध टालना चाहते थे, किन्तु उनके अनजाने ही युद्ध निकट आता जा रहा था। अन्याय की जमीन पर ही संघर्ष का विष वृक्ष उत्पन्न होता है।

4–धर्म

'महासमर' के चौथे खण्ड 'धर्म' में धर्म की परिस्थिति, आवश्यकता, समस्या तथा पद के अनुसार धर्म की विविध व्याख्यायें की गयी हैं। पाण्डवों को राज्य के रूप में खाण्डव प्रस्थ मिला है, जहाँ न कृषि है, न व्यापार, न नगर, न समुचित राज प्रासद। उस क्षेत्र में अपराधियों तथा इन्द्र जैसी महाशक्तियों की वाहनियाँ अपने षड़्यन्त्रों में लगी हुई हैं। युधिष्ठिर के समक्ष धर्म संकट है। वह नृशंस नहीं होना चाहता, किन्तु नृशंसता के बिना प्रजा की रक्षा नहीं हो सकती । पाण्डवों के पास इतने

साधन भी नहीं हैं, कि वे इन्द्र–रक्षित खाण्डव वन को नष्ट कर उसमें छिपे अपराधियों को दण्डित कर सकें। किसी प्रकार खाण्डव प्रस्थ का नाम इन्द्रप्रस्थ रख कर इन्द्र को संतुष्ट करके उनके वास्तुकारों और मय जैसे विश्वकर्माओं के द्वारा राज–प्रासद, प्राचीर, नगर तथा चतुष्पथ और दिव्य कमलाच्छादित पुष्कारिणियों से अलंकृत अभिराम नगर 'इन्द्रप्रस्थ' का सृजन होता है। धीरे–धीरे नगर बसने लगता है। और उसमें समृद्धि के चिह्न उभरने लगते हैं। युधिष्ठिर तथा दौपदी के एकान्त में परिस्थिति वश अर्जुन के प्रवेश ने निर्धारित नियम को अनुसार बारह वर्ष के वनवास के लिये अर्जुन को इन्द्रप्रस्थ छोड़ना पड़ता है। इन बारह वर्षों में अर्जुन शिव तथा इन्द्र से अनेक दिव्य तथा देवास्त्र प्राप्त करता है। इस दौरान वह उलीपी तथा चिद्रांगदा से विवाह भी करता है। कृष्ण अपने चिर शत्रु परासंघ का भीम के द्वारा बध करवा देते हैं। युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करके चक्रवर्ती सम्राट हो जाते है और राजसूय यज्ञ करते है।, जिसमें कृष्ण का अग्र पूज्य होना चेदि नरेश शिशुपाल सहन नहीं कर पता। वह कृष्ण के साथ अभद्रता करता हैं। अंत में कृष्ण अपने सुदर्शन चक्र से उसका बध कर देते है।

पाण्डवों के वैभव से दुर्योधन बहुत खिन्न होता है। उसकी इच्छा पूर्ति के लिए घृतराष्ट्र नवनिर्मित स्फटिक भवन में द्यूत–क्रीड़ा के लिए युधिष्ठिर को हस्तिनापुर आमंत्रित करते हैं। शकुनि प्रख्यात कैतव है।

वह छल से युधिष्ठिर की सारी चल—अचल सम्पत्ति जीत लेता है, उसे भाइयों समेत दास बना लेता है। द्रोपदी को भी जीत लेता है। भीष्म, द्रोण, कृप और घृतराष्ट्र के सामने द्रौपदी का घोर अपमान होता है। सब अपने अपने धर्म बन्धनों में बंधे है।कोई स्वर्त्थ के बन्धन में और कोई धर्म के बन्ध ान में। अंत में गांधारी के कहने पर घृतराष्ट्र पाण्डवों तथा पांचाली को दासता मुक्त करते है। पाण्डवों को बारह वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष का अज्ञात वास दिया जाता है। कुन्ती अपने पुत्रों के साथ बनवास इसलिए नहीं जाती कि यदि वह हस्तिनापुर से चली गई तो हस्तिनापुर सहिष्णु युधिष्ठिर का विस्मृत हो जाएगा और वह न्याय के लिए संघर्ष करके अपना अधिकार न प्राप्त कर सकेगा। द्रौपदी इसलिए पाण्डवों के साथ वन गई ताकि उसके खुले केशों को देखकर उसके पतियों को कौरवों से प्रतिशोध का प्रतिक्षण ध्यान रहे।

5—अन्तराल

इस खण्ड में पाण्डवों की वनवास कालीन स्थितियों का चित्रांकन है। वनमार्ग में भीम द्वारा किर्मीर राक्षस के बध का वृतान्त है। पाण्डव अपने पुरोहित धौम्य ऋषि के साथ काम्यक बन में निवास करने लगे। दुर्योधन पाण्डवों को सताने के लिए उनके पास दुर्वासा ऋषि को शिष्यों समेत इस लिए भेजता है, कि पाण्डव अपनी विपन्नता के कारण दुर्वासा का सत्कार न कर पायेंगे अतः क्रोध में दुर्वासा उन्हें भस्म कर देंगे।

कृष्ण की कृपा से पाण्डवों की दुर्वासा से रक्षा होती है। कृष्ण और घृष्ट्रद्युम्न यहाँ पाण्डवों से मिलने आते हैं। अब दुर्योधन जयद्रथ को द्रोपदी का हरण करने के लिए भेजता है। जयद्रथ द्रौपदी का हरण करता है किन्तु पाण्डव उसे पकड़ कर बहुत अपमानित करते छोड़ देते हैं।

अब पाण्डव काम्यक वन छोड़ कर हिमालय क्षेत्र में प्रवेश करते हैं वहाँ बदरिकाश्रम क्षेत्र में राक्षस जटासुर द्रौपदी का हरण करना चाहता है। भीम द्वारा जटासुर का बध होता है। पाण्डव गंधमादन क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। यहाँ द्रौपदी की प्ररेणा पर भीम यक्षों से युद्ध करके सौगन्धिक पद्म लाते हैं। भीम यक्ष शक्ति को समाप्त करने के लिये यक्ष–नगर–प्राचीर फाद कर द्रोपदी का अपमान करने वाले यक्ष मणिमान का द्वन्द्व युद्ध में बध करते हैं। तब स्वयं कुबेर आकर भीम को समझाते हैं और अकारण ही उच्छृंखलता के लिए रोकते हैं। कुबेर ने भीम को गन्धमादन के यक्ष–क्षेत्र में विचरण की अनुमति दे दी। युधिष्ठिर ने आष्टिरुेण आश्रम में ही रहने की अनुमति चाही, जिसे कुबेर ने स्वीकार कर लिया।

6–प्रच्छन्न

'महासमर' उपन्यास के छठे खण्ड 'प्रच्छन्न' में मानवीय मनोवृत्तियों को, जो संस्कृति और सभ्यता के आवरण में छिपी रहती हैं–उन्हें निरावृत किया गया है। काल–संवाह अनेक संवत्सरों की अविराम यात्रा कर चुका है किन्तु इस परिर्वतनशील विश्व में मानव की जैविकीय प्रवृत्तियां ज्यों की

त्यों है–सभ्यता से मात्र उनका दमन किया जा सका है। नरेन्द्र कोहली ने इस उपन्यास में यही दिखाना चाहा है कि मानव की प्रकृति प्रकृति के नियमों की भाँति ही अपरिर्वतनशील है। उसका ऊपरी आवरण कितना ही मिन्न क्यों न दिखाई देता हो, मानव की मनोभूमि आज भी वही है, जो लाखों वर्ष पूर्व थी।

दुर्योधन इसी प्रक्रिया का शिकार हुआ है। अपनी आवश्यकता भर पाकर वह संतुष्ट नहीं हुआ। दूसरों का सर्वस्व छीन कर भी वह शांत नही हुआ। पाण्डवों की पीड़ा उसके सुख की अनिवार्य शर्त थी। वंचित पाण्डवों को जलाने के लिए घोष–यात्रा के बहाने दुर्योधन पाण्डवों को जलाने राजसी ठाठ–वाट से इष्टमित्रों तथा रानियों दासियों सहित द्वैत वन की यात्रा की। मार्ग में चित्ररथ गन्धर्व से उसका संघर्ष हो गया। चित्ररथ ने उसे परास्त कर उसकी सारी सम्पत्ति छीन ली यहाँ तक कि कौरवों और उनके सामन्तों की पत्नियां भी छीन ली। युधिष्ठिर की आज्ञा पर अर्जुन ने युद्ध करके दुर्योधन को चित्ररथ से मुक्त कराया। पाण्डवों के इस उपकार से भी दुर्योधन संतुष्ट नहीं हुआ और लज्जा में प्रायोपवेश करके प्राण देने का निश्चय किया। कर्ण दुर्योधन को संतुष्ट करने के लिए दिग्विजय के लिए निकला और इतनी सम्पत्ति लेकर लौटा कि हस्तिनापुर का राजकोष समृद्ध हो गया।

द्वैत बन में ही एक ब्राह्मण की अरणि कोई महाभृग उठा ले गया।

अरणि छीनने के लिए पाँचों पाण्डव जंगल में बहुत दूर निकल गए, जहाँ प्यास के कारण एक–एक पाण्डव जाकर यक्ष के प्रश्नों का उत्तर न देने के कारण मारे गये। अंत में युधिष्ठिर ने यक्ष के प्रश्नों का उत्तर दिया। प्रसन्न होकर यक्ष ने उसके सारे भाइयों को जीवित कर दिया।

वनवास की बारह वर्ष की अवधि के बाद एक वर्ष के अज्ञातवास के लिये पाण्डव द्रौपदी समेत गुप्त रूप से मत्स्यराज विराट के नगर पहुँचे। युधिष्ठिर कंक नाम से राज विराट को सहयोग देने के लिए, भीम बल्लव नाम से रसोई बनाने के लिए, अर्जुन नपुंसक बृहन्नला बन कर अन्तःपुर की राजकुमारियों को नृत्य और संगीत की शिक्षा देने के लिए, नकुल ग्रन्थिक नाम से अश्वशाला सम्हालने के लिए, सहदेव तंतिपाल नाम से गोशाला का काम देखने के लिए और द्रौपदी सैरन्ध्री बन कर महारानी सुदेष्णा की श्रृंगार–परिचारिका का कार्य करने के लिये–इस प्रकार द्रौपदी समेत सभी पाण्डव विराटराज के यहाँ नियुक्त हो गये द्रौपदी के रूप पर आकर्षित होकर महाराज विराट के साले तथा राज्य के सेनापति कीचक ने द्रोपदी के साथ व्यभिचार करना चाहा। कीचक नृत्यशाला में भीम के द्वारा मारा गया।

कीचक वध की सूचना सर्वत्र फैल गई। दुर्योधन ने अनुमान लगाया कि भीम के अलावा कीचक का वध और कोई नहीं कर सक़ता। वह त्रिगर्तनरेश सुशर्मा तथा कुरु सेना के साथ विराट नगर में आक्रमण

करके उसके गोधन का अपहरण कराता है। राजकुमार उत्तर के सारथी के रूप में ब्रह्मन्नला जाती है। उत्तर के भयभीत होने पर वह स्वयं अर्जुन भीष्म तथा द्रोण से शालीन संघर्ष करता हुआ कर्ण समेत समस्त कुरुसेना को तहस–नहस कर देता है।

पाण्डवों का वास्तविक परिचय प्राप्त करके महाराज विराट बहुत लज्जित होते हैं। उन्हें कंक के साथ किया गया अपना दुर्व्यवहार बहुत लज्जाजनक लगता है। वह अपनी पुत्री राजकुमारी उत्तरा का निवाह अर्जुन के साथ करना चाहते हैं। अर्जुन इसे अनुचित मानते हुए अपने पुत्र अभिमन्यु से उत्तरा के विवाह का प्रस्ताव रखते हैं, जिसे स्वीकार कर लिया जाता है।

7–प्रत्यक्ष–

'महासमर' के सातवें खण्ड 'प्रत्यक्ष' में युद्ध के अद्योत्र और युद्ध के प्रथम चरण महाभारत के अनुसार 'भीष्मपर्व' का वृतांत है।

उपप्लव्य में विराट–पुत्री उत्तरा और सुभद्रापुत्र अभिमन्यु का विवाह होता है। विवाह के बहाने से ही पाण्डवों ने अपने समान्त हितैषियों को आमंत्रित करके इन्द्रप्रस्थ का अपना राज्याधिकार प्राप्त करने की मन्त्रणा की। कृष्ण का मत तो सदैव धर्म के पक्ष में ही रहता है, किन्तु विभिन्न कारणों से यदुवंश में मतैक्य नहीं रहता। दुर्योधन दाऊ बलभद्र का प्रिय शिष्य और कृष्ण पुत्र साम्ब का श्वसुर भी हैं अतः यदुकुल के अन्तःपुर में

दुर्योधन की शक्ति का प्रभाव उसकी पुत्री लक्ष्मण के माध्यम से हो गया था। परिणामतः महाभारत के महासमर के पूर्व ही कृष्ण सात्यकि के अतिरिक्त और किसी यदुवीर को पाण्डवों के समर्थन के पक्ष में युद्ध लड़वाने की स्थिति में नहीं रह गए थे। उपप्लव्य की सभा में बलराम जी ने स्पष्ट ही कह दिया था, कि इसमें दोष युधिष्ठिर का भी है। क्यों उन्होंने अमर्यादित द्यूत क्रीड़ा की।

दोनों पक्ष अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए सम्बन्धियों तथा तटस्थों के यहाँ सहायतार्थ दूत भेज रहे थे। द्वारका में दुर्योधन स्वयं सहायता लेने पहुचा। इसी समय अर्जुन भी द्वारका पहुँचे। कृष्ण ने कहा कि एक ओर निश्शस्त्र मैं और दूसरी ओर नारायणी सेना। अर्जुन ने निश्शस्त्र कृष्ण को लिया और दुर्योधन की इच्छानुसार ही नारायणी सेना उसे मिल गई।

कृष्ण द्वारा संधि का अन्तिम प्रयास किया गया, किन्तु दुर्योधन ने पाण्डवों को सुई की नोक भर (सूच्याग्र न केशवः) भूमि देने को राजी नहीं हुआ। उसने कृष्ण को बन्दी बनाने का भी प्रयास किया, किन्तु कृष्ण की सतर्कता और शक्ति के कारण वह सफल नहीं हुआ।

भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया। भीष्म के प्रधान सेनापतित्त्व में कौरव सेना अजेय थी। यद्यपि भीष्म तथा द्रोण दोनो ने किसी पाण्डव का बध न करने की प्रतिज्ञा की थी, किन्तु उनके दुर्द्धर्ष युद्ध से पाण्डव सेना का मनोवल टूट रहा था। नौ दिन के बाद कृष्ण की नीति के अनुसार पाण्डव

युद्धोपरान्त पितामह के शिविर में गये। पितामह ने कहा कि अब वे पाण्डवों की विजय के मार्ग को अवरुद्ध करके खड़े नहीं रहना चाहते। अर्जुन ने चकित होकर पूछा कि क्या आप युद्ध से निरास्त हो रहे हैं? पितामह ने कहा कि क्षत्रिय युद्ध से निरास्त नहीं होता। तो हमारी विजय कैसे होगी? पूछा अर्जुन ने। इसके उत्तर में पितामह ने कहा मेरी दो प्रतिज्ञायें युद्ध से पहले ही घोषित हुई थीं। उनके अनुसार मैं पाँचों पाण्डवों में से किसी का बध नहीं करूँगा तथा शिखण्ड़ी से युद्ध नहीं करूँगा। अब मेरे बध में बाधा कहा है। शिखण्डी सामने हो और कोई पाण्डव मेरे ऊपर प्रहार करे तो मेरा बध निश्चित है कि नहीं? अर्जुन ने कहा कि मैं आपका बध नहीं कर सकता तब पितामह बोले–"मत करना मेरा बध। मैं तो केवल इतना ही कह रहा हूँ कि मुझे युद्ध–क्षेत्र से हटा दो..............................मेरे सुख के लिए इतना तो तुम्हें करना ही चाहिए।"

8–निर्बन्ध

"महासमर' के आठवें और अंतिम खण्ड 'निर्बन्ध मे महाभारत पर आघृत कथा द्रोण पर्व में प्रारम्भ होकर शान्ति पर्व तक चलती है। यह हिन्दी का सर्वाधिक वृहदाकार उपन्यास 'बन्धन' से प्रारम्भ होकर 'निर्बन्ध' तक की यात्रा करता है। लेखक ने वस्तुविन्यास के प्रवाह में गहन चिन्तन तथा समसामयिकता के सन्दर्भ भी समायोजित किए हैं। बन्धन! किसका बन्धन? कैसा बन्धन जैसे प्रश्नों के उत्तर इस उपन्यास में अन्तर्निहित हैं।

वस्तुतः अमोघ परिणामी कर्म ही कर्मफल के रूप में कर्त्ता को अपने बन्धन में बाँधता है। यदि कर्म सकाम है तो धार्मिक तथा नैतिक कर्म होकर भी वह अन्ततः बन्धनकारी ही होता है। पितामह भीष्म पितृभक्ति तथा त्याग भी उनके लिए बन्धनकारी ही हुए।

निर्बन्ध के कथानक का अधिकांश भाग तो समर–क्षेत्र में सम्पन्न होता है। महाभारत की कथावस्तु के अनुसार ही द्रोण कौरव सेना के प्रध ाान सेनापति होते है। चक्रव्यूह में अभिमन्यु का बध होता है। अर्जुन अभिमन्यु की मृत्यु का प्रधान कारण जयद्रथ को मानकर दूसरे दिन सूर्यास्त तक जयद्रथ बध की प्रतिज्ञा करते हैं। अन्यथा की स्थिति में वह स्वयं को अग्नि में भस्म कर लेने की भी प्रतिज्ञा करते हैं। घोर युद्ध होता है। कृष्ण की चतुराई से अर्जुन जयद्रथ बध करने में सफल होते है। रात्रियुद्ध में कर्ण वैजयन्ती शक्ति से घटोत्कच का बध कर देता है। द्रोण दिव्यास्त्रों के प्रयोग से पाण्डव सेना को त्रस्त कर देते है। उनके द्वारा महाराज द्रुपद और मत्स्यराज विराट का बध हो चुका होता है। कृष्ण की नीति के अनुसार भीम एक अश्वत्थामा नाम के हाथी का बध करते हैं। प्रचार करवाया जाता है कि अश्वत्थामा मारा गया। द्रोण से जब युधिष्ठिर भी अश्वत्थामा की मृत्यु की पुष्टि करते है तो पुत्र शोक से हताश द्रोण शस्त्र–सम्पात कर रथ को पिछले हिस्से में जाकर ध्यानस्त हो जाते हैं। अर्जुन के रोकने के बाद भी इसी स्थिति में धृष्टद्युम्न आचार्य द्रोण के

जटाजूट पकड़ कर खड्ग से उनका सिर काट लेते हैं।

अश्वत्थामा अपने पिता का अपमान जनक बध सुनकर संयम खो बैठता है। वह नारायणास्त्र, अग्नेयास्त्र जैसे देवास्त्रों का प्रयोग करता है।

दुर्योधन अब कर्ण को अपना प्रधान सेनापति बनाता है। कर्ण अपने शौर्य से पाण्डव सेना को हताश कर देता है। कुन्ती के दिये वचन के कारण वह सुविधा होने पर भी युधिष्ठिर, भीम, नकुल तथा सहदेव का बध नहीं करता। अन्त में अर्जुन के साथ द्वैरथ रण करते हुए कृष्ण के कहने पर अर्जुन उसका मस्तक उस समय काट लेते है। जब वह निशस्त्र होकर भूमि में फंसे अपने रथ का पहिया निकाल रहा होता है। अब दुर्योधन शल्य को प्रधान बनाते है, जिसका बध युधिष्ठिर कर देते हैं।

स्वयं को अकेला पाकर दुर्योधन द्वैपावन सरोवर में जा छिपता है। युधिष्ठिर के ललकारने पर वह बाहर निकलता है। इसी समय दुर्योधन के पक्षधर बलराम जी आ जाते है। बलराम को देख दुर्योधन का मनोबल बढ़ जाता है भीम और दुर्योधन के बीच निर्णायक गदा–युद्ध की बात तय होती है।

महाभारत की कथावस्तु के अनुसार ही समन्त पंचक क्षेत्र में भीम तथा दुर्योधन का विकट गदा–युद्ध होता है गदायुद्ध के नियमानुसार कटि के नीचे प्रहार नहीं किया जाता, किन्तु अर्जुन के संकेत पर भीम गदा–प्रहार से दुर्योधन की दोनों जघाये तोड़ देता ह। क्रोध में भीम

तिरस्कार पूर्वक दुर्योधन के मस्तक पर पदाघात करता है।

मरणासन्न दुयोधन अश्वत्थामा को अन्तिम प्रधान सेनापति बनाता है। रात्रि में कृपाचार्य तथा कृतवर्मा के साथ अश्वत्थामा विजयोल्लास में निमग्न पाँचाल शिविर पर आक्रमण करता है। वह घृष्टद्युम्न को नृशंसता पूर्वक पीट–पीट कर मार डालता है। युधामन्यु और उत्तमौजा को भी बिना शस्त्र–प्रयोग के कण्ठ दबा कर मार डालता है। द्रौपदी के पाँचों पुत्रों का बध कर देता है। शिखण्डी के खण्ड–खण्ड कर देता है। अश्वत्थामा ने अपने क्रोध की अतिशयता में सम्पूर्ण पाँचाल स्कन्धावार का विनाश कर दिया।

द्रौपदी को अपने सारे पुत्रों के बध की सूचना मिली तो वह मर्माहित हो उठी। उसने युधिष्ठिर से कहा–''यदि आज आप रणभूमि में पराक्रम प्रकट कर उस पापाचारी अश्वत्थामा के प्राण नहीं हर लेते तो मैं यही अनशन कर अपने जीवन का अंत कर दूंगी।''

कृष्ण, अर्जुन और भीम ने वेदव्यास के आश्रम में गंगा की रेत में सन्यासियों के समूह के बीच अश्वत्थामा को बैठे देखा। भीम को अपनी ओर आवेश में आते देख, अश्वत्थामा ने मन को एकाग्र कर 'ब्रह्मशिर' नामक देवास्त्र का प्रयोग किया। कृष्ण के कहने पर अर्जुन ने भी गुरुद्रोण द्वारा प्रदत्त 'ब्रह्मशिर' देवास्त्र को प्रयोग किया।

''दोनों ब्रह्मशि' जैसे आकाश में स्थिर हो गए थे। वे निरन्तर अग्नि

उगल रहे थे। उनकी प्रक्रिया आरम्भ हो गयी थी, और वे लक्ष्य को साध
ा रहे थे। ऐसा लग रहा था जैसे संसार एक भंयकर अग्नि–सागर में स्नान करने की तैयारी में है। आकाश पर उल्कायें उड़ रही थीं और बज्रपात हो रहा था।"

विश्व के विध्वंस की प्रक्रिया देख कर नारद और व्यास ने अर्जुन और अश्वत्थामा से इन देवास्त्रों के उपसंहार की आज्ञा दी। अजितेन्द्रिय होने के कारण अश्वत्थामा देवास्त्र के प्रत्यावर्तन में समर्थ नहीं था, अतः उससे उसकी शक्ति सूक्ष्म करने के लिए कहा गया। अश्वत्थामा ने कहा तो भी यह अस्त्र पाण्डवों के गर्भ का नाश तो करेगी ही–

ऋषियों के कहने पर अश्वत्थामा का बध नहीं किया गया, केवल भीम ने अपने खड्ग से उसकी मणि काट ली।

हस्तिनापुर में क्रृद्ध घृतराष्ट्र अपने वंश के हत्यारे भीम को पीस डालने के लिए वात्सल्य के बहाने आगे बढ़ते हैं। दुर्योधन के गदायुद्ध के अभ्यास के लिए बनवाई गई भीम की लौह प्रतिमा को आलिंगनबद्ध करके उसे चूर–चूर कर देना चाहते हैं। इस प्रयास में घृतराष्ट्र के मूंह से रक्तवमन होने लगता है।

उपन्यास का अन्त युधिष्ठिर के प्रति कृष्ण के इस उद्बोधन से होता है–

"तो आप भी अपने अवसाद को तिलांजलि दीजिए, ग्लानि का

त्याग कीजिए। आपको अपार निर्माण करना है। इस युद्ध में हुए विनाश की क्षतिपूर्ति करनी है। इसलिए इस हताशा से स्वयं को बंधन मुक्त करता है। वह जीवन में अवसाद नहीं उत्सव लाता हैं।''

'महासमर' उपन्यास माला के माध्यम से नरेन्द्र कोहली ने महाभारत महाकाव्य से वस्तु विन्यास लेकर एक तरफ तो पौराणिक सन्दर्भों का पुनराख्यान किया है। महाभारत में वर्णित प्रमुख पात्र घटनाओं से सम्बन्धित स्थलों का महाकाव्यनुसार ही प्रस्तुतिकरण किया है। किन्तु महाकाव्यीय प्रसंगो से अति काल्पनिक अविश्वनीय चमत्मारिक तथा अतिरंजित किया है इस उपक्रम में वेदव्यास विरचित महाभारत महाकाव्य में वर्णित मूल कथावस्तु को समकालीन परिस्थितियों तथा युग सापेक्ष जीवन दर्शन और जीवन मूल्यों के अनुकूल प्रतिपादित किया है।

मूल कथा के अनुसार हस्तिनापुर नरेश महाराज शान्तनु यमुना तट परी एक विषाद कन्या पर आसक्त हो उनके पिता दर्शराज से मत्स्यगंधा अथवा सत्यवती से विवाह की कामना प्रकट करते है। किन्तु दासराज कदाचित् अपनी तरुणी पालिता पुत्री सत्यवती को एक बृद्ध सम्राट की वासना की वेदी पर चढ़ाना नहीं चाहता। वह शर्त रखता है कि यदि महाराज शान्तनु सत्यवती के पुत्र को ही अपना युवराज बनाने का वचन दे तभी वो सत्यवती का विवाह शान्तनु से कर सकेगा। चूःकि गंगा से उत्पन्न और सर्वगुण सम्पन्न देवब्रत पहले से ही युवराज पद के लिए

सुनिश्चित और घोषित राज कुमार था, अतः शान्तनु असफल तथा खाण्डित ह्रदय हस्तिनापुर लौट आये। इस सूचना से अवगत होकर देवब्रत दासराज के पास जाकर उसकी शर्तें मानने के उपक्रम में भीष्म प्रतिज्ञा करता है कि वह आजीवन ब्रह्मचारी रहेगा जिससे उसकी संतान से भी सत्यवती के पुत्र के युवराजत्व को किसी बाधा की सम्भावना नहीं रहेगी। तभी से देवव्रत का नाम भीष्म भी हो गया। सत्यवती से शान्तनु से दो पुत्र–चित्रांगद और विचित्रवीर्य उत्पन्न हुए। चित्रांगद युद्ध में गन्धर्वों द्वारा मारा गया और विचित्रवीर्य वासनाधिक के कारण अल्प आयु में ही काल कवलित हुआ। अब सत्यवती के कनीन पुत्र कृष्णद्वैकायन (व्यास) के द्वारा–सत्यवती के दिवंगत पुत्रों की पत्नियों अम्बिका और अम्बिालिका से नियोग पद्धति से क्रमशः अन्धे घृतराष्ट्र और पाण्डु रोगी पाण्डु को जन्म दिया। एक शूद्र दासी से नियोग पद्धति से ही व्यास के माध्यम से विदुर का भी जन्म हुआ। घृतराष्ट्र की पत्नि गंधार देश की राजकुमारी सुबल पुत्री गंधारी के गर्भ से दुर्योधन आदि 100 पुत्रों तथा एक पुत्री दुशला का जन्म हुआ। पाण्डु की दो पत्नियों कुन्ती और माद्री से पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। कुन्ती के तीन युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा माद्री के दो नकुल सहदेव उत्पन्न हुए। पाण्डु के परलोक वास के बाद घृतराष्ट्र सिहांसनारुण हुए और पुत्र मोह के कारण वह दुर्योधन को युवराज बनाने के लिए साम, दाम, दण्ड, भेद का प्रयोकग करने लगे। सत्ता प्राप्ति का अन्तःसघर्ष प्रारम्भ हो गया। पाण्डवों को रास्ते से हटाने

के लिए षड़यंत्र होते रहे। भीष्म के हस्ताक्षेप से युधिष्ठिर को युवराज बनाया गया, तब लक्षागृह में कुन्ती समेत पाँचों पाण्डु पुत्रों को भस्म कर देने को षड्यन्त्र रचा गया। पाण्डव किसी प्रकार से बच निकले इसी दौरान ब्राह्मण वेश में द्रुपद को स्वयंवर की शर्तों का पालन करके अर्जुन ने अपनी पत्नी बना लिया जो बाद में पाँचों पाण्डवों की पत्नी बनी। अब जब पाण्डव हस्तिनापुर आये तो राज्य का विभााजन कर दिया गया। दुर्योधन हस्तिनापुर का युवराज बना और यमुना पार खण्डप्रस्थ अरण्य को जलाकर पाण्डवों ने वहाँ अपनी राजधानी इन्द्रप्रस्थ स्थापित की। पाण्डवों ने अपना राज्य विस्तार किया और उस समय के समस्त नरेशों को विजित करके राजसूर्य यज्ञ किया। पाण्डवों के पास अनन्त वैभव देखकर दुर्योधन अत्याधिक ईष्यालु हो उठा और द्वित ग्रह में उस युग के प्रख्यात कपट कैतव अपने मामा महारानी गंधारी के भाई शकुनि के सहयोग से जुए में पाण्डवों की सारी सम्पत्ति, सारा सामराज्य पाँचों पाण्डवों तथा उनकी पट्महिषी द्रौपदी को भी जीत लिया। इसी सभा में भीष्म, द्रोण, और कृपाचार्य की उपस्थिति में दुर्योधन के आदेश पर दुशासन ने एक वस्त्रा पाण्डवों की पट्टमहिषी द्रौपदी को निर्वस्त्र करने का प्रयास किया। महारानी गंधारी के हस्ताक्षेप से घृतराष्ट्र पाण्डवों को उनकी पूरी सम्पत्ति और राज्य वापिसकर दिया किन्तु शकुनि द्वैत छल से पाण्डवों का सबकुछ जीत लिया और उन्हें बारह वर्ष में रहने के लिए विवश किया। बारह वर्ष बाद पाण्डव वापस लौटे किन्तु दुर्योधन ने उनके

राज्य को लौटाने से साफ इन्कार कर दिया। कृष्ण की सन्धि चेष्टा व्यर्थ हो गयी। दुष्ट दुर्योधन ने पाण्डवों को पाँच गाँव माँगने पर सुई की नोक के बराबर भी भूमि देने से इन्कार कर दिया। अब युद्ध निशिचित था। ग्यारह अक्षुणि सेनाएं कौरव पक्ष में तथा सात अक्षुणि सेनाएं कौरव पक्ष में तथा सात अक्षुणि सेनाएं पाण्डव पक्ष में एकत्र हुई। कुरुक्षेत्र में महासमर प्रारम्भ हुआ। कौरव पा की तरफ से प्रधान सेनापति भीष्म पितामह नियुक्ति हुए पाण्डु पक्ष के प्रधान सेनापति घृष्टघुम्ब नियुक्ति हुए दस दिन तक भीष्म पितामह ने पाण्डव पक्ष को विजयी नहीं होने दिया। कृष्ण की नीति के अन्तर्गत शिखड़ी को आगे करके अर्जुन द्वारा पितामह को सरसैय्या पर पहुँचाकर उन्हें समर से निरस्त कर दिया गया। कौरवों के दूसरे सेनापति गुरुद्रोणाचार्य नियुक्ति हुए। उन्होंने पाँच दिन तक पाण्डवों का विजय अभियान रोके रक्खा उनके सेनापतित्व में ही अभिमन्यु महाराजा विराट तथा महाराज द्रुपद जैसे योद्धाओं का बध हुआ। कृष्ण ने सत्य की नवीन परिभाषा गढ़ते हुए युधिष्ठिर से कहा कि जो कल्याणकारी है वही सत्य है इस समय अधर्म और अन्याय के पक्ष से युद्ध करते हुए। गुरु द्रोणाचार्य का बध परमधर्म है और इस धर्म की प्रतिष्ठा के लिए गुरु द्रोण का शास्त्रास्त्र सम्पात अपरिहार्य है। वह पुत्र मोह के कारण ही कुरु राज्य के आश्रय में आये। यदि कोई उन्हें विश्वास दिला दे कि उनका पुत्र अश्वस्थामा मारा गया है तो वह तत्काल युद्ध से उपराम हो जायेगे और धर्मराज युधिष्ठिर तुम ही वह विश्वनीय व्यक्ति हो जो अश्वस्थामा के

जीवित रहते हुए भी गुरु द्रोण को उसके निधन का विश्वास दिला सकते हो। कल्याण प्रद होने के कारण यह असत्य परम सत्य है। और इस प्रकार युद्ध से उपराम गुरु द्रोण का शीश पाण्डव नेसा के प्रधान सेनापति घृष्टद्युम्ब ने अपने खग से काट दिया। अब कौरव सेना का तीसरा प्रधान सेनापति कर्ण मनोनीत हुए। अर्जुन के द्वैरथ युद्ध करता हुए कर्ण का रथ कीचड़ में फस गया और कृष्ण के प्रोत्साहन पर अर्जुन ने रथ का पहिये निकालते अस्त्र शस्त्र हीन कर्ण का बध कर दिया।

युद्ध के अठारवें दिन कुरुसेना के प्रधान सेनापति भद्र राज शल्य बनाये गये और उनके निधन के उपरान्त एक प्रकार से यह युद्ध पाण्डवों के पक्ष में समाप्त हो चुका था किन्तु गदा युद्ध के नियम का उल्लंघन करके कृष्ण के संकेतपर भीम ने दुर्योधन की जांध पर प्रहार करके उसे धरासाही कर दिया। यह युद्ध यही समाप्त हो गया होता किन्तु कुरुक्षेत्र के समंत पंचक स्थान पर मरणासन्न दुर्योधन के पास कृपाचार्य, कृतवर्मा के साथ द्रोणपुत्र अश्वस्थामा आया और स्वयं को प्रधान सेनापति बनाने का निवेदन किया दुर्योधन ने अपने रक्त में मिट्टी सानकर अश्वस्थामा के तिलक लगा कर कुरुसेना का प्रधान सेनापति नियुक्ति किया। अश्वस्थामा ने रात्रि वेला में पाण्डव शिविर में आक्रमण किया और पहले विना किसी अस्त्र–शस्त्र प्रयोग के पाण्डव सेना के प्रधान सेनापति घृष्टद्युम्ब के लातो घूसों के प्रहार से मार डाला। बाद में शिखड़ी तथा अन्य पांचाल सेनिको का बध किया। उनके हाथों द्रौपदी के पाँचो महारथी

पुत्र मारे गये। और तब ये सूचना दुर्योधन को सुनाकर अश्वस्थामा गंगा तट पर स्थित वेदव्यास आश्रम में सन्यासियों के बीच पहुँच गया। इधर द्रौपदी के हठ पर कृष्ण के साथ अर्जुन और भीम अश्वस्थामा को दण्ड देने व्यास आश्रम पहुँचे तो अश्वस्थामा ने ब्रह्मसिर नामक ब्रह्मस्त्र का प्रयोग कर दिया। अर्जुन के पास ब्रह्मसिर ब्रह्मास्त्र के प्रयोग के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं थां दोनों ब्रह्मसिर ब्रह्मास्त्र के सघारक किरण से सृष्टि नाश का संकट उत्पन्न हो गया तब वेदव्यास आदि ऋषियों के आग्रह पर अर्जुन ने अपना ब्रह्मास्त्र वापस कर लिया किन्तु जितेन्द्रिय न होने के कारण अश्वस्थामा ऐसा नहीं कर सकता था। तब ऋषियों के परामर्श से समस्त पाण्डवों के विनाश के लिए चलाए गये ब्रह्मास्त्र को पाण्डवों में एक मात्र गर्भिणी अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के गर्भ के विनाश के लिए उसे लक्ष्य परिवर्तित कर दिया।

इस प्रकार हम देखते है कि नरेन्द्र कोहली ने महासमर उपन्यास का वस्तु विन्यास वही रक्खा है जो महाभारत के महाकाव्य का वस्तु विन्यास है। किन्तु समकालीन प्रासंगिकता की दृष्टि से उसमें अनेक परिवर्तन है। जैसे– युवराज पद का त्याग करके अपने पिता का विवाह सत्यवती से करवाना महाभारत महाकाव्य में आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित है किन्तु नरेन्द्र कोहली का 'महासमर' इसे अनुचित मानता है। उसका अभिमत है कि जिस आयु में देवब्रत को अपने निर्सघ सिद्ध अभिप्रेत विवाह का प्रयास करना चाहिए था उन्होंने अपने बूढे पिता की विलास

प्रेरित अभिप्सा की पूर्ति के लिए स्वयं को युवराज पद से अपदस्त कर लिया। हस्तिनापुर सिंहासन उचित उत्तराधिकारी से वंचित हो गया और उस पर वे लोग बैठे जो न प्रजा का हित साधन सम्पन्न कर सके और न ही परिवारिक व्यवस्था की रक्षा। परिणाम के रूप में महाभारत जैसा 'महासमर' अनिवार्य हो उठा। लेखक के अनुसार पितामह अन्तिम समय में अपने व्यक्तिवादी निर्णयों की निरर्थकता से परिचित हो चुके थे तभी उन्होंने कुरु सेना का प्रधान सेनापति होते हुए भी दो प्रतिज्ञाये की थी। कि वे किसी भी पाण्डव का वध नहीं करेंगे दूसरी वह शिखड़ी से युद्ध नहीं करेगे। उनका आशय स्पष्ट था कि शिखड़ी को आगे करके उन्हें पहले दिन ही युद्ध से निरस्त किया जा सकता था। द्वन्द्व में रहना ही नरक और द्वन्द्व रहित हो जाना ही स्वर्ग निवास हैं पितामह अब तक अपने द्वन्द्वों से मुक्ति पा चुके थे और कुरुराज सिंहासन की सुरक्षा और पाण्डवों के प्रेम से उभरकर वे सरसैय्या पर पहुँचकर निर्द्वन्द्व हो गये।

जहाँ कही भ चमत्कारिक अथवा तर्कहीन प्रस्तुतियाँ महाकाव्यीय आधार पर परिदृष्ट हुई उपन्यासकार ने अपने मौलिक मेधा एवं लेखकीय स्वतंत्रता के आधार पर परिवर्तन किए। ऐसी घटनाओं को विज्ञान समस्त तर्क सम्मत तथा समकाल के लिए प्रासंगिक परिवर्तन किये। युद्ध में शक्तिशाली दिव्यास्त्रों का प्रयोग हुआ साम्प्रतिक परमाणु शक्ति युक्त अस्त्रों के समतुल्य ही वे अस्त्र थे। द्रोण वध के उपरान्त जब अश्वस्थामा ने नारायण अस्त्र का प्रयोग किया तो उपन्यासकार के इस अस्त्र की

संघार क्षमता का सम्बन्ध मनोभावनाओं के अनुसार विभक्षित किया। इस बात को कृष्ण ने समझ लिया और मन से हिंसा के भावों को निकाल कर सभी अस्त्र–शस्त्र फेक देने के लिए कहा। हिंसक मनोवृत्तियों के विरुद्ध संघार शक्ति वाला नारायण अस्त्र हिंसा से विरक्त मनोदशा और शस्त्रास्त्र त्याग देने वाले योद्धाओं के विरुद्ध शांत होता गया किन्तु भीम ने मन से हिंसा त्यागी थी न शास्त्रास्त्र सम्पात किया था अतः मनौवैज्ञानिक प्रणाली से संचालित नारायण से अस्त्र भीम सेन के विनाश के लिए उद्रग हो उठा।

नरेन्द्र कोहली ने पौराणिक सन्दर्भों के आधार पर समसामयिक समस्याओं की समीक्षा तथा उनके समाधान का प्रयास किया है। यद्यपि लेखक ने पौराणिक कथावस्तु का सहारा लिया है, किन्तु सोच तथा संवेदना के धरातल पर युगीन परिवेश से प्रभावित कृतिक पौराणिकता के फ्रेम में ऐसा दर्पण संयोजित करता है, जिसमें वर्तमान युग का सांगोपांग चित्र दिखाई पड़ता है। महाभारत का आधार लिए हुए भी यह मौलिक कृति हैं। महाभारत के पात्रों, घटनाओं तथा परिस्थितियों को प्रोढ़ चिन्तन तथा मनोवैज्ञानिक प्रविधियों से संभाव्य प्रमाणिकता प्रदान कर लेखक ने अपनी रचनाधर्मिता के साथ न्याय किया है।

इस उपन्यास के प्रथम खण्ड 'बन्धन' में ही शान्तनु, देवव्रत तथा

सत्यवती के कर्म–चक्र ने हस्तिनापुर की नियति को बन्धन से जकड़ दिया था। निषादकन्या मत्स्यगंधा पर आसक्त शान्तनु ने उससे विवाह करना चाहा। मस्त्यगंधा के पालक पिता दाशराज ने विवाह की शर्त रखी की सत्यवती का पुत्र ही हस्तिनापुर–साम्राज्य का उत्तराधिकारी होगा। शान्तनु की पूर्व पत्नी गंगा से देवव्रत नाम का शिष्ट तथा प्रतापी युवराज था। वे दाशराज की शर्त न मान सके और कामाहत निराशा से भग्न हृदय हस्तिनापुर लौटे। युवराज देवव्रत को जब यह वृतान्त ज्ञात हुआ तो वह दाशराज के पास जाकर अपने पिता के लिए सत्यवती की माँग की। देवव्रत ने बताया कि मुझे तुम्हारी शर्त स्वीकार है। मैं हस्तिनापुर के राजसिंहासन पर कभी नहीं बैठूँगा। सत्यवती का पुत्र ही युवराज होगा। दाशराज ने चततुराई से कहा कि राजकुमार आप तो यह शर्त मान रहे हैं किन्तु तुम्हारे पुत्र भविष्य में सत्यवती के पुत्र से राज्यसिंहान के लिए कलह कर सकते हैं। देवव्रत ने प्रतिज्ञा की कि मैं आजीवन अविवाहित रह कर ब्रह्मचर्य का व्रत–निर्वाह करूँगा। जब मेरे सन्तान ही न होगी तो सत्यवती के पुत्र से संघर्ष कौन करेगा। सत्यवती हस्तिनापुर की पटमहिषी बन गई। बृद्ध शान्तनु के सत्यवती से दो पुत्र हुये। सत्यवती ईष्यालु, अहंकारी तथा भीष्म से द्वेष रखने वाली महिला थी। उसका बड़ा पुत्र विचित्र वीर्य गंधर्व–युद्ध में मारा गया। भीष्म रुग्ण विचित्र वीर्य के लिए काशिराज की तीन पुत्रियों का अपने पुरुषार्थ से हरण कर लाये। बड़ी राजकुमारी अम्बा तो पहले शौभ नरेश शाल्व के पास गई, किन्तु शाल्व ने

उसे स्वीकार नहीं किया तब वह अपने हरणकर्त्ता भीष्म से विवाह करने पर अड़ गई। भीष्म ने अपने गुरु परशुराम की भी आज्ञा नहीं मानी और अपने प्रण पर डटे रहे। अम्बिका तथा अम्वालिका का विवाह रुग्ण विवित्र वीर्य से कर दिया गया। अति कामाचार से विचित्रवीर्य की निस्संतान मृत्यु हो गई। अब सत्यवती को हस्तिनापुर राजसिंहासन के उत्तराधिकारी की चिन्ता हुई। भीष्म तो अपना ब्रह्मचर्य भंग नहीं कर सकते थे अतः सत्यवती ने भीष्म से कह कर शान्तनु से विवाह पूर्व पराशर ऋषि द्वारा उत्पन्न कानीन पुत्र कृष्ण–द्वैपायन (वेद व्यास) को विचित्रवीर्य के क्षेत्र से नियोग–पद्धति से क्षेत्रज संतान उत्पन्न करने के लिए बुलवाया। अम्बिका से अंधा घृतराष्ट्र, अम्बिका से रूग्ण तथा नपुंसक पाण्डु तथा एक दासी से विदूरते चेहरे का किन्तु नीतिज्ञ विदुर का जन्म हुआ। अंधे घृटराष्ट्र के लिए भीष्म हस्तिनापुर की अजेय सैनिक शक्ति और अपने व्यक्तिगत शौर्य के आतंक से गांधार–नरेश सुबल को विवश कर दिया कि वह अपनी सुन्दर और तरुणी राजकुमारी का विवाह अंधे घृतराष्ट्र से कर दें। लोक–लाज से सुबल गांधार में यह विवाह नहीं कर सके, उन्होंने अपने पुत्र शकुनि के साथ गांधारी को हस्तिनापुर भेज दिया, जहाँ उसका घृटराष्ट्र से विवाह हो गया। असंतुष्ट होकर अथवा पति का अनुकरण करती हुई गांधारी ने भी अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली। पाण्डु का विवाह कुन्तिभोज की पालिका पुत्री कुन्ती से हो चुका था। नपुंसकता के कारण पाण्डु राजमहलों से भाग कर सैनिक अभियान में लगा रहने लगा

तो सत्यवती ने सोचा की बहू में कोई खोट है। भीष्म से कहकर भद्रराज शल्य की बहन भाद्री से शुल्क देकर पाण्डु का दूसरा विवाह कराया गया।

कर्म की सत्ता अमोघ परिणामी होती है। पितृभूमि अथवा व्यक्तिगत त्याग यदि समाज का अहित कर रहा हो तो ऐसी पितृभूमि अथवा त्याग उचित नहीं होता। यदि हस्तिनापुर के राज सिंहासन पर देवव्रत भीष्म जैसा समर्थ, और उदात्त व्यक्ति बैठता, तो देश भविष्य में होने वाले महाभारत जैसे सर्वग्रासी समर से बच जाता। किन्तु भीष्म ने अनजाने ही और सत्यवती ने अपनी अपात्रता से हस्तिनापुर को भविष्य में घटित होने जा रहे विषाक्त कर्म फलों से निवद्ध कर दिया था। कृष्ण ने युधिष्ठिर से ठीक ही कहा–

"कृष्ण बोले किन्तु जिस समय निसर्ग–नियम से उन्हें स्वयं विवाह करना चाहिए था, उस समय उन्होंने युवती स्त्री से अपने बृद्ध पिता का विवाह कराया। उस क्षण से कुरु–कुल में सब अस्त–व्यस्त हो गया। उन्होंने पितृ–भक्ति की तपस्या को अपने जीवन का लक्ष्य मान लिया। बृद्ध एकांगी सत्य था; जीवन का समग्र सत्य नहीं। वह उनके व्यक्तिगत उत्थान के लिए साधना हो सकती है; किन्तु समाज का सम्यक् धर्म नहीं। एकांगी धर्म, समग्र धर्म नहीं होता। यदि व्यक्ति सावधान न हो तो, एकांगी धर्म अनेक बार अधर्म और पाप का उत्स बन जाता है। पितामह ने अपनी व्यक्तिगत साधना के सम्मुख लोकधर्म तथा राजधर्म की सर्वथा अवहेलना

की।........उनका सारा प्रयत्न शासन–तन्त्र की रक्षा के लिए होगा, उसके लिए अपने प्राण दे देंगे, चाहे शासन–तन्त्र कितना ही अत्याचारी क्यों न हो।"[१]

दूत–सभा में युधिष्ठिर धर्म के नाम पर स्वयं तथा अपनी पट्टमहिषी द्रौपदी पर अत्याचार सहते रहे। युधिष्ठिर के इस कर्म–बन्धन को कृष्ण अधर्म निरूपित करते हैं–

"घृतराष्ट्र न मनमाने नियमो में बांधकर आपका सर्वस्व हरण कर लिया और कृष्णा का सार्वजनिक रूप से अपमान किया। आप यह सब देखते रहे और समझते रहे कि आप धर्म की रक्षा कर रहे हैं, अतः धर्म आपकी रक्षा करेगा। नहीं धर्मराज! यही धर्म नहीं है। मैं वहाँ उपस्थित होता दूत को रोक देता, चाहे मुझे बल प्रयोग ही क्यों न करना पड़ता। वे न मानते तो मैं सारे धार्तराष्ट्रों का बध कर देता। इस प्रकार अपमानित और वंचित होना धर्म नहीं है।"

कृष्ण धर्म का मर्म समझाते हुए युधिष्ठिर से कहते हैं–

"किन्तु आप दोनों ने ही धर्म के मर्म को नहीं पहचाना–कृष्ण बाले धर्म का एक मार्ग तपस्या और त्याग भी है; किन्तु तपस्या का परिणाम भी सामाजिक हित में होना चाहिए। आप अपने धर्म पर टिके रहें और आपके सम्मुख एक स्त्री का अपमान होता रहे–यह समाज–धर्म नहीं हो सकता। आपको अपने धर्म में से व्यक्ति–तत्त्व निकाल कर समष्टि–तत्त्व डालना होगा, उसमें जन–हित का योग भी करना होगा; अन्यथा वह आत्म–दाह

हो जायेगा।"[3]

अन्त में युधिष्ठिर की प्रार्थना पर कृष्ण धर्म का मर्म समझाते हैं–

"अनासक्त विवेक है धर्म! अनासक्ति! मोह का पूर्ण त्याग! मोह किसी के प्रति नहीं होना चाहिए– न जाति के प्रति न सम्बन्ध के प्रति, न सिद्धान्त के प्रति! धर्म सदेच्छा और सद्परिणाम में है। यदि परिणाम् शुभ नहीं है, तो व्यक्ति को अत्यन्त निर्मम होकर अपनी धर्म–व्यवस्था, समाज–व्यवस्था और शासन व्यवस्था को परखना चाहिए।"[4]

प्रथम खण्ड 'बन्धन' में सत्यवती के हस्तिनापुर आने तथा शान्तनु, सत्यवती तथा भीष्म के कर्म बन्धनों में वंधे हस्तिनापुर के विनाश में प्रवेश करने की सम्भावना से अपने कनीन पुत्र वेदव्यास के समझाने पर उसके साथ अपनी दोनों विधवा पुत्र बधुओं–अम्बिका, अम्बालिका के साथ व्यास–आश्रम जाने तक की कथा है। दूसरे भाग 'अधिकार' में अधिकारों के लिए हस्तिनापुर में निरन्तर षड्यन्त्र चलते रहते हैं। राजनीति के अधिकार प्राप्त करने के लिए होने वाली हिंसा तथा सत्ता के भास के बोझ में दबे हुए असहाय लोगों की व्यथा की कथा समानान्तर चलती है। 'कर्म', 'धर्म', 'अन्तराल', 'प्रच्छन्न', 'प्रत्यक्ष' खण्डों की यात्रा करती हुई आधुनिक सन्दर्भ और मनोवैज्ञानिक चिन्तन लिए महाभारत की पौराणिक कथा 'निर्बन्ध' तक की यात्रा में वाह्य कथानक पर आधारित घटनाओं के माध्यम से मानव के अन्तर्जगत में होने वाले धर्म और अधर्म, सत्य और असत्य, न्याय और अन्याय, पाप और पुण्य, बन्धन और मुक्ति का द्वंद्व मनोवैज्ञानिकता,

नैतिकता तथा चिन्तन के धरातल पर प्रस्तुत किया गया है।

युधिष्ठिर से पितामह कहे शब्दों में उनके अन्तर्जगत् का बन्धन कारी द्वंद्व होता है–

" युधिष्ठिर! सोचो मेरे पुत्र....................इसी प्रकार मैं भी सदा दोनो पक्षों का हित चाहने के कारण, दोनों ही ओर से कष्ट पाता रहा हूँ। दोनों की रक्षा का प्रयत्न करता रहा हूँ। परिणाम तुम्हारे सामने है।"[5]

उपन्यास का अन्त युधिष्ठिर से कहे गए कृष्ण के उद्बोधन से होता है, जिसमें धर्म का बन्धनकारी नहीं–मुक्तिकारी निष्कर्ष है–

"तो आप भी अपने अवसाद को तिलांजलि दीजिए, ग्लानि का त्याग कीजिए......... आपको अपार निर्माण करना है। इस युद्ध में हुए विनाश की क्षतिपूर्ति करनी है। इसीलिए इस हताशाा से स्वयं को बन्धन–मुक्ति करता है। वह जीवन में अववाद नहीं उत्सव लाता है।...... .....पितामह को देखें ....पितामह अधर्म के पक्ष से लड़े, तो भी उनके मन में ग्लानि नहीं, क्योंकि उन्होंने जिसे अपना धर्म समझा, वही किया; जब स्वयं को असमर्थ और अनावश्यक पाया, स्वयं को समर भूमि से हटा लेने का प्रबन्ध कर लिया। आजीवन स्वयं को बांधे रखने वाले उस महापुरुष न इस समय स्वेच्छा से स्वयं को मुक्त कर लिया। यही इच्छामुक्ति है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1— अस्यां जायेतयः पुत्रः स राजा पृथिवी पते
त्वदूध्वमभिषेक्त तत्यों नान्यः कश्चन पार्थिव
(पृथ्वीपते! इसके गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न हो, आपके बाद उसी का राजा के पद पर अभिषेक किया जाय अन्य किसी राजकुमार का नहीं।)
महाभारत 57 / 308 / आदिपर्व

2— सददर्श तदा कन्यां दशानां देवरूपिणीम्
तामपृच्छत स दृष्टैव कन्यामसित लोचनाम्
(घूमते—घूमते उन्होने मल्लाहों की एक कन्या देखी जो देवांगनाओं के समान रूपवती थी। श्याम नेत्रो वाली उस कन्या को देखते ही राजा ने पूछा)
महाभारत 47 / 308 / आदिपर्व

3— बन्धन—नरेन्द्र कोहली पृ0 37

4— भीम जैसे हुसल का बोला'—'उसने मुझसे यहा कि उद्यान उसके और उसके भाइयों के खेलने के लिए है। मैं वहाँ नहीं खेल सकता।
अधिकार— नरेन्द्र कोहली पृ0 13

5— ''मर्यादा! ऊंह! दासी और भी ऐंठ कर बोली। जाने क्या समझते है। स्वयं को! कहाँ से आकर गले पड़ गए, स्वयं को स्वामी ही समझने लग गए। राज प्रासाद की सारी मार्यादाएं ही नष्ट हो गई.....................मैं कहे देती हूँ, अपने उस मोटे लड़के को समझा लो। अब यदि कभी उसने मरे सुशासन पर हाथ उठाया, तो मैं उसका सिर फोड़ दूँगी।''
अधिकार —नरेन्द्र कोहली पृ0 17

6— ''लाओ! मुझे दो अपना यह धनुष!'' द्रोण ने युधिष्ठिर से उसका धनुष ले लिया.. ....उन्होंने अर्जुन के कंधों पर टंगा सींक बाणों से भरा तूणीर भी ले लिया।............. उन्होंने लोट फलक वाला पहला सींक बाण खींच मारा। बाण जाकर कूप के तल में पड़े बीटा मे सीधा चुभ गया। द्रोण ने दूसरा बाण पहले में चुभा दिया और तीसरा दूसरे में राजकुमार खड़े आश्चर्य से उस अज्ञात व्यक्ति का कौशल देख रहे थे, और द्रोण एक में दूसरा बाण चुभाते हुए जैसे बाणों की एक रस्सी बटते जा रहे थे।
अधिकार —नरेन्द्र कोहली पृ0 142

7— ''और यदि आप एक दायित्त्व स्वीकार करें'' भीष्म अपने पिछले वाक्य की निरन्तरता में ही बोले 'तो आपकी आजीविका की भी व्यवस्था हो जायेगी............आप कौरव राजकुमारों को शास्त्रास्त्रों और युद्ध विद्या में पारंगत कर दें।''
अधिकार—नरेन्द्र कोहली पृ0 145

8— आर्यक के चेहरे पर अवासद से भीगी एक मुस्कान उभरी।.....................उसने रुक कर भीम को देखा, ''किन्तु पुत्र! उन लोगों की खोज करना, जिन्होंने तुम्हें विष देकर तुम्हारी हत्या करने का प्रयत्न किया है, और उनसे सावधान रहना, सप—दंश ने यदि तुम्हारे शरीर के विष का प्रतिकार न किया होता तो तुम कदापि इस समय तक जीवित न रहते।''
अधिकार —नरेन्द्र कोहली पृ0 97

9— तुमने स्वयं को भार्गव गोत्र का ब्राह्मण बताया—स्वयं को ब्राह्मण बनाने का कोई

प्रयत्न नहीं किया। तुमने साधना और तपस्या का मार्ग छोड़कर छल और मिथ्याकथन का मार्ग अपनाया..............तो क्यों चाहिए तुम्हें ब्राह्मस्त्र?................................उचित तो होता कि अपने परशु के एक ही प्रहार से तुम्हारा मुंड, रुंड से पृथक कर देता ताकि इस शुद्ध ज्ञान का दुरुपोग न होता..............पर अब इस आश्रम में तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं! तुम इसी क्षण यहाँ से विदा हो जाओ। ऐसा न हो कि मेरा मन कुछ कठोर हो जाए और मेरा निश्चय बदल जाए............ ।''

अधिकार–नरेन्द्र कोहली पृ0 240–41

10– एक लव्य ने तीक्ष्ण फलक का एक बाण उठाया ओर उसे बायें हाथ में लेकर दायें हाथ का अंगूठा उसके मूल से पृथक कर दिया। रक्त रंजित उस मांस पिण्ड को जल से धो स्वच्छ किया और अंजलि में सुसज्जित कर गुरु क ओर बढा दिया।

अधिकार–नरेन्द्र कोहली पृ0 209

11– ''मैं हूँ मैं कर्ण'' कर्ण उच्च्य स्वर में बोला, ''आज आपके सामने जो कुछ अर्जुन ने किया है, वह मैं सारा चमत्कार दिखा सकता हूँ..............उससे श्रेष्ठ विद्या का भी प्रदर्शन कर सकता हूँ.................मैं आचार्य द्रोण के सर्वाधिक प्रिय शिष्य अर्जुन का द्वन्द्व युद्ध कि लिये आह्वान करता हूँ।''

अधिकार–नरेन्द्र कोहली पृ0 267

12– मुहूर्त देखकर कृपाचार्य की देख रेख में पुरोहितों ने मंत्र–पाठ आरम्भ किया। युधिष्ठिर को सिंहासन पर बैठा कर, अनेक नदियों और तीर्थों के जल से उसका अभिषेक किया गया और स्वयं घृतराष्ट्र ने अपने हाथों से युधिष्ठिर के सिर पर किरीट रखा। युधिष्ठिर ने गुरुजनों के चरण स्पर्श कर उनकी वन्दना की और उनसे आशीर्वाद पाकर अपने स्थान पर जा बैठा।

13– ''और मैं पूछ सकता हूँ कि युवराज उस अभियान को उचित क्यों नहीं समझते?'' घृतराष्ट्र के स्वर में पूर्णतः अमित्र भाव था।

''क्यों कि उस अभियान के मूल में धर्म नहीं प्रति हिंसा थी, और प्रतिहिंसा का जन्म नृशंसता से होता है।''...........................युधिष्ठिर ने कहा'' प्रतिशोध और प्रतिहिंसा की भावना प्रतिक्रिया की अंतहीन शृंखला को जन्म देती है।''

कर्म नरेन्द्र कोहली पृ0 3

14– युधिष्ठिर हिडिम्बा की ओर मुड़ा ''देखो सालकंटकी! तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करने के लिए हम तुम्हें अपने भाई का संग करने की अनुमति दे सकते हैं, किन्तु उसके लिए तुम्हें हमारे कुछ नियमों को स्वीकार करना होगा।''

कर्म –नरेन्द्र कोहली पृ0 155

15– कर्म –नरेन्द्र कोहली पृ0 297

16– कर्म –नरेन्द्र कोहली पृ0 300

17– कर्म –नरेन्द्र कोहली पृ0 300

18– कर्म –नरेन्द्र कोहली पृ0 300–01

19– कर्म –नरेन्द्र कोहली पृ0 311–12

20– कर्म –नरेन्द्र कोहली पृ0 341

21— कर्म —नरेन्द्र कोहली पृ0 392
22— धर्म —नरेन्द्र कोहली पृ0 9
23— धर्म —नरेन्द्र कोहली पृ0 65
24— धर्म —नरेन्द्र कोहली पृ0 66—67
25— धर्म —नरेन्द्र कोहली पृ0 85
26— धर्म —नरेन्द्र कोहली पृ0 101
27— धर्म —नरेन्द्र कोहली पृ0 257—258
28— धर्म —नरेन्द्र कोहली पृ0 275
29— धर्म —नरेन्द्र कोहली पृ0 275
30— धर्म —नरेन्द्र कोहली पृ0 342
31— धर्म —नरेन्द्र कोहली पृ0 409
32— धर्म —नरेन्द्र कोहली पृ0 407
33— धर्म —नरेन्द्र कोहली पृ0 407
34— धर्म —नरेन्द्र कोहली पृ0 411
35— धर्म —नरेन्द्र कोहली पृ0 411
36— धर्म —नरेन्द्र कोहली पृ0 411
37— धर्म —नरेन्द्र कोहली पृ0 415
38— अन्तराल —नरेन्द्र कोहली पृ0 12—13
39— अन्तराल —नरेन्द्र कोहली पृ0 103
40— अन्तराल —नरेन्द्र कोहली पृ0 94
41— अन्तराल —नरेन्द्र कोहली पृ0 95
42— अन्तराल —नरेन्द्र कोहली पृ0 95
43— अन्तराल —नरेन्द्र कोहली पृ0 96
44— अन्तराल —नरेन्द्र कोहली पृ0 100
45— अन्तराल —नरेन्द्र कोहली पृ0 209
46— अन्तराल —नरेन्द्र कोहली पृ0 213
47— अन्तराल —नरेन्द्र कोहली पृ0 215—216
48— अन्तराल —नरेन्द्र कोहली पृ0 217
49— अन्तराल —नरेन्द्र कोहली पृ0 100
50— अन्तराल —नरेन्द्र कोहली पृ0 310
51— अन्तराल —नरेन्द्र कोहली पृ0 310
52— अन्तराल —नरेन्द्र कोहली पृ0 311
53— अन्तराल —नरेन्द्र कोहली पृ0 367
54— अन्तराल —नरेन्द्र कोहली पृ0 367
55— अन्तराल —नरेन्द्र कोहली पृ0 368
56— प्रच्छन्न —नरेन्द्र कोहली पृ0 आवरण पृष्ठ से
57— प्रच्छन्न —नरेन्द्र कोहली पृ0 5—6

58— प्रच्छन्न —नरेन्द्र कोहली पृ0 290
59— प्रच्छन्न —नरेन्द्र कोहली पृ0 290
60— प्रच्छन्न —नरेन्द्र कोहली पृ0 302
61— प्रच्छन्न —नरेन्द्र कोहली पृ0 312
62— प्रच्छन्न —नरेन्द्र कोहली पृ0 312
63— प्रच्छन्न —नरेन्द्र कोहली पृ0 313
64— प्रच्छन्न —नरेन्द्र कोहली पृ0 313—14—15—16 का सार
65— प्रच्छन्न —नरेन्द्र कोहली पृ0 317
66— प्रत्यक्ष—नरेन्द्र कोहली पृ0—27
67— प्रत्यक्ष —नरेन्द्र कोहली पृ0 7—8
68— प्रत्यक्ष —नरेन्द्र कोहली पृ0 15
69— प्रत्यक्ष —नरेन्द्र कोहली पृ0 15
70— प्रत्यक्ष —नरेन्द्र कोहली पृ0 38
71— प्रत्यक्ष —नरेन्द्र कोहली पृ0 362
72— प्रत्यक्ष —नरेन्द्र कोहली पृ0 452
73— प्रत्यक्ष —नरेन्द्र कोहली पृ0 453
74— प्रत्यक्ष —नरेन्द्र कोहली पृ0 453
75— प्रत्यक्ष —नरेन्द्र कोहली पृ0 453
76— प्रत्यक्ष —नरेन्द्र कोहली पृ0 453
77— प्रत्यक्ष —नरेन्द्र कोहली पृ0 453
78— प्रत्यक्ष —नरेन्द्र कोहली पृ0 453
79— प्रत्यक्ष —नरेन्द्र कोहली पृ0 453
80— प्रत्यक्ष —नरेन्द्र कोहली पृ0 456
81— प्रत्यक्ष —नरेन्द्र कोहली पृ0 456
82— प्रत्यक्ष —नरेन्द्र कोहली पृ0 456
83— श्री मद्भागवद् गीता
84— श्री मद्भागवद् गीता
85— श्री मद्भागवद् गीता
86— निर्बन्ध —नरेन्द्र कोहली पृ0 275
87— निर्बन्ध —नरेन्द्र कोहली पृ0 282
88— निर्बन्ध —नरेन्द्र कोहली पृ0 283
89— निर्बन्ध —नरेन्द्र कोहली पृ0 283
90— निर्बन्ध —नरेन्द्र कोहली पृ0 437
91— निर्बन्ध —नरेन्द्र कोहली पृ0 437
92— निर्बन्ध —नरेन्द्र कोहली पृ0 449—50
93— निर्बन्ध —नरेन्द्र कोहली पृ0 496
94— निर्बन्ध —नरेन्द्र कोहली पृ0 496

95— निर्बन्ध —नरेन्द्र कोहली पृ0 496
96— निर्बन्ध —नरेन्द्र कोहली पृ0 496
97— निर्बन्ध —नरेन्द्र कोहली पृ0 501
98— निर्बन्ध —नरेन्द्र कोहली पृ0 502
99— निर्बन्ध —नरेन्द्र कोहली पृ0 502
100— निर्बन्ध —नरेन्द्र कोहली पृ0 504
101— निर्बन्ध —नरेन्द्र कोहली पृ0 504
102— निर्बन्ध —नरेन्द्र कोहली पृ0 504
103— निर्बन्ध —नरेन्द्र कोहली पृ0 523
104— निर्बन्ध —नरेन्द्र कोहली पृ0 528
105— बन्धन —नरेन्द्र कोहली पृ0 418
106— बन्धन —नरेन्द्र कोहली पृ0 419
107— बन्धन —नरेन्द्र कोहली पृ0 239
108— बन्धन —नरेन्द्र कोहली पृ0 326
109— प्रच्छन्न —नरेन्द्र कोहली पृ0 28
110— निर्बन्ध —नरेन्द्र कोहली पृ0 527—28
111— शिव पुराण (गीता प्रेस गोरखपुर, द्वितीय संस्करण)
19/40/41
23/43/56
35/51/62
112— विष्णु पुराण (गीता प्रेस गोरखपुर, द्वितीय संस्करण)
4/7/30
6/9/35
10/15/40
13/19/43
113— भागवत पुराण (गीता प्रेस गोरखपुर, द्वितीय संस्करण)
10/12/32
13/15/40
15/17/43
21/30/48
23/32/50
114— ब्रह्म वैवर्त पुराण (गीता प्रेस गोरखपुर, चतुर्थ संस्करण)
9/11/21
14/23/32
115— 13/15/47
116— लघु हारीति स्मृति
5/13

1/3, 1/5, 1/8

117– पाराशर स्मृति

9/13, 9/14/10/17

12/33

117क–ततः कदाचित् ब्रह्माणमुपासांचक्रिरे सुराः।
तत्र राजर्षयोहयासनं सच राजा महाभिषः।।
अथ गंगा सरिच्छ्रेष्ठा समुपायात् पितामहम्।
तस्या वासः समुद्धतं भासतेन शशिप्रभम्।।
ततोऽभवन सुरगणाः सहसावाड्.मुखस्तदा।
महाभिषस्तु राजर्षिरशंको दृष्टवान् नदीम्।।
सो ऽ पध्यातो भगवता ब्रह्मणा तु मह भिषः।
उक्तश्च जातो मर्त्येषु पुनर्लोकानंवात्स्यसि ।।
यया ऽऽ ह्ृतमनांश्चासि गंगया त्वं हि दुर्यते।
सा ते वै भानुषेलोके विप्रियाण्या चरिष्यति ।।

महाभारत – आदिपर्व 3/4/5/6/7–295

(ख) पौराणिकता का निर्वाहः सफलता/असफलता

नरेन्द्र कोहली ने 'महासमर' का वस्तुविन्यास विभिन्न पुराणों, संहिताओं तथा स्मृतियों से ग्रहण किया गया है, किन्तु मुख्यतयः वह वेदव्यास कृत 'महाभारत '– जिसे पच्च्म वेद भी कहा जाता है– पर आधृत है।

पुराणों में महाभारत के कथानक के सूत्र

118– शिवपुराण 1

119– विष्णु पुराण 2

120– भागवत पुराण 3

121– ब्रह्म वैवर्त पुराण 4

संहिताओं में महाभारत के कथानक के सूत्र

122– अभिसंहिता 5

123– अयं देवव्रतश्चैव गंगादत्तश्च मे सुतः।
द्विनामा शान्तनोः पुत्रः शान्तनोरधिकोंगुणेः।।
अयं कुमारः पुत्रस्ते विवृद्धः पुनरेष्यति।
अहं च ते भविष्यामि आहानोपगता नृप।।

– महाभारत – 46/–304 आदिपर्व

124– महासमर–बन्धन– नरेन्द्र कोहली पृ.17

125– बन्धन नरेन्द्र कोहली पृ.19

126– ब्राह्मणस्य वचस्तथ्यं तसय कालो ऽभागतः।
अनुज्ञाता त्वचा देवभाह्वयेयमहं नृप।
यां मे विद्यां महाराज अहहता् स महायशाः।
तथाहूतः सुरः पुत्रं प्रदास्यति सुरोपम्।

अनपतयकृतम् यस्ते शोकंहि व्यपनेष्यति।।
अपत्यकाम एवेः स्यान्ममापत्यं भवेदिति।
आवाहयानि कं देवं ब्रूहि सत्यवतां वर।
त्वत्तोऽनुज्ञा प्रतीक्षां मां विद्धयस्मिन कर्मणि स्थिताम्।।
महाभारत–15/17–आदिपर्व

127– बन्धन नरेन्द्र कोहली पृ. 418

128– बन्धन नरेन्द्र कोहली पृ. 418

चतुर्थ अध्याय

(क) राम कथामूलक उपन्यासों में पौराणिकता

(ख) पौराणिक वस्तुविन्यास में मौलिक उद्भावनायें

(ग) समकालीन सन्दर्भ में प्रासंगिता

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

चतुर्थ अध्याय

(क) राम कथामूलक उपन्यासों में पौराणिकता

नरेन्द्र कोहली ने पौराणिक सन्दर्भों को समकालीन परिस्थितियों के परिपेक्ष्य में पुनराख्यायित किया है। पौराणिकता के सूत्र इतिहास में नहीं खोजे जा सकते। भारतीय मनीषा ने प्रागैतिहासिक काल में ही मानवीय मूल्यों, जीवन दर्शन, नैतिकता, सत्य और न्याय के सार्वभौम यथार्थ की सूक्ष्म समीक्षा करली थी, जिसके दर्शन आर्ष–वाङ्मय में सहज ही किये जा सके हैं। निवृत्ति और प्रेम के क्षेत्र में भी भारतीय कर्तृत्त्वमूलक अभिज्ञा अंतरिक्षस्पर्शी रही है। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, आस्तेय, अपरिग्रह जैसे यंमो से लक्ष्यबद्ध आर्य जीवन शैली में विश्व के लिये कल्याणकारी शील और चिन्तन सुगुम्फित है, किन्तु इस संस्कृति को जब भी किसी बर्बर संस्कृति ने चोट पहुँचाने की चेष्टा की, तो ऐसे नृशंस दुष्टों का बध अथवा आर्य संस्कृति के आदर्श को क्षति पहुँचाने वाले किसी भी तत्त्व का बध अहिंसा के जीवन मूल्य में बाधक नहीं बन सका। पौराणिकता के अन्तर्गत महाकाव्यीय संस्कृति में भी यज्ञ संस्कृति का उन्मूलन करने की चेष्टा करने वाली ताड़का नारी होकर भी राम के लिए वध्य बनी। रक्ष संस्कृति का सूत्रधार रावण पुलस्त्य ऋषि का पौत्र तथा विश्रवा ऋषि का पुत्र होकर भी राम के लिए अवध्य नहीं बन सका। इसी प्रकार महाभारत

काव्य में अन्याय का समर्थन करने के लिए विवश भीष्म पितामह, गुरुद्रोण पाण्डवों के लिए श्रद्धेय होकर भी जीवित नहीं रहने दिए गए।

नरेन्द्र कोहली ने राम–कथा पर आधारित वस्तु विन्यास को साम्प्रतिक युग–बोध, तर्क तथा वैज्ञानिक अवधारणाओं से परिपुष्ट कर वृहद् उपन्यास का सृजन किया है, जो सात खण्डों में विभाजित राम–कथा–धारा को उपसंहार तक पहुँचाती है। इस कृति में अतीत के आख्यान को समकालीन दृष्टि तथा सरोकारों से संवेष्ठित करके प्रस्तुत किया गया है। स्थान–स्थान पर कृतिक की प्रगतिशील दृष्टि के दर्शन होते हैं, जिसमें प्रतिगामी मूल्यों को ध्वस्त करके पतनशील समाज के स्थान पर अभिनव समाज की स्थापना का प्रयास किया गया है। अहल्या प्रसंग में पौराणिक प्रस्तुति के अनुसार इन्द्र द्वारा अहल्या का शील भंग होने पर अहल्या के प्रति गौतम ऋषि से अभिशप्त अहल्या पत्थर की हो गई थी। नरेन्द्र कोहली ने इस प्रसंग को तर्क तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा। लेखक इस बात से सहमत नहीं हो सका कि अपराधी इन्द्र को एक गाली तक न देकर गौतम ऋषि ने अपनी पत्नी अहल्या को अभिशाप देकर उसे पाषाण बना दिया। इस घटना को नरेन्द्र कोहली ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि इन्द्र विविध शास्त्रास्त्र से युक्त सत्ता सम्पन्न किन्तु विलासी चरित्र है। राजा तथा प्रजा सभी उसके प्रभाव के दबाव में हैं। यज्ञादि धार्मिक अनुष्ठानों में वह तपोवनों में भी ससम्मान आमन्त्रित किया जाता है। वह मद्यप है–यह न केवल सर्वज्ञात तथ्य है

बल्कि सर्वमान्य तथ्य भी है। गौतम ऋषि के आश्रम में सप्त दिवसीय ज्ञान–सम्मेलन आयोजित हुआ जिसमें प्रायः समस्त लब्धप्रतिष्ठत ऋषिगण अपने–अपने पट्ट शिष्यों के साथ पधारे। ये ऋषि स्वरचित तथा संचित ग्रन्थ भी लाये थे, जिनके अवगाहन का अवसर सभी को प्राप्त था–

"गौतम और उनके आश्रम को ही नहीं, मिथिला प्रदेश के 'ज्ञान' को मान्यता मिली थी। सात दिनों का सम्मेलन था। सात दिनों तक ये समस्त अभ्यागत ऋषि उनके आश्रम की शोभा बढ़ायेंगे। ये लोग व्याख्यान देंगे, मिलकर विचार विमर्श करेंगे। अनेक समस्यायें और गुत्थियां सुलझायेंगे। और सबसे बड़ी बात यह थी कि उन ऋषियों के साथ आए हुए सैकड़ो ग्रन्थ इन दिनों गौतम के आश्रम में किसी भी ब्रह्मचारी के लिए सहज उपलब्ध होंगे।[1] मिथिला नरेश सीरध्वज जनक की ख्याति ऋषि–नरेश के रूप में रही है। इस सप्त–दिवसीय ज्ञान–सम्मेलन में वह स्वतः तो आए ही, साथ ही शक्ति और महिमा के केन्द्र देवराज इन्द्र को भी आमंत्रित किया था, जिसे देवराज इन्द्र ने स्वीकार कर लिया था, और वे रात्रि से पूर्व ही आश्रम पहुँच रहे थे।

"इस सूचना के मिलते ही, गौतम तथा उनके सहयोगियों का ध्यान सीरध्वज की ओर से हटकर इन्द्र के आगमन की ओर चला गया। देवराज शक्ति तथा महिमा की दृष्टि से मिथिला–नरेश से कही अधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे..........................गौतम की निजी कुटिया के एकदम साथ वाला, सबसे बड़ा तथा विशिष्ट कुटीर, जो अब तक कदाचित्

मिथिला–नरेश के लिए खाली रखा गया था– विशेष रूप से पुनः झाड़–बुहार कर, पुष्पों से सुवासित किया गया। उसमें देवराज इन्द्र के लिए उत्तम भोज्य–पदार्थ प्रस्तुत किए गए; और आश्रम के नियमों के सर्वथा विरुद्ध, उसी कुटीर में देवराज, के लिए मदिरा का प्रबन्ध किया गया......अपने प्रभाव का प्रयोग करके मद्यपायी इन्द्र अवसर प्राप्त होने पर ऋषि कुटीर में अकेली अहल्या से बलात्कार करता है। समकालीन समाज की भाँति की समर्थ के विरोध में कोई आवाज नहीं उठा पाता। अघट तो घट ही गया था। उसका दण्ड किसी को तो मिलना ही चाहिए था। यह दण्ड शक्तिपुन्ज महामहिमा मण्डित देवराज इन्द्र को कौन और कैसे दे सकता था। अतः दण्ड का खड्ग निर्बल समाज के प्रचलन के अनुसार अत्याचार की शिकार अबला अहल्या को दिया जाता है कि समाज का कोई व्यक्ति अब अहल्या से किसी प्रकार का सम्बन्ध न रक्खेगा। यहाँ तक कि उसका शिशु 'शत' तथा पति 'गौतम' से भी सम्बन्ध–विच्छेद हो गया। सम्पूर्ण समाज द्वारा परित्यक्ता अहल्या की स्थिति निर्जीव पाषाण जैसी हो गई। इसी को कहा गया कि गौतम ऋषि के शाप से अहल्या पत्थर की हो गई। राम के चरण का स्पर्श पाकर पत्थर की अहल्या पुनः सजीव नारी बन गई। नरेन्द्र कोहली ने इस अन्धकार आच्छादित सत्य का उद्घाटन इस प्रकार किया है कि राम ने अहल्या पर हुए अत्याचार को समझा। वह उसके आश्रम गए। ताड़का तथा सुबाहु के बध से उन्हें शक्तिशाली होने का यश प्राप्त हो चुका था।

वैसे भी राम चक्रवती सम्राट कोशल–नरेश दशरथ के राजकुमार थे। अहल्या के आश्रम जाकर उन्होंने निरपराध नारी को सामाजिक मान्यता दी। जब राम अहल्या को सम्मान तथा मान्यता दे रहे हैं, तो समाज की नपुंसक चेतना को न्याय के पक्ष में जाने और अहल्या को मान्यता देने का साहस तथा बहाना मिला। जनश्रुति तथा पौराणिक आख्यान के अनुसार यही अहल्या का पत्थर से सजीव नारी के रूप में रूपान्तरण था, जिसे नरेन्द्र कोहली ने पुनराख्यायित करके स्वाभाविक रूप प्रदान किया। इस उपक्रम में नरेन्द्र कोहली की मौलिक प्रयोगधर्मिता परिलक्षित होती है–

"शिलाओं को पिघला देने वाली राम की मुस्कान अधरों पर आई–देवि आप मुझे इतना महत्त्व न दें। मुझे ही अपनी ओर से कुछ कहने दें। मैं सम्पूर्ण लोगों की ओर से आपसे क्षमा–याचना करता हूँ, जिन्होंने आपका अपराध किया है, और प्रतिज्ञा करता हूँ कि जीवन में जब कभी इन्द्र से साक्षात्कार हुआ, उसे प्राण–दण्ड दूँगा..........मेरी आयु अभी इतनी नहीं, मेरा ज्ञान भी अभी इतना नहीं, जितना इन ऋषियों, तपस्वियों, मुनियों और साधकों का है। मेरे सम्मुख तो अपना मार्ग भी स्पष्ट नहीं है। परन्तु मैं अत्यन्त चकित और पीड़ित हूँ। ये लोग जानते हैं कि सत्य क्या है, उचित क्या है, न्याय क्या है। किन्तु फिर भी ये सबके सब, किस भय से निष्क्रिय और जड़ पडे हुए हैं। आपने कहा है देवि! इन सबको युग–पुरुष की प्रतीक्षा है, जो इन्हें जड़ता से उबार, नवजीवन दे सके; किन्तु वह पुरुष मैं ही हूँ ...यह कोई कैसे कह सकता है– मैं स्वयं भी कैसे

कह सकता हूँ। पर हाँ, मैं इस जड़ता को यथाशक्ति तोड़ूँ।....................मैं कौशल्या पुत्र वचन देता हूँ कि यदि समाज ने आपको स्वीकार नहीं किया तो मैं इस गलित समाज का नाश कर नया समाज बनाऊँगा।।"[3]

नरेन्द्र कोहली ने रामकथा का वस्तुविन्यास पूर्ववर्ती रामकथा मूलक ग्रन्थों से लिया है, किन्तु उनपर सर्वाधिक प्रभाव श्री मद् वाल्मीकीय रामायण' का प्रतिभासित होता है। उन्होंने अपनी काल्पनिक सृजन धर्मिता का प्रयोग करते हुए पौराणिक ग्रन्थों में निहित वस्तुविन्यास का तर्कसम्मत मानवीय तथा आदर्श रूपान्तरण किया है। असम्भव, चमत्कारिक तथा वायवीय घटना, चक्रों को सम्मव, सामान्य, लौकिक तथा समाज के शुभत्त्व का भी सन्दर्भों का प्रस्तुतीकरण किया है। कम्बक रामायण, रामचरित मानस, रामचन्द्रिका, साकेत तथा वाल्मीकीय रामायण में सीता की खोज के लिए जा रहे हनुमान ने सौ योजन समुद्र को आकाश में उड़ते हुए पार किया था। वाल्मीकीय रामायण के अनुसार महेन्द्रगिरि के उत्तुंग शिखर पर चढ़कर हनुमान ने जब आकाश में उड़ने के लिए छलांग लगाने का उपक्रम किया तो उनके दबाव से महेन्द्र पर्वत के अन्तर्भाग के विभिन्न वर्गों द्रव प्रस्रवित होकर प्रवाहित हो उठे। उसके शिला समूह इधर–उधर विखर गए। उससे नये–नये झरने फूट निकले।"[4] कपिवर हनुमान द्वारा दबाये जाने पर वह पर्वत कांप उठा और दो घड़ी तक तगमगाता रहा। उसके ऊपर जो वृक्ष उगे थे; उनकी डालियों के अग्रभाग फूलों से लदे हुए थे; किन्तु उस पर्वत के हिलने से उनके वे सारे फूल झड गए। जिस

समय उन्होंने छलांग लगाई, उस समय उनके वेग से आकृष्ट हो पर्वत पर उगे हुए सब वृक्ष उखड़ गए और अपनी डालियाँ समेटकर उखड़ उनके साथ ही वेगपूर्वक उड़ चले। उपर्युक्त कथा विन्यास को नरेन्द्र कोहली ने लौकिक धरातल पर स्वाभाविकता प्रदान करते हुए हनुमान को उडकर नहीं तैरकर सागर पार कराते दिखाया है–

"हनुमान एक ऊँची शिला पर खड़े थे...............मुड़कर उन्होंने अपने साथियों की दिशा में हाथ हिलाकर अपने जाने का संकेत किया और जल में, छलांग लगा दी। पानी जोर से उछला और हनुमान को उसने अपने भीतर छिपा लिया। कुछ क्षणों के पश्चात् दस हाा आगे जाकर हनुमान जल से ऊपर उभरे। उनकी गर्दन और कंधे पानी के ऊपर दीख रहे थे और लम्बी–लम्बी भुजाओं से पानी को परे धकेलते हुए वे धनुष से छूटे बाण के समान लपके जा रहे थे।"[5]

बाली–सुग्रीव प्रसंग में नरेन्द्र कोहली ने राम द्वारा सुग्रीव को जो उपदेश दिलाया है वह सार्वकालिक रूप से प्रासंगिक है। राम की शक्ति से प्रमुदित सुग्रीव जब बाली से बुरी तरह पिट कर प्राण बचाकर साम के पास लौटता है और राम को उपालम्भ देता है कि सात ताल वृक्षो का एक ही बाण से उक्ष्छेदन करने वाले राम के बल पर ही मैं बाली से युद्ध करने गया था, किन्तु आपने छल किया और उचित समय पर शर–संघान नहीं किया। राम ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया कि–

"मैंने तो सचमुच यही चाहा कि हम तुम्हें समर्थ बनायें, ताकि तुम

स्वयं अपने हाथों अपने शत्रु का बध कर , अपना प्रतिशोध कर लो और वीरत्व का यश पाओं"[6] सुग्रीव के यह कहने पर कि बाली बहुत बलवान हैं मैं उससे लड़ने योग्य नहीं हूँ। राम सुग्रीव का समझाते है–

"लड़ना एक बात है और खड़े–खड़े पिटते रहकर भाग आना दूसरी बात है। तुमने लड़ने का तनिक भी प्रयत्न नहीं किया। मित्र! न देखा वाली प्रहार कैसे कर रहा है, न देखा तुम्हें अपना बचाव कैसे करना चाहिए.......यह मान बैठना सर्वथा निरर्थक है कि कोई व्यक्ति समाज अथवा जाति से निश्चित रूप से अधिक शक्तिशाली है......युद्ध के सन्दर्भ में शक्ति का अर्थ है प्रहारक शक्ति। प्रहारक शक्ति कई प्रकार से बढ़ाई जा सकती है– शरीरिक बल बढ़ाकर, युद्ध कौशल की बृद्धिकर शस्त्र प्राप्त कर अथवा संगठन से। बाली के साथ युद्ध के सन्दर्भ में तुम अपनी शारीरिक शक्ति नहीं बढ़ा सकते। शस्त्र युद्ध तुम्हें करना नहीं है। एक व्यक्ति अपना संगठन कैसे करेगा? अतः तुम्हें अपना युद्ध कौशल ही बढ़ाना होगा।"[7]

रीम के द्वारा युद्धाभ्यास तथा आत्म बल प्राप्त करके सुग्रीव पुनः बाली से युद्ध करने जाता है। राम कथा मूलक पौराणिकता तथा हिन्दी काव्य परम्परा में इस युद्ध को चम्त्कारिक तथा अलौकिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। जैसे सुग्रीव द्वारा सालवृक्ष उखाड़ कर बाली के शरीर पर प्रहार करना।[8] इस घटना को नरेन्द्र कोहली ने सहज लौकिकरूप से प्रस्तुत किया है–

"किन्तु तब तक बाली ने सुग्रीव को अपनी भुजाओं में बांध कर

विभिन्न युक्तियों से इतना पीड़ित किया कि सुग्रीव विलविला उठे। लगा मल्ल युद्ध का सारा विधि विधान सारी युक्तियां, दांव पेंच उनकी बुद्धि से निकल गए। अपने शरीर के समस्त बल का आह्वान कर वे छिटककर बाली की पकड़ से निकले और लड़खड़ा कर गिर पड़े................राम समझ नहीं सके कि वह मात्र संयोग था कि सुग्रीव का पास के किसी वृक्ष से टूटकर गिरी हुई सूखी शाखा पर हाथ पड़ गया, अथवा उन्होंने सायास उसे प्राप्त किया था। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति तथा अद्भुत स्फूर्ति से बाली पर आघात करने आरम्भ किए।"[9]

जब बाली राम से कहता है कि तुमने यह कौन सा न्याय किया? किसी अन्य व्यक्ति से लड़ते हुए तुमने छिपकर मुझे मारा। क्या इसी को वीरता कहते है। इसके उत्तर में राम के कथन में तर्क, दर्शन, मूल्य तथा समकालीन युग के लिए महत्त्वपूर्ण प्रासंगिकता है–

"न्याय की बात करने का अधिकार तुमको नहीं है पापी! असहाय, निरीह रूमा का तुमने किस न्याय और वीरता से किया था? अत्याचारियों द्वारा अपनी सुविधा के लिए किए गए उद्घोषों के समूह का नाम न्याय है? तुमने अपनी निरीह प्रजा पर जो अत्याचार किए हैं, उनके पीछे कौन सा न्याय था?......................न्याय सदा जन–हित में होता है। मैं तुम्हारे द्वारा परिभाषित न्याय और वीरता के जड़–स्वरूप को प्रमाणित करने के लिए, तुम्हारे हाथों, तुमसे दुर्बल सुग्रीव को मरते हुए देखते रहता तो वह न्याय होता? ....राम अपनी सुविधा तथा लाभ के लिए भी

अत्याचारियों की संगति नहीं चाहता। तुम चाहे कितना सद्भाव और सौहार्द्र लेकर मेरे पास आते, तुम्हारा और मेरा संबंध केवल एक ही हो सकता था.....विरोध का.......... ।"[10]

इस प्रकार हम देखते हैं कि नरेन्द्र कोहली ने पौराणिक वस्तु विन्यास को अपनी प्रयोगधर्मिता से लौकिक, विश्वसनीय, तर्क संगत तथा साम्प्रतिक सन्दर्भों के लिए उपयोगी बनाया है।

राम–कथा पर आधारित उनका उपन्यास सात खण्डों में प्रकाशित हुआ है–

1–दीक्षा

2–अवसर

3–संघर्ष की ओर

4–साक्षात्कार

5–पृष्ठभूमि

6–अभियान

7–युद्ध

रामकथा विशेषतः रामायण पर आधारित उपन्यास माला का प्रथम खण्ड 'दीक्षा' नाम से प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास के माध्यम से आर्य–संस्कृति के लिए दिनानुदिन घातक होती जा रही रक्ष संस्कृति (या यूं कह लें कि मानवीय संस्कृति के लिए घातक होती जा रही बर्बर आतंकवादी संस्कृति) के प्रति महर्षि विश्वामित्र को चिंतित दिखाया गया

है। विश्वामित्र एक पुराण प्रख्यात नाम है। वह कुशनाम वंशज महाराजा गाधि के पुत्र और क्षत्रिय नरेश थे। एक बार वह एक अक्षौहिणी सेना के साथ वशिष्ठ–आश्रम पहुँचे जहाँ चितकबरी गाय (शबला) कामधेनु की शक्ति से महर्षि वसिष्ठ ने विश्वामित्र की एक असौहिणी सेवा का सम्यक सत्कार किया। कामधेनु की सामर्थ्य पर लुब्ध होकर विश्वामित्र ने महर्षि वसिष्ठ से कहा कि आप मुझसे एक लाख गौएं लेकर यह शबला कामधेनु दे दीजिए; क्योंकि यह गौ रत्न रूप है और रत्न लेने का अधिकारी राजा होता है।[11] जब वसिष्ठ किसी तरह विश्वामित्र को कामधेनु देने को राजी नहीं हुए तो विश्वामित्र ने बलपूर्वक कामधेनु को छीनना चाहा। पहले कामधेनु की शक्ति से और बाद में ब्रह्मर्षि वसिष्ठ के ब्रह्मदण्ड की शक्ति से विश्वामित्र पूर्ण परास्त हुए और उन्होंने जान लिया कि वास्तविक बल ब्रह्मबल है।[12] विश्वामित्र ने कठोर तप करके ब्रह्मबल प्राप्त करना चाहा। पुराणानुसार मेनका, त्रिशंकु आदिक तपोहारिणी घटनाओं के अनन्तर भी विश्वामित्र ब्रह्मर्षि बन गए। उन्होंने राम को बताया कि उनकी ऋचीक् मुनि से परिणीता बहन अपने तपोबल से कौशिकी नामक नदी बन गई है। मैं हिमालय के कौशिकी तटवर्ती क्षेत्र में रहकर पर करना रूचिकर मानता हूँ तथापि मैं यज्ञसम्बन्धी नियम की सिद्धि के लिए ही अपनी बहिन का सांनिध्य छोड़कर सिद्धश्रम (बक्सर) में आया था।''[13] यहाँ ताड़का के नेतृत्व में सुबाहु मारीचि आदि राक्षसों के कारण यहाँ के ऋषियों–मुनियों तथा सामान्य निवासियों को अत्याचार ग्रस्त देखा। यहाँ राक्षसों द्वारा

नर–भक्षण, यज्ञ–विध्वंस तथा बलात्कार जैसे दुष्कृत्यों को देखकर मैं मर्माहत हो उठा और कोशल नरेश दशरथ से तुम्हें इसी प्रयोजन से लाया हूँ कि राक्षस–शक्ति का ध्वंस हो और आर्य संस्कृति का पोषण हो। नरेन्द्र कोहली ने रामायण की कथावस्तु को साम्प्रतिक सन्दर्भों से समायोजित किया है। वर्तमान युग–प्रवाह राक्षसी भोग की ओर उन्मुख है। शक्तिशाली राष्ट्र रावण की भूमिका निभा रहे हैं। स्थान–स्थान उनके स्कन्धावार हैं। जो आर्य संस्कृति पर आस्था रखते हैं, उन्हें भी लोभ अथवा आतंक से शोषक संस्कृति में शामिल किया जा रहा है। महर्षि विश्वामित्र में माध्यम से कृतिक ने ऐसे द्विधा ग्रस्त मनीषी का चित्रांकन किया है–

"क्या अपनी शांति के लिए, अपने आश्रमवासियों की रक्षा के लिए, राक्षसों से समझौता कर लूँ? अपना शस्त्र–ज्ञान उन्हें समर्पित कर एक ओर शुक्राचार्य बन जाऊँ? मृगुओं और भरतों का समस्त शस्त्र, औषध तथा अश्वपालन संबधी ज्ञान देकर उन्हें और भी शक्तिशाली बना दूँ? क्या मैं भी उनमें से एक हो जाऊँ? राक्षसी वृत्तियों को निर्बाध पनपने दूँ? अपने आश्रम से आर्य संस्कृति को निष्कासित कर इसे राक्षस संस्कृति का गढ़ बन जाने दूँ?"[14]

विपरीत परिस्थितियों में मनीषियोंका कर्त्तव्य अस्त नहीं होता, प्रत्युत् अति दीर्घ हो जाता हैं। विश्वामित्र के माध्यम से नरेन्द्र कोहली यही कहना चाहते हैं कि प्रत्येक परिस्थिति में कर्त्तव्य का कोई न कोई मार्ग बचा ही रहता है। स्थानीय जनों के साहसिक और प्रतिरोधी संगठन न

बन सकने की स्थिति में विश्वामित्र ने तन्त्रीय सहयोग के लिए कोशल के सेनानायक बहुलाश्व के पास मुनि आजानुबहु को भेजा किन्तु प्रजा की रक्षा के लिए नियुक्त कुत्यस्थित और भ्रस्ट समाज में तन्त्रीय शक्तियाँ न केवल बर्बर आततातइयों की मित्र बन जाती है, प्रत्युत जनता पर अत्याचार करने में इनकी भी सक्रिय भूमिका प्रारम्भ हो जाती है। शासन तन्त्र की कुत्सित भूमिका तथा बर्बर राक्षसों के दुष्कृत्य से विश्वामित्र के भीतर घृणा पुंजीभूत होने लगी। उन्होंने सोचा कि इस प्रजा से ही वह शक्ति सृजित होगी, जिससे अत्याचारी परिस्थितियों के कारक तत्त्वों का सम्पूर्ण नाश हो सकेगा—

"इस घृणा को पोषित करना होगा, तभी राक्षसों का संहार होगा।"[15]

जब लोग इनते भयभीत हो जाते हैं, कि अत्याचारी का नाम तक नहीं बता सकते तो इसे विश्वामित्र जैसा आर्य—संस्कृति का प्रणेता सह नहीं पाता और अत्याचार ग्रस्त निषाद ग्राम के युवक गगन को फटकारते हुए कहते हैं—

"उन दलितों का उद्धार कभी नहीं होता, जो अत्याचार का विरोध नहीं करते।"[16]

अन्त में विश्वामित्र अयोध्या जाकर राम—लक्ष्मण को साथ लाते हैं। राम द्वारा ताटकावन की आतंक ताड़का तथा उसके सहयोगियों का बध होता है। सिद्धाश्रम पर छाया आतंक घढ़ता है। राम ग्राम्यांचल के लोगों में संगठन तथा संघर्ष की शक्ति संरोपित करते हैं। जब विश्वामित्र की

इच्छानुसार वह मिथिला जाने लगते हैं, तब राक्षस अत्याचार से पीड़ित वजना तथा अन्य तरुणियों को दुःखी देखकर कहते हैं–

"मैं तुम्हें निराश्रित नहीं छोड़ रहा। मैं तुम्हें राम के संरक्षण में छोड़रहा हूँ। वह तुममें से एक है–गगन। वही तुम्हारा अभिभावक हैं उसके सम्पर्क में यहाँ अनेक और रामों का निमार्ण होगा।"[17]

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपन्यासकार अव्यवस्था के विरुद्ध विश्वामित्र जैसा मनीषी तथा राम जैसा नायक चाहता है, जिसके प्रभाव से पीड़ितों में ही वह शक्ति आ जाय कि वह राम बनकर अत्याचारी को कुचल डालें

इस उपन्यास रामायण में वर्णित सभी पात्र हैं जैसे विश्वामित्र, दशरथ, वसिष्ठ, राम, लक्ष्मण, सीरध्वज जनक, सीता, सुनयना, शतानंद, गौतम, अहल्या, देवराज–इन्द्र, ताड़का, मारीचि, सुबाहु, कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी। कथा–क्रम के निर्वाह तथा कथ्य की अभिव्यक्ति की सुगमता के लिए काल्पनिक पात्र भी गढ़ गए हैं जैसे पुनर्वसु, आजानुबाहु, सुकंठ, नक्षत्र, सेनानायक बहुलाश्व, गगन, अनुगता, वनजा, गहन, देवप्रिय। पौराणिक कथानक के मार्ग पर चलते हुए भी उपन्यासकार ने उसे तार्किक विश्वसनीय, लौकिक तथा साम्प्रतिक युग–चेतना को समुज्ज्वल करने योग्य बनाना चाहा है। गौतम–अहल्या प्रसंग पर पहले ही पर्याप्त चर्चा की जा चुकी है। सीता के भूमिजा रूप को भी सहज स्वाभाविक रूप दिया गया है। सीता भूमि से उपजी कोई अलौकिक कन्या नही प्रत्युत

अज्ञात कुल शीला ऐसी कन्या है, जिसे किसी अज्ञात कारण से खेत में फेंक दिया गया है सूचना पाकर राजाज्ञा से बच्ची खेत से उठा ली जाती है–"किन्तु राजादेश से बच्ची के उठा लिए जाने मात्र से, कार्य पूरा नहीं हो सकता। बच्ची के पालन–पोषण की कोई–न–कोई व्यवस्थ करनी होगी। किसका दायित्व है यह? माता–पिता का। किन्तु यदि माता–पिता संतान का इस प्रकार खुले खेत में छोड़ जाएं तो?......................पर क्यो छोड़ गए माता–पिता? उन्हें अपनी संतान से प्यार नहीं।? वह कौर सी मजबूरी थी। कोई भी मजबूरी रही हो–ऐसी मजबूरी के लिए उत्तरदायी कौन है? देश का राजा। हाँ! देश का राजा। जिस देश के माता–पिता अपनी किसी मजबूरी के कारण अपने नवजात शिशु को खेत में छोड़ जाने का बाध्य हों, उस देश का राजा अवश्य ही प्रजापालन के अपने कर्त्तव्य से स्खलित हुआ है?[18]

सीरध्वज के उपर्युक्त आत्म कथन से सीता के जन्म का यथार्थ लौकिक धरातल से जुड़ने के अतिरिक्त शासकीय दायित्व का अनावरण भी करता है, जो उपन्यासकार का प्रमुख अभिप्रेत प्रतीत होता है। वीर्यशुल्का (शौर्य से ही जिसे प्राप्त किया जा सके) सीता के पाणिग्रहण के लिए सीरध्वज ने प्रतिज्ञा कर रक्खी है कि वह उसी वीर से अपनी पुत्री का विवाह करेंगे जो शिव धनुष अजगव का परिचालन कर सकेगा। पौराणिकता के आधार पर तो अजगव के सम्बन्ध में यही विवक्षित है कि जो शिव चाप अजगव की प्रत्यन्चा चढ़ा देगा, जनक उसी के साथ अपनी

पुत्री सीता का विवाह करेंगे। उपन्यासकार ने इस परमाणु युग के अनुकूल ही अजगव के सम्बन्ध में अभिनव परिकल्पना प्रस्तुत की है। विश्वामित्र राम को बताते हैं कि अजगव एक प्रक्षेपास्त्र है, जिस दिव्यास्त्र आरोपित करके उसे लक्ष्य तक पहुँचाया जा सकता हैं उसमें जो कलपुर्जे लगे हैं, उनके सम्बन्ध में विश्वामित्र राम को सूक्ष्म अभिज्ञा प्रदान करते हैं। वह यह भी कहते हैं कि यदि राक्षसी शक्तियों के हाथ यह अजगव लग गया और उन्होंने इसके परिचालन की प्रक्रिया जान ली तो देव–संस्कृति का नामोनिशान नहीं बचेगा। विश्वामित्र का राम के प्रति निर्देशात्मक कथन अजगव के संबंध में उपन्यासकार की कल्पनामूलक प्रयोगधर्मिता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है–

"................न केवल मैं तुम्हें अजगव–परिचालन की युक्ति बताना चाहता हूँ, साथ ही एक और निर्देश भी देना चाहता हूँ।..............उस यन्त्र में एक आत्म–विस्फोट पदार्थ लगा हुआ है। मैं चाहूँगा पुत्र! तुम उस विधि को भी सीख लो, जिसके द्वारा वह आत्म–विस्फोट पदार्थ, प्ररित किया जा सकता है। उस पदार्थ का एक बार प्रेरित कर दिया जाय, तो वह अजगव का खण्ड–खण्ड कर देगा। इस कार्य से एक ओर तुम सीता से विवाह का प्रतिबन्ध पूर्ण कर सीता का पाणिग्रहण करने में समर्थ होओगे, और दूसरी ओर, समस्त देव जातियों, आर्य–सभ्रातों और आधारण प्रजाजन को इस भय से मुक्त कर दोगे कि किसी समय यदि यह शिव–धनुष राक्षसों के हाथ मु पड गया तो वह इसकी सहायता से प्रजा

का सर्वनाश कर डालेंगे।"[19]

(ख)पौराणिक वस्तु विन्यास में मौलिक उद्भावनायें–

इस उपन्यास के परिशीलन से यह समयक् परिदृष्ट है कि नरेन्द्र कोहली ने पौराणिक सन्दर्भों का समकालीन परिस्थितियों, अभिज्ञा तथा परिवेशगह वांछनीयता के अनुकूल पुनराख्यान किया है। कथावस्तु की मूल धारा को सुरक्षित रखते हुए कृतिक न निजस्विनी दृष्टि से वर्तमान सन्दर्भों और समस्याओं को पहचानने तथा उनके निराकरण का प्रयास किया है। राम कथा मूलक उपन्यास के प्रथम भाग 'दीक्षा' में ही उन्होंने अपना लक्ष्य स्पष्ट कर दिया है कि वे वर्तमान परिवेश में व्याप्त अत्याचार अनाचार, स्वैराचार, दुराचार, भ्रष्टाचार, शोषण तथा अन्याय को न मात्र पौराणिक वस्तु विन्यास से रेखांकित करना चाहते हैं, प्रत्युत उनके समूल नाश का चिन्तन भी प्रस्तुत करना चाहते हैं। सामाजिक न्याय के लिए व्याकुल कृतिक अहल्या अभिप्रेत स्पष्ट कर देता है कि उसकी यह कृति मात्र कथा प्रस्तुत करने का उपक्रम नहीं, बल्कि इसके माध्यम से वह अन्याय और शोषण का नाश तथा आदर्श सामाजिकता से सृजन का संदेश देना चाहता है–

" ये लोग जानते हैं कि सत्य क्या है, उचित क्या है, न्याय क्या है। किन्तु फिर भी ये सबके सब, किस भय से निष्क्रिय और जड़ पड़े हुए हैं. ....आपने वर्षों की प्रतीक्षा की है देवि! आपकी प्रतीक्षा समाप्त हुई। जाइए अपने पति के आश्रम में पधारिए। अब कोई आपको परित्यक्ता,

पतित, हीन तथा सामाजिक एवं नैतिक दृष्टि से हेय कहने का साहस नहीं करेगा। मैं कौशल्या–पुत्र राम वचन देता हूँ, कि यदि समाज ने आपको स्वीकार नहीं किया तो मैं या तो आपको प्रतिष्ठा दिलाऊँगा या इस दलित समाज का नाश कर, नया समाज बनाऊँगा।''[20]

रामायण पर आधारित उपन्यास माला के दूसरे भाग 'अवसर' में नरेन्द्र कोहली ने सामजिक न्याय के प्रति अपना आग्रह जारी रक्खा है। उपन्यास का प्रारम्भ पौराणिक कथानक से अलग हटकर राजमहलों में चुपचाप सुलगते रहते षड़यन्त्रों के प्रति राजकीय सावधानी से प्रारम्भ होता है।

कोसल नरेश दशरथ ने जब यह जाना कि अयोध्या के उत्तर में स्थित सम्राट की निजी अश्वशाला से नायक भानुमित्र उनकी अनुमति के बाद भी श्वेत अश्वों को राज प्रासाद तक नहीं ला सका, तो उन्हें बहुत क्रोध आया। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि कैकयी के भाई तथा केकय राज्य के युवराज युधाजित अपने भांजे भरत तथा शत्रुघ्न के साथ केकय देश की राजधानी राजगृह जाने वाले थे। जबतक वह राज द्वार पार न कर लेंगे तब तक नगर द्वार बन्द रहेगा। उनकी सुरक्षा की दृष्टि से नगर–पथ तथा नगर–हाट तक को बन्द रहना था। नगर की रक्षा व्यवस्था भरत के अधीनस्थ सैनिकों द्वारा होती थी। राजा दशरथ ने सोचा कि केकयी के भाई युधाजित तथा केकयी के पुत्र भरत की तुलना में वह कम सम्प्रभुता सम्पन्न आंके गए अन्यथा नगर रक्षक सैनिकों का इतना साहस कैसे हो

सकता था, कि महाराज के आदेश से नायक भानुमित्र अश्वों सहित नगर में प्रवेश नहीं कर सके। दशरथ का अहंकार आहत हुआ। उन्हें लगा कि केकयी की प्रभुसत्ता के अधीन होता जा रहा है कोसल–

"आज अयोध्या में कैकयी महारानी है। भरत युवराज न सही, युवराज प्रायः हैं। सेना की अनेक महत्त्वपूर्ण टुकड़ियाँ उसके अधीन हैं। कैकेयी का संबधी पुष्कल सचिव है। केकय का राजदूत अयोध्या में विशेष आदर सम्मान तथा स्थिति का स्वामी है। उसके पास सम्राट की अनुमति से, अंग रक्षकों की विशाल सेना है...........कितनी शक्तिशाली है कैकेयी..... ....। उसकी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष, छाया मात्र पाने वाला सैनिक भी, दशरथ के नायक को रात भर अयोध्या के बाहर रोके रख सकता है...... ....।[21]

दशरथ सोचते हैं कि अभी तक उनसे कैकेयी के रूपजाल के कारण भयानक कूटनीतिक भूलें हुई हैं। कैकयी का उनसे विवाह सहज स्वीकृति से नहीं हुआ था। केकय नरेश को पराजित कर और युधाजित को बंदी बनाकर केकयी से विवाह हुआ था। केकय, कैकेयी और युधाजित कैसे उस अपमान को भूल सकते थे। दशरथ को यह भी याद आया कि कैकेयी का मोहक सौन्दर्य ने उनकी बुद्धि पर परदा डाल दिया था, नहीं तो वह कैकय नरेश को यह वचन कैसे दे देते कि कैकेयी का पुत्र ही कोसल का युवराज होगा। दशरथ ने सोचा कि कैकेयी के राजमहल के प्रवेश के बाद वह निरन्तर शक्तिशाली हुई है और दशरथ निरन्तर शक्ति

हीन–

" उसका आभास उन्हें विवाह के पश्चात् अयोध्या लौटते ही मिलने लगा था। और वह शक्ति क्रमशः बढ़ी ही है, कम नही हुई। अनेक बाद दशरथ को अपने सम्मुख ही नहीं, दूसरों के सम्मुख भी अपमानित होना पड़ा है......................किन्तु उन्होंने आज तक कैकेयी की शक्ति को अपनी पत्नी की शक्ति होने का भ्रम पाला है............पर आज वे देख रहे हैं। कैकेयी की शक्ति युधाजित की बहन की शक्ति हैः भरत की शक्ति दशरथ के पुत्र की नही; युधाजित को अयोध्या में इतना शक्तिशाली नहीं होना चाहिए................ ।[22]

इसी मनोभूमि में दशरथ कैकेयी की शक्ति को कम करने के लिए कई ऐसे कदम उठाते हैं, जो अटपटे होने के साथ राजकीय गुत्थियों को जटिल बनाते जाते हैं। इनसे उबरने के लिए दशरथ एकाएक राम के युवराज्याभिषेक की घोषणा करते हैं। अब इस उपन्यास की घटनायें प्रायः महाकाव्यीय परम्परा के अनुसार ही घटती हैं। जैसे राम के राज्याभिषेक की सूचना पर प्रसन्न होकर कैकेयी ने कुब्जा को बहुमूल्य मोतियों की माला दे डाली। बाद में उसके भड़काने पर वह राम के युवराज्याभिषेक को अनर्थ मानकर कोप भवन में चली गई–

"और अन्त में मैंने क्या पाया राम! ....कल रात ढले, कुब्जा तुम्हारे युवराज्याभिषेक का समाचार लाई। मैंने बहुमूल्य मोतियों की माला कुब्जा को पुरस्कार में दे डाली। किन्तु उस मूर्खा कुटिल दासी वह मेरे

मुँह पर दे मारी।..................................उसने मुझे बताया यह गोपनीय निर्णय था। सम्राट को आशंका थी कि कुछ लोग अभिषेक में विघ्न डालेंगे, राम को नष्ट करने के लिए रातों–रात उस पर आक्रमण करेंगे। किससे था भय? मुझसे! मेरे पुत्र से!! मेरे भाई से!!! इसीलिए मुझे बताया नहीं। भरत को ननिहाल भेज दिया। भरत की अधीनस्थ टुकड़ियों को उत्तरी सीमांत की ओर स्थानास्तरित कर दिया। पुष्कल का अपहरण करना उसे बन्दी कर लिया। केकय के राजदूत की निजी सेना का निःशस्त्रीकरण हुआ... ....राम! मैंने दो वर माँगे हैं.....................पहला तुम्हारे युवराज्याभिषेक के लिए प्रस्तुत की गई साम्रगी से ही भरत का युवाराज्याभिषेक हो; दूसरा तपस्वी वेश में तुम आज ही चौदह वर्षों के लिए वनवास के लिए प्रस्थान करो''[23] का प्रवाह में यत्किंचित काल्पनिक प्रयोग करता कृतिक राम–सीता लक्ष्मण को निषाद राज गुह से मिलते हुए चित्रकूट प्रस्थान कर जाते हैं, जहाँ सबसे पहले वाल्मीकि आश्रम पहुँचते हैं। बीच–बीच में उपन्यासका अतीत की पृष्ठभूमि से वर्तमान को उपकृत करने वाला चिंतन प्रस्तुत करता चलता है। आज अतिभौतिकता के युग में उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रचार–प्रसार हो रहा है। भारद्वाज ऋषि के माध्यम से लेखक ने इसी राक्षसी वृत्ति पर आघात किया है–

''दुष्ट संचित धन, हिंस्र पशु–बल तथा भ्रष्ट राजनीतिक सत्ता पुंजीभूत कृति–इस राक्षसी प्रवृत्ति को यदि न रोका गया तो वह आश्रमों को क्या समस्त आर्यावर्त और देवभूमि को भी ग्रस लेगी। पहले तो

सुमाली के भाई–बान्धव ही राक्षस थे, अब अनेक यक्ष, गन्धर्व, किरात तथा आर्य भी राक्षस होते जा रहे हैं। स्वर्ण को अपना सर्वस्व मानने वाला मनुष्य के पशुत्त्व को उकसाने वाला रावण, प्रत्येक दुष्टता को प्रश्रय दे रहा है। वह समस्त मानवीय मूल्यों का विध्वंस कर रहा है।................ तान्त्रिक अंध विश्वासों तथा अभिचार कृत्यों से वह ज्ञान तथा सत्य का गला घोंट रहा है। मानवता के भविष्य के स्वरूप की अवज्ञा कर वह किसी भी प्रकार अधिकाधिक भोग–विलास में लगा हुआ है.................... ।"[24]

इस प्रकार लेखक ने बता दियया हैं कि देवत्त्व अथवा राक्षसत्व व्यक्ति, वर्ग या जाति में न होकर वृत्ति में हाता है। लेखक ऋषि भारद्वाज के माध्यम से इस भोगवादी राक्षसी प्रभाव से मुक्ति का मार्ग जागरुक जनशक्ति में निहित निरुपित करतें हैं–

"प्रतिरोध करेगी जागरुक तथा चैतन्य, भ्रष्ट व्यवस्था के दोष समझने वाली, अपने श्रम से आजीविका अर्जित करने वाली जनता! ये दो धनुर्धर तो उसके संकल्प के प्रतीक मात्र हैं। यदि कोई यह समझता है कि दो व्यक्ति विश्व की प्रवृत्तियों को रोक सकते हैं, जनमत तैयार कर सकते हैं, मार्ग दिखा सकते हैं, नेतृत्त्व कर सकते हैं। वैसे राक्षसत्त्व प्रकृति का अनघड़ और आदिम रूप है; प्रत्येक युग उसका अपने ढ़ंग से विरोध करता है। ये धनुर्धर उसका विरोध करने वाले न तो पहले व्यक्ति हैं, न अंतिम होंगे। यह संघर्ष तो चिरंतन है। ....व्यक्ति रावण से अधिक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति रावण है...............विरोध उस दुष्ट प्रवृत्ति और भ्रष्ट

व्यवस्था का है; जिसका अधिनायकत्त्व रावण कर रहा है।"[25]

वर्तमान परिस्थितियों के सन्दर्भ में ही नरेन्द्र कोहली ने ऋषि भारद्वाज से कहलवाया है–

राघव! आज राक्षसी शक्तियां संगठित हैं और मनवीय शक्तियां विखरी हुई हैं। विजय संगठन की होती है। अतः राक्षसी तन्त्र का ध्वंस करने का श्रेय भी उसी व्यक्ति को मिलेगा, जो राक्षस–विरोधी शक्तियों का संगठन करने में सफल होगा।"[26]

चित्रकूट पहुँचकर सर्वप्रथम राम ने महर्षी वाल्मीकी के दर्शन किए, और मनदाकिनी के तट पर पर्णशाला बनाने का निश्चय किया। राम जहाँ जाते थे अपना शस्त्रागार भी साथ लेकर जाते थे वाल्मिकि आश्रम के अन्तेवासी मुखर के कौतुहल पर राम हंस कर कहना–"हम क्षत्रिय है मित्र, हमें आत्मरक्षा के लिए ही नहीं, न्याय और सत्य के पक्ष में अन्य शोषितों के लिए शस्त्रों का प्रयोग करना पड़ता है। निःशस्त्र यात्रा हमारे लिए प्रयोजन हीन हो जाती है। "[27] सामाजिक न्याय के लिए महत्त्वपूर्ण है। यह प्रशन उठने पर कि ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में शस्त्रास्त्र प्रशिक्षण क्यों नहीं दिया जाता इसके उत्तर में वाल्मीकि लक्ष्मण से कहते हैं–

"सौमित्र! हम तपस्वियों ने अन्याय–विरोध और न्याय–रक्षा का व्रत लिया है। हम दलित दमित, पीड़ित प्रजा को जाग्रत करने उसे उसके अधिकारों के प्रति सचेत कराने उसे पशुता के धरातल पर लाने का कर्म

करते है। उसके लिए हम तपस्या और साधना करते है। संयम और तप का अनुष्ठान करते है। इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अनेक मार्ग है पुत्र! एक मार्ग तो है जो तुम लोगों ने चुना है शस्त्रों से अन्याय का दमन और एक मार्ग वह है, जो मैंने चुना है; कला की साधना काव्य और संगीत क साधना ताकि शब्द की शक्ति से लोगों के मन में अन्याय का विरोध जगाया जा सके। न्याय का पक्ष समझाया जा सके। यदि प्रत्येक व्यक्ति तुम्हारे समान अन्याय का सशस्त्र विरोध करेगा और कोई भी व्यक्ति मेरे समान शब्द शक्ति से न्याय और अन्याय का भेद उचित और अनुचित का अंतर नहीं बातयेगा तो अन्याय का विरोध धीरे–धीरे शस्त्र–शक्ति के कारण केवल विरोध में दिल जायेगा। इसलिये यह आवश्यक है पुत्र कि हम जन सामान्यको उसके अधिकारों के प्रति सचेत बनाएं उसे उसके शत्रु शोषक–वर्ग की पहचान कराये उसे मानवता के उच्चादर्शों का ज्ञान दे और साथ ही साथ उनमें अन्याय विरोध की भावना जाग्रत करे। ताकि जब कभी वो विरोध करे मात्र विरोध ही वह यह जाने कि कहाँ शक्ति शस्त्र और हिंसा का प्रयोग करना है कहाँ उनका प्रयोग अनुठित है।"[28]

वाल्मीकि के उर्पयुक्त कथन के माध्यम से उपन्यासकार ने साहित्य और कला की महत्ता का प्रतिपादन किया है। वस्तुतः नरेन्द्र कोहली ने शस्त्र और शास्त्र के बीच शक्ति और ज्ञान के बीच, शास्ति और सौन्दर्य के बीच समन्वय उत्पन्न करने की चेष्टा करके अपनी प्रयोगधर्मिता का परिचय दिया है।

वाल्मीकि के अन्तेवासी सुखर के कुर्तुमन्वया का राक्षसों द्वारा वध कर दिया गया था। इस बात को लेकर सुखर के मन में राक्षसों के प्रति घृणा–भाव जाग्रत रहता है। उसने स्वीकार किया कि इस घृणा के कारण वह अपने अपने मन में सात्विक भावानें को प्रतिष्ठित नहीं कर पाता। वस्तुतः अहिंसा और क्षमा का मार्ग सामान्य सामाजिकता से बहुत ऊपर उठकर है। समाज की शोषण तथा अन्याय से मुक्त रखने के लिए अहिंसा और क्षमा की नहीं, घृणा, प्रतिशोध और हिंसा की आवश्यकता है। महान विचार और उच्च संस्कृति अन्याय के विरुद्ध कठोर हुए बिना बहुत समय तक जीवित नहीं रह सकती है। इस सार्वभौम प्रासंगिकता की प्रस्तुति के लिए उपन्यासकार ने लक्ष्मण से कहलवाया है–

"अन्याय के विरुद्ध मन में जो घृणा उपजे वो काव्य शास्त्र में चाहें सात्विक भाव न हो; किन्तु ऐसी घृणाा पूज्य है, पवित्र है? अलौकिक है। उसे तो कण–कण संचित करना चाहिए। यदि संसार में ऐसी घृणा न रहे तो अत्याचार से कौन लड़ेगा।"[29]

चित्रकूट में राम ने मन्दाकिनी के पार किसी अन्य आश्रम का आभास हुआ। राम मन्दाकिनी पार करके अतब उस आश्रम में गए तो ज्ञात हुआ कि कुलपति कालकार्चाय है। वो बहुत ही सर्तक और गोपनीय ढ़ंग से वहाँ निवास कर रहे है। यद्वपि वाल्मीकि रामायण में रामायण तथा राम कथा मूलक किसी अन्य ग्रन्थ में कालकाचार्य और उनके आश्रम का कोई उल्लेख नहीं मिलता। एक बद्ध कुलपति के आश्रम का वर्णन

वाल्मीकिय रामायण में अवश्य मिलता है, जो राम के सशस्त्र उस क्षेत्र में आ बसने के कारण राक्षसी आतंक के भय से बहुत से ऋषियों के साथ अश्व मुनि के आश्रम के लिए प्रस्थान कर गये थे। कदाचित इन्हीं बृद्ध कुलपति को उपन्यासकार ने कालकाचार्य नाम दिया है। बृद्ध कुलपति ने राम से का कहा—

"त्वं यदाप्रभृति ह्यस्मिनाश्रमे तात वर्तसे
तदाप्रभृति रक्षासि विप्रकुर्वन्ति तापसान

महाभारत —13/484/अयोध्याकाण्ड

कालकाचार्य ने राम को समझाते हुए कहा कि यह स्थान राक्षसीय शक्तियों का प्रभाव स्थल है। राम ने यहाँ आकर भूल की है। साथ में सीता जैसी सुन्दर पत्नी लाकर तुमने और बड़ी भूल की है। फिर जो तुम शस्त्र धारण किए हुए ही उन्हें देखकर राक्षस और भड़केगे। ये शस्त्र तुम्हारी रक्षा की तुलना में तुम्हारा अनिष्ट ज्यादा करेगें। इस बीच लक्षमण तथा वाल्मीकि शिष्यों मुखर आदि के सहयोग से चार पर्णकुटियों का निर्माण हो चुका था। एक राम और सीता के लिए, एक लक्ष्मण के लिए, एक शास्त्रागार के लिए और एक अतिथियों के लिए।

राम यहाँ संगठनात्मक योजना के अनुसार क्षेत्रीयजनों को शस्त्रास्त्र को प्रशिक्षण देना प्रारम्भ करते हैं। सीता के सम्पर्क में सुमेधा नामक स्थानीय तरुणी आती है, जो बताती है कि वह जिस गाँव में रहती है, वह गाँव राक्षसों के प्रभाव में हैं उसका परिवार तुंभरण नामक राक्षस का दास

है, जो पहले किरात था किन्तु राक्षसों की सहायता के कारण उनकी कृपा से वह समृद्ध और स्वामी बन गया। जब राम को सुमेधा के संबंध में सीता से जानकारी मिली कि सुमेधा अपनी दासता के लिए भाग्य को कारण मानती है अतः उसे न तो अपनी स्थिति का खेद है न तुंभरण के अन्याय के प्रति प्रतिशोध की भावना! राम के माध्यम से उन्यासकार ने समर्थों की चालाकी से बनाई गई शोषणवाद व्यवस्था–नियति के प्रति अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है–

"राम ने कल सीता से सुमेधा के विषय में सुना था। उन्होंने ध्यान से उसे देखा उसके मुख मण्डल पर कोई विषाद, दुख, परिताप अथवा चिंता नहीं थी, जो कि इस दमन के कारण स्थायी रूप से होनी चाहिए थी।.................कदाचित उस दमन को उसने अपनी जीवन निधि के रूप में अंगीकार कर लिया था, उसे अपनी नियति मान लिया था। .... नियति..........राम को लगा, इस शब्द को साक्षात्कार होते ही उनके मन में एक भंयकर झंझावात उठ खड़ा होता है।..................किसने फैलाया है यह विष सारे समाज में? राम के प्रयास वहाँ के निवासी संगठित तथा शस्त्रास्त्र में निपुण होने लगे। यद्यपि राक्षसों नें हिंसक उत्पात मचाया –विशेष रूप से उन दिनों–जब राम को मनाने भरत ससैन्य चित्रकूट आए थे और राम का उस काल खण्ड में वनांचल के ग्रामवासियों सम्पर्क टूट सा गया था। अन्त में राम उस क्षेत्र के राक्षसी आतंक को समाप्त करने में सफल होते हैं। उस क्षेत्र के वासियों को इतना आत्मबल तथा

कौशल प्रदान करते हैं कि अब राम के बिना भी वे राक्षसों से लोहा ले सकेंगे।

चित्रकूट–प्रवास काल में इन्द्रपुत्र जयंत द्वारा तुलसी के मानस में सीता के पैर में कोवा बनकर चोंच मारने का वर्णन है।"[31] वाल्मीकि रामायण में जयंत की घटना का उल्लेख नहीं है। नरेन्द्र कोहली ने 'अवसर' खण्ड में स घटना की पूर्वख्यात चमत्कारिक प्रस्तुति के स्थान पर– जैसे जयंत ने कौवे का रूप धारण करके सीता के चरण में चोंच का प्रहार किया था– सामान्य लौकिक प्रस्तुति की है।

"उसका स्वर सुनकर सीता चौंक उठीं। कैसा कर्कश स्वर था इस पुरुष का एकदम बनैले कौए का–सा। और आँखें भी वैसी ही थीं– छोटी–छोटी तीखी और गोल। कौवा एकदम कोवा–सोचा सीता ने–"[32] लोकश्रुति के अनुसार ही उपन्यासकार ने जयंत की एक आंख फोड़कर अन्यायी की शरणागति पर क्षमा करने की भारतीय परम्परा को उचित ही नकार दिया–

"राम मुसकराए' मुझे मेरे आदर्शों में बांधने की कुटिलता मत करो पापी पिता के पापी पुत्र! क्षत्रिय शरण में आए व्यक्ति की रक्षा अवश्य करता हू; किन्तु मैं तुम जैसे नीच की शरण याचना को षड्यन्त्र मानता हूँ।"[33]

कालकाचार्य राक्षसी उत्पात से डर कर अश्वमुनि आश्रम जाते समय राम को एक बार पुनः समझाते हैं कि वह राक्षसों के समर्थक नहीं

किन्तु अपनी भीरू स्वभाव के कारण उनसे युद्ध नहीं कर सकते। वे राम को भी चित्रकूट छोड़ देने का सुझाव देते हैं। आश्रम के कुछ ब्रह्मचारियों ने राम के शौर्य तथा न्यायवृत्ति के प्रभाव में आकर कुलपति के साथ न जाने का निश्चय कर लिया था। सीता ने जब उनमें से एक शशांक से पूछा कि तुम कुलपति के साथ ही क्यों नहीं चले जाते तो शशांक के उत्तर में श्रेष्ठ मानवीय चरित्र की स्थापना का आभास मिलता है–

'हम पांचों इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि दूसरों की दया पर निर्भर अपमानित जीवन जीने से अपने सामर्थ्य के बल पर जिया गया, तेजस्वी जीवन कहीं श्रेष्ठ है हमने पाया है कि न्याय के संघर्ष से दूर भागना, उसे टालना, न्याय को टालना है।"[34]

अन्त में राम के निर्णायक निष्कर्ष के अनुसार मानवता और दानवता के बीच कोई समझौता नहीं हो सकता। मानवता और दानवता के बीच केवल एक ही रिश्ता हो सकता है शत्रुता का–संघर्ष का–

"हम लोग प्रायः इस विषय में एकमत हैं कि राक्षसो के अन्याय, असमानता तथा शोषणपूर्ण चिन्तन, दर्शन और जीवन विधि से हमारा समझौता नहीं हो सकता। उनसे हमारा संघर्ष अनिवार्य है।"[35]

'अवसर' उपन्यास में दशरथ, वसिष्ठ, कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सुमंत, कुब्जा, गुह, भारद्वाज, वाल्मीकि, जयंत आदि पौराणिक पात्र है। जबकि भानुमित्र, पुष्कल, युधाजित, विपुल, सुमेधा, तुंभरण,कालकाचार्य, चेतन, मुखर, संकल्प मुनि, अश्विन, कुवलय,

शशांक तथा उद्घोष आदि काल्पनिक पात्र हैं। पौराणिक घटनाओं को युग–सापेक्ष बनाकर उपन्यासकार न कल्पना का सहारा लेते हुए सामाजिक आदर्शों की प्रतिष्ठा के लिये दार्शनिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की है।

रामायण पर आधारित उपन्यास माला के तीसरे भाग 'संघर्ष की ओर' उपन्यास में भी आधुनिक सन्दर्भों का प्रस्तुतीकरण किया गया है। इस उपन्यास के माध्यम से कोहली ने नारी मुक्ति के आंदोलन को वाणी दी है। राम चित्रकूट छोड़कर अनसूया तथा सुलक्ष्ण मुनि के आश्रमों से गुजरते हुए शरभंग ऋषि के आश्रम पहुँचते हैं। किन्तु वहाँ उन्हें कुटिया के सामने चबूतरे पर एक चिता में कुलपति शरभंग का आग की लपटों से भस्म होता शरीर दिखाई पड़ता है। ऋषि के शिष्य ज्ञानश्रेष्ठ ने बताया कि उन्हें राम की प्रतीक्षा थी। ज्ञानश्रेष्ठ ने राम के पूछने पर यह भी बताया कि खान श्रमिकों को संगठित और शस्त्रास्त्र में प्रशिक्षित करने की चिन्ता किया करते थे। उन्हें इस उपक्रम में बार–बार श्रमिकों से सम्पर्क हेतु श्रमिक–बस्तियों में जाना पड़ता था। तीन दिन पहले सहसा आश्रम में देवराज इन्द्र पधारे। ऋषि को प्रसन्नता हुई के इन्द्र के आने से समस्याओं का समाधान होगा। किन्तु इन्द्र के जाने के बाद ऋषि बहुत उदास हो गये थे। उनके स्वगत कथन में उन्यासकार ने समाज के कुख्यात ही नहीं प्रभावशाली और सुख्यात व्यक्तियों का शोषणवादी और बर्बर स्वरूप उजागर करने की चेष्टा की है–

"........................न्याय का क्या होगा..................धनवान और सत्तावान

तो पहले से रक्तपात कर रहा है, बुद्धिजीवी भी उन्हीं के षड्यन्त्र में सम्मिलित हो जायेगा, तो फिर दुर्बल और असहाय मानवता का क्या होगा? ये कमकर ये श्रमिक, ये दास—ये इसी प्रकार मरते खपते रहेंगे, पशुओं के समान जीवन काटेंगे? मानव की श्रेणी में ये कभी नहीं आयेंगे?. ....शायद कभी नहीं। कोई नहीं चाहता ये मनुष्यों का जीवन जीएं। रावण बुद्धिजीवियों को खा जाता है, इन्द्र उन्हें खरीद लेता है।...........[36]

याम सिद्धाश्रम, ताड़कावन, गौतम आश्रम, चित्रकूट और अब दण्डकवन के प्रत्यक्ष और स्मृतिवर्ती परिदृश्यों पर चिन्तन करने लगते हैं। उन्हें लगता है एक तरफ तो आतंकवाद के माध्यम से राक्षस वृत्ति समाज के बुद्धिजीवियों और श्रमजीवियों का दारुण शोषण कर रही है दूसरी ओर समाज का सम्मानित उच्चवर्ग भी धूर्तता तथा चालाकी के हथकंडो से वही दुष्कृत्य कर रहा है। उन्हें लगातार हृदय को हिला देने वाली घटनाओं का अटूट क्रम दिखाई पड़ता चला आ रहा है—

"......................एक ओर यातना तथा पीड़ा, और दूसरी ओर उत्पीड़न एवं क्रूर अत्याचार का सर्वव्यापी साम्राज्य, उनके सामने था। वे लोग अन्याय, अत्याचार, शोषण और उत्पीड़न के इतने विविध और भयंकर रूप देख चुके थे कि वह एक स्वयं सिद्ध तथ्य के रूप में उनके सामने था जिसमें उनके लिए नया कुछ नहीं था, किन्तु फिर भी प्रत्येक नई घटना से आत्मा जैसे हिल उठती थी और एक भयंकरतर अत्याचार का रूप उनके सामने साकार हो उठता था। इस नृशंस अमानवीयता की कही

कोई सीमा नहीं ....''37

वस्तुतः उपन्याकार ने शोषणवादी व्यवस्था के विरुद्ध समाज में विखरे तत्त्वों परिस्थितियों तथ्यों, व्यवस्थाओ तथा परस्थितियों को पहचानने की चेष्ठा की है। यद्यपि राम कथा मूलक इन उपन्यासों की विषय वस्तुयें प्रख्यात और पौराणिक है किन्तु नरेन्द्र कोहली ने वर्तमान परस्थियों में इन अमानवीय शोषणवादी प्रगतियो का चेहरा वेनकाब किया है। राम और उनकी जीवनीय घटनाओं और राम के कृत्यों के माध्यम से लेखक अत्याचार के विरुद्ध प्रकाश का संर्घष प्रस्तुत कर रहा है। एक तरफ राम का उज्ज्वल चरित्र है। जिन्होंने त्याग का उच्चतम उदाहरण प्रस्तुत करते हुये अयोध्या की सत्ता ठुकरा दी। जहाँ भी सामान्य जनता अथवा श्रम संस्कृति पर उन्हें चोट लगती दिखाई पड़ती है वही उनका कोमल हृदय कठोर हो जाता है। और आततायी शक्तियों के विरुद्ध वह संर्घष करने के लिए विवश हो जाते है। सीता लक्ष्मण तथा ऋषि आश्रमों से उनके साथ हुये मुखर आदि राम के इस अभियान के सहायक ह। रावण बुद्धजीवियों और श्रमजीवियों के शोषण तथा उत्पीड़न करने वाली व्यवस्था का मुखिया है। वो निरन्तर इन्द्रिय भोगों में लिप्त रहने वाली संस्कृति का सूत्रधार है। वो पूरे विश्व में राक्षस संस्कृति का प्रभूत्व स्थापित करना चाहता है। लड़का, सुमारु मारिच खरदूषण आदि रक्ष संस्कृति के प्रतिनिधि हैं विश्वामित्र तो दूरदर्शी मनीषि है जो बरावर राक्षसी वृत्ति के क्रमशः फेलते जा रहे जाल को पहचान लेते है। और व्यक्तिगत शक्ति

और सुखों को महत्त्व ना देते हुये विश्व में फेलती जा रही राक्षसी शक्ति के विरुद्ध उठ खड़े होते है। वे राम को इस महान कार्य के लिए प्रेरित ओर दीक्षित करते है। राम की बौद्धिक रूप से इस कार्य के लिए परिपुष्ठ करते है। साथ ही विविध दिव्यास्त्र प्रदान करके राम की इस समर के लिए संक्षम बनाते है। एक वर्ण ऋषियों मुनियों का ही जो तप और चिन्तन के द्वारा भावी संस्कृति को विकसित और लोक जीवन को उच्च्व जीवन मूल्यों की शिक्षा देता है। इन ऋषियों में बुद्धजीवी कालकाचार्य जैसे भी है। जो राक्षस संस्कृति के विरोधी और यदि संस्कृति के समर्थक है। किन्तु उनकी प्रकृति इतनी भीरु है कि ये राक्षसी उत्पातों का विरोध नही कर सकते । वाल्मीकि अपने आश्रमों की दौड़कर उन स्थानों की और पलायन कर जाते है। जहाँ राक्षसी उत्पात से वे सुरक्षित रह सके। एक वर्ग ऐसा भी है पुज्य तथा प्रभावशाली स्थान रखता है। ये वर्ग राक्षसी प्रवृति का तो विरोधी है। किन्तु विविध भोगों में रक्त रहने का आदि ह। ये वर्ग बहुत धूंत और चालाक हैं यह विविध षड़यन्त्रों और कूटयोजनाओं के माध्यम से श्रमजीवि वर्ग के श्रम का शोषण करता है। सुन्दर नारियों के शरीर का शोषण करता है तथा बुद्धजीवियों की अधिक श्रमताओं का शोषण करता है। इन्द्र ऐसे ही वर्ग के प्रमुख है। राम युगीन विसंगतियों के विनाश के लिए ही समर्पित है। वो जिन क्षेत्रों से गुजरते है; वहाँ के शोषण तन्त्र का नाश होता जाता है। इन स्थानों में राम शोषण मुक्त, भययुक्त, सम्पन्न तथा अन्याय विरोधी सामाजिकता का सृजन

करते चलते है। दण्डक वन मार्ग पर विराध से उनका सामना होता है। जिसमें अपना परिचय राक्षस के रूप में दिया था। राम–लक्ष्मण से परास्त होने के पश्चात विराध ने बताया की में गन्धर्व हूँ, वह गन्धर्व से राक्षस कैसे बना राम पर विराध का कथन इस सत्य का उद्‌घाटन करता है कि राक्षसी संस्कृति में भोग की सुविधा तथा संगठन की सुरक्षा के कारण राक्षस बनना सामान्य व्यक्ति के लिए लाभ दायक था और इसी के कारण दिनो–दिन राक्षसी प्रभाव का विस्तार होता जा रहा था, "शरीर से में अत्यन्त बलशाली था। इस क्षेत्र में कोई वैधानिक सुसासन नहीं है। जीविका के बने बनाये उपयुक्त साधन नहीं है। कुछ विखरे हुये आश्रम है और स्थान स्थान पर स्थापित राक्षसों के छोड़े बड़े स्कन्धावार। वे प्रत्येक उचित व्यवस्था को नष्ट करते रहते हैं। मरे लिए, दो में से एक ही माग था–या तो किसी आरम में जा रहता। स्वयं को ज्ञान–विज्ञान में दीक्षित करता और आस–पास के क्षेत्र में राक्षसों के विरुद्ध जन सामान्य का स्वायन्त्र शासन स्थापित करने का संघर्ष करता। पर इससे मुझे क्या मिलता? भूख, पीड़ा, चिन्ता ....और अंत में मृत्यु............मैंने दूसरा मार्ग अपनाया।............अपनी देह के सुख के लिए लूट–पाट, हत्या–बलात्कार। इसमें वैभव था, विलास था, सुख था। ....रावण से मेरा कोई सीधा संबंध नहीं । उसके सहायकों ने वैसे ही ऐसा वातावरण बना रखा है कि पग–पग पर राक्षसों और राक्षस नीति का जन्म और पालन पोषण हो रहा है। न्याय का शासन न हो, तो प्रत्येक समर्थ व्यक्ति अपने आप राक्षस

बनता जाता है, और असमर्थ जनता उसका भक्ष्य पदार्थ ....उन्होंने राक्षस बनने में मेरी सहायता की और मैंने राक्षस बनकर उनकी।''[38]

इस कृति में ऋषि मण्डाणी क कथा है। कोयले की खदान के बारे में वो उनको सावधान करते थे कि यदि अनियमित खुदाई होती रही तो कभी भी खान की दीवार खीसक सकती है। और धरती भीतर धस सकती है। मण्डाकणी ने खान के मालिकों को भी समझाना चाहा लेकिन मण्डाकणी की किसी ने एक ना सुनी। एक दिन मण्डाकणी की भविष्यवाणी सत्य सिंध हुयी। खान की दीवारें खीसक गयी। कोपला खोदने वाले सारे मजदूर दब कर मर गये। इस धरना के बाद मण्डाकणी खान गय। श्रमिकों के कुलपति हो गये। अब श्रमिक मण्डाकणी की माध्य के अनुसार कुछ भी करने को तैयार रहते। इस स्थति की सूचना खान के मालिक अग्निपुत्र को मिली। उसने श्रमिकों को डराया धमकाया और फुसलाया भी श्रमिक माण्डवणी के प्रभाव से मुक्त नहीं हुये। अब अग्निपुत्र अपने कुलपति दवे अग्नि के पास पहुँचा और अपनी निषत्ति बतायी। देव अग्नि स्वयं माण्डवणी के पास गया। उसका खूब सत्कार किया। अपने साथ दूर–दूर के देशों के भ्रमण पर ले गया। उसके लिए सुन्दर भवन बनवाया। उसे पाँच सुन्दरी अपस्रायें तथा अत्याधिक धन भेंट में दिया। तब से माण्डकणी के विमध उसकी जमान बन्द हो गयी। इस कथा के माध्यम से कि उपन्यासकार पौराणिकता के निष्कर्ष से वर्तमान काल में विकास नेताओं और बुद्धजीवियों पर कयष किया है।

इन स्थतियों में गुजरते हुये और सामाजिक संरचना को सुधारते हुये राम अगस्तय आश्रम में पहुँचते है। अगस्त तथा उनकी पत्नी लोयामुद्रा में राम ओर उनके साधियों का हार्दिक स्वागत किया। महर्षि अगस्त ने राम को बताया।

"मैं चालीस वर्षों में यहा बैठा हूँ। राम! तुम दस वर्षों की बात कर रहे है। मैंने वाताये और इनवाश को समाप्त कर दिया; मैंने कालकेपों को नष्ट किया। किन्तु उससे क्या हुआ? राक्षस समाप्त हो गये या राक्षस शक्ति समाप्त हो गई? उल्टें वे और अधिक फैल गये और उन्होंने उन स्थानों को खोज निकाला जहाँ मनुष्य और भी निर्बल और भी निर्धन तथा और भी असंगठित है। परिणामतः पहले से भी अधिक संख्या और मात्रा में मानव पीड़ित है।"[39] अगस्त बताते है कि तुम्हारे द्वारा परास्त राक्षस जनस्थान में रावण के सेनापतियों के स्थान पर जा पहुँचे है यह स्थान लंका से बहुत दूर नहीं है। रावण की बहन सूफनका सामराज्य की ओर से समस्त अधिकारों से युक्त वहाँ विद्यमान है। खर और दूषण, जैसे रावण के कुटूमंत्री जन इस सेना के सेनापति है। तुम्हारा कौन सा संगठन इस सेना का आक्रमण रोक पायेगा? वह ग्राम अथवा बन में वसने वाला राक्षसों का रोला नहीं जिसको तुमने इतनी आसानी से मार भगाया। ये रावण की राक्षसी व्यवस्था की सेना है, जो दशों दिशाओं में राक्षसो को जन्म देती है और उनको संरक्षण देती है। राम अति विश्वास से अगस्त से कहते है।

"मैं राम हूँ।ऋषि वर और राम अपने किसी दायित्व से नहीं भागता.........................विनाश लीलीा तो होगी किन्तु आप मेरा विश्वास करें कि इस विनाशलीला में राक्षस पक्ष अपने अत्याचारों का दण्ड पायेगा। जिन विनाश की कल्पना में आप आसंकित है। जनसामान्य कोई विनाश नहीं हो पायेगा। उनके मरने के नहीं, ढ़ग से जीने के दिप आ रहे है।"[40]

"अन्त में निष्कर्षतः उपन्यासकार राम के मुख से जनशक्ति का उद्घोष करवाता है।

"मै। राम हूँ। राम जन न्याय के पक्ष में बढ़ता है तो शिच, बह्मा, विष्णु जैसे नामों से नहीं डरता शक्ति इन नामों में नहीं जन सामान्य में है। मेरा बल जनसामान्य का कोई शस्त्र कोई आश्रम कोई सेना या सामराज्य जनता से बढ़कर शक्तिशाली नहीं है। आप मेरा विश्वास करे। राम मिट्टी में से सेनाये गढ़ता है क्यों कि वह केवेल जन सामान्य का पक्ष लेता है[41] और न्याय का प्रयत्न करता है।..........

"इस उपन्यास में राम, सीता, लक्ष्मण, सरभंग, सुतीक्ष्ण, मंत्री अनसूया, विराध, अगस्त्य जो पारग्रहा पौराणिक है। धर्म वृत्तियाँ, माण्डकणी अग्निमित्र, देव अग्नि मुखर काल्पनिक पात्र है।

"रामायण पर आधारित उपन्यास माला का चौथा भाग (साक्षात्कार) नाम से प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में राम का पंचवटी में अपनी पर्णकुटि बनाने, जटायु से तथा राक्षस स्कन्धावार की प्रमुख तथा रावण की बहन सूपनखा द्वारा राम का देखा जाना है। राम के पौरुष में तेजस्वी

रूप देखकर सुपणखा राम पर मोहित हो जाती है। कोई सीघ्रगामी रथों को भिजवाकर लंका से सौन्द्रय विशेषण और सौन्दर्य प्रसाघन सामग्री मगाती है। वह अपने अदभूत संगार मे राम को स्वयं पर मोहित कर लेना चाहिती है। उसके इस प्रयास का राम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा राम ने सुफनखा से श्रण्ठर कहा कि कामख्यान काकाहावान को स्वीकार करना मेरी संस्कृति में अनैतिक है। राम के द्वारा तिरिष्कृत होकर सुपनचखा प्रतिशोध की भावना लेकर दूसरे दिन राम के पास नयी योजना के साथ प्रस्तुत होती है। अब की बार राम से मिलकर वह रावण की निन्दा और विमिठता को प्रसन्सा करती ह। राम के समझ वो स्वयं को राक्षस नीति की निधि सि0 करना चाहती है तदुपरान्त वो फिर राम के समझ काम प्रस्ताव रखती है जिसे राम ये कहकर टाल देते है कि वो विवाहित है प्रयासवस वो उसे लक्ष्मण के पास भेज देते है। लक्ष्मण के पास पहुँच कर प्रणय निवेदन करती है। लक्ष्मण सुपनखा के प्रस्ताव को स्वीकार कर ही कैसे सकते थं उसी बीच सुपणखा को पर्णकुटी के द्वार से निकलती सीता दिखाई पड़ती है। सीता के सौम्य सौन्दर्य को देखकर सुपणखा अवाक् रह जाती है और सोचती है कि इसी सुन्दरी के कारण राम और लक्ष्मण ने हमाने काम प्रस्तावों का अनादर किया है। उसे सीता पर बहुत क्रोध आता है और हाथ में कटार लेकर वो सीता पर आक्रमण कर देती है। लक्ष्मण सीता की रक्षा करते है। कि वैसे तो तू प्राण दण्ड की अधिकारिणी है किन्तु स्त्री होने के कारण मैं तुझे प्राण दण्ड तो नहीं दूगा। किन्तु तुझे

दण्ड अवश्य मिलेगा। लक्ष्मण ने अपने कौशल से उनकी नासिका और कानों पर खड्ग की एक–एक सूक्ष्म रेखा बना दी जिनसे रक्त की बूदें टपकने लगी। पौराणिक सन्दर्भो। तथा लोक सुरति के अनुसार लक्ष्मण सुपणखा के नाम और कान काट लिये थे। किन्तु उपन्यासकार नरेन्द्र कोहली ने इसका पुनः व्याख्यान करते ज्ये उसके नाक और कान पर केवट खडग से सुलभ रेखा खींची। सुपणखा की एक परिचारिका मणी राम से मिल जाती है और सुपणखा के स्कन्धावार को प्रत्येक सूचना देती है वो राक को बताती है कि सुपणखा के अपमान से क्रुध खर चौदह हजार राक्षस सैनिकों द्वारा राम पर आक्रमण करना चाहता है। किन्तु सुपणखा मात्र सीता का अपहरण चाहती है उसने ये भी बताया कि सुपणखा की योजना के अनुसार सीता को उपहार में रावण को दे दिया जायेगा। युद्ध के परिणाम के रूप में वो राम को बन्दी अथवा दास के रूप में चाहती है। संरक्षण सुतित तथा अगस्त के आश्रमों से जनवाहिनीया आ चुकी थी। इनकी संख्या तीन साहस्त्र थी सुपणखा सीता के अपहरण के प्रयास में सफल नहीं हुयी। राम की जनवाहिनी से तिस्या और खर की सेनाओं का विकट युद्ध हुआ। युद्ध में तृिस्या और खर का बध हुआ इस पराजय से क्षुब्ध होकर सुपणखा तीव्रगामी रक्ष में सवार होकर लंका के लिए चल पड़ी। लंका पहुचकर सुपणखा ने रावण को समझाया ही पंचवटी में राम ने जनसेना को विरूबध कर रखा है। अतः वहाँ उससे युद्ध उचित नहीं रावण के ये पूछने पर कि वो लंका युद्ध करने क्यों

आयेगा। तो सुपणखा कहती है। कि उसकी अति सुन्दर पत्नि सीता का अगर तुम अपहरण कर लाओं तो वो अपनी पत्नि के उद्धार के लिए लंका अवश्य आयेगा। सीता के अपहरण की रावण ने योजना बनायी और उसने मारिच की भूमिका भी सुनिचित कर दी मारिच रावण की माँ का चचेरा भाई था रावण मारिच से इसलिए कुलूद था की सिद्धआश्रम सं भागकर उसे राम से प्रतिशोध लेने का प्रयास करना चाहिये था, रावण के पास आना चाहिए था, किन्तु वो एक कुटिया में सन्यासी वेश में रहकर छोटी मोटी ठगी करके अपनी जीवन गुजार रहा है। इस स्थान पर लेखन ने अपनी कल्पना से पौराणिक कथानक में परिवर्तन किया है। रामायण तथा अन्य रामकथा मूलक सन्दर्भों में सीता हरण के लिए मारिच का कपरस्रोवण मृग बनना दर्शाया गया है। किन्तु नरेन्द्र कोहली ने साक्षात्कार उपन्यास में मारिच को एक सन्यासी के रूप में प्रस्तुत किया है। वो राम के आश्रम में जाकर अपने आश्रम के ब्रह्मचारियों को राक्षसों द्वारा खा डाले जाने का करुण वर्णन करता है। वो जिस आसन पर बैठा है। वो स्वर्ण व मणियों से निर्मित प्रतीत होता है। जन किसी को विश्वास नहीं होता है कि स्वर्ण कान्ति वाले मृग होते है। तो सन्यासी वेश में ऐसा मृग देखा है। राम मारिच के साथ उस मृण के आखेट के लिए चल देते है। मारिच शीघ्रता से चलता हुआ राम को जंगल में दूर ले जाता है। और स्वयं उनकी नजरों से ओझल होकर हा–लक्ष्मण, हा–लक्ष्मण का आर्त घोष करता है। राम की समझ में आत है कि ये दुष्ट जान बूझकर मुझे

कुटी से दूर ले आया है। सीता के दुराग्र से बाध्य होकर पौराणिक वर्णन के साथ ही लक्ष्मण को राम की सहायतार्थ बन में जाना पड़ता है। किन्तु यहाँ पर पौराणिक व्याख्यान में परिवर्तन किया गया ह। लक्ष्मण रेखा नहीं खीची और ना सीता कुटी में अकेली रही। बाल्मीकि ऋषि के आश्रम का ब्रह्मचारी और सब जन सेना का गुप्तचर मुखर भी कुटीया में सीता के साथ रह जाता है। इस उपन्यास में जटायू को गिद्ध नहीं बल्कि वनाचल में रहने वाली जनजाति के न्यायप्रिय संघर्षशील द्वंद्व योद्धा के रूप में दिखाया गया है। इस उपन्यास में जटायू को बुलाने जाते हुये मुखर पर लम्बी डाढ़ी लम्बे केश बाला खड्गहस्त रावण पेड से कूद कर मुखर पर आक्रमण करता है। सीता को रावण पर बाण चलाते दिखाया गया है। सीता के तीरों को बचाता हुआ रावण लक्ष्मण की कुटी में प्रवेश कर गया। सीमा ने सोचा कि लक्ष्मण की कुटी में प्रबिष्ट इस दस्यु के कारण शस्त्रागार असुरक्षित हो जायेगा। वह धनुष लिए बाहर निकली और लक्ष्मण के इस निर्देश का–"भाभी! कुटिया के भीतर रहियेगा। खुले में मत आइएगा। शस्त्रागार से दूर मत जाइएगा" का उल्लंघन किया। इस स्थल पर लेखक पौराणिक आख्यान में वर्णित 'लक्ष्मण रेखा' के स्थान पर उपर्युक्त प्रस्तुत करके पारम्परिक कथा वस्तु में नया प्रयोग किया है। आगे का घटनाक्रम परम्परागत प्रकार का ही ह।। बस जटायु को गीध के स्थान पर बृद्ध योद्धा के रूप में रावण से सुद्ध करते वीरगति को प्राप्त होते दिखाया गया है। पुष्पक विमान के स्थान पर गधे जैसे घोड़ों से जुता

विशाल तथा तीव्रगामी रथ दिखाया गया है। राम,सीता, लक्ष्मण, खर, सिशिरा, रावण, मारीचि, विभीषण, मन्दोदरी, जटायु, शरमा, त्रिजटा, पारम्परिक पात्र है जबकि मणि, मुखर, बज्रा काल्पनिक पात्र हैं।

इस उपन्यासमाला का पाँचवा भाग 'पृष्ठभूमि' नाम से प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में सीताहरण के उपरान्त राम का सीता की खोज में दक्षिण दिशा की ओर यात्रा करते हुए सुग्रीव के साथ मैत्री की कथा है। उपन्यासकार ने पौराणिक कथावस्तु के कई जगह पर रूपान्तरित करके उसे तर्कपूर्ण तथा विश्वसनीय बनाया है। रामायण में वर्णित इस कथा को कि दुन्दुभी नामक महिष रूप धारी असुर को मारकर बाली ने उसे फेंक दिया था, जिसका शव एक योजन दूर मतंग बन में गिरा था, और कुछ रक्त की बूंदे मतंग ऋषि पर भी गिर गई थीं[42] कुपित होकर मतंग ऋषि ने शाप दे दिया, कि जिसने खून के छीटे डालकर मेरे निवास स्थान इस वन को अपवित्र कर दिया है, वह यदि इस वन में प्रवेश करेगा तो उसका वध हो जायेगा।[43] नरेन्द्र कोहली ने वाली को अंधविश्वासी निरूपित किया है–

" वैद्य को किसी प्रकार टालकर उन्होंने शगुन–विचारक की ओर देखा............प्रभु! शगुन–विचारक ने बहुत गम्भीर स्वर में कहा–भैंसा यम का वाहन है। उससे युद्ध उचित नहीं था। युद्ध के लिए जाने के पूर्व अपने अग्न–विचार भी नहीं करवाया। समय अच्छा नहीं था।................ और प्रभु शगुन–विचारक रुक गया।

कहो वाली ने थके से स्वर में आदेश दिया मतंग–वन की दिशा, युद्ध अभियान के लिए सर्वथा अशुभ है। युद्ध के लिए उस दिशा में कभी न जाएं। उस दिशा में विजय नहीं पराजय है।......और

और!

मृत्यु की संभावना है–शगुन–विचारक बहुत धीमें स्वर में बोला।"[44]

मतंगवन में स्थित ऋष्यमूक पर्वत पर मतंग ऋषि के शाप के कारण नहीं शगुन–विचार के परामर्श के कारण वालि ने कभी न जाने का निश्चय किया था।

उपन्यासकार ने इस कृति में कथा क्रम की डोर को थामे रक्खा है कि अपनी स्वतन्त्र तार्किक मेधा तथा युगीन अभिज्ञानुसार कथावस्तु में परिवर्तन किये हैं। रामायण के अनुसार जब राम सुग्रीव से बाली से बैर का कारण पूछते हैं तो सुग्रीव बताते हैं कि बाली पहले उनसे बहुत स्नेह करता था। किन्तु उन दिनों दुन्दुभी (महिष के रूप में वह दैत्य जिसे मारकर वाली ने मतंगवन में फेंक दिया था) का बड़ा भाई तथा मयदानव का पुत्र (मन्दोदी का भाई) मायावी नामक तेजस्वी दानव रहता था। एक स्त्री के कारण वाली का उससे बहुत बड़ा बैर हो गया था।[45] एक दिन आधी रात के समय ज सब लोग सो गए, मायावी ने नगर द्वार पर गर्जते हुए वाली को युद्ध के लिए ललकारा। मायावी की ललकार सुनकर वाली वेगपूर्वक घर से निकले। अन्तःपुर की स्त्रियों तथा उन्हें मैंने बहुत रोका परन्तु महावली वाली हम सबको परे हटा कर नगर द्वार के बाहर निकल

पड़े। मैं भी गदा लेकर उनके पीछे–पीछे चला। हम दोनो भाइयों को देखकर मायावी भयभीत होकर भाग खड़ा हुआ। हम दोंनो ने उसका पीछा किया तब भागता हुआ एक विल में प्रवेश कर गया। वाली ने मुझसे कहा कि मै। इस विल में प्रवेश करके जब तक मायाव का बध करके वापस न लौटूँ तुम विल के द्वार पर मेरी प्रतीक्षा करना। एक वर्ष से अधिक समय तक मैं विल–द्वार पर भाई की प्रतीक्षा करता रहा। तदन्तर दीर्घ काल के पश्चात उस बिल से सहसा फेन सहित रक्त की धारा निकली। असुर के गरजने की आवाज भी आ रही थी, किन्तु मुझे मेरे भाई का स्वर सुनाई न दिया। मैंने अपने भाइ को मारा गया समझकर उस बिल के मुख पर एक चट्टान अड़ा कर नगर भाग आया,जहाँ सभी के आग्रह पर मैंने अपना राज्याभिषेक करवा लिया। एक दिन वाली जीवित नगर में लौट अया और मुझ पर कुपित होकर न केवल मुझे निकाल दिया बल्कि मेरी पत्नी रूमा को भी मुझसे छीन कर अपनी पत्नी बना लिया। हे राघव मैं तभी से ऋष्यमूक पर्वत पर निवास कर रहा हूँ क्योंकि शापवश वह यहाँ नहीं आ सकता।[46]

किसी कथानक को कुछ परिवर्तन के साथ नरेन्द्र कोहली ने पृष्ठभूमि उपन्यास में प्रस्तुत किया ह। मायावी नामक व्यक्ति सुग्रीव, संवाद और हनुमान आदि के लक्ष्य अपराधी प्रकृति का था। किन्तु सुग्रीव की अनुपस्थित में बाली ने उसे महासामन्त उपधि से विभूषित किया है। यदि सुग्रीव की दृष्टि से वो स्त्रीयों का अपहरण तथा मादक पदार्थो के

क्रय विक्रय से जुड़ा हुआ अपराधी था। बाली और अंगद ने उसे बड़े जोखिम के बाद बन्धक बनाया था। बन्दिप व्यवस्था में जब वह बाली के सामने प्रस्तुत किया जाता है। तो बाली ने पूछा कि किस अपराध में बन्दि बनाये गये हो मायावी ने उत्तर दिया मैं हुये मन को विराम देने अपराध में बन्दि बनाया गया हूँ। बाली को लगा कि किसी के मन को विराम देना तो कोई अपराध नहीं ओर यदि तुमने मेरे धके वैद्ध मानुगा और अगर तुम ऐसा ना कर सके तो कठोर दण्ड सुनिश्यित है इस पर मायावी मुस्कुराया ''और कहा; सम्राट एक बार सेवा का अवसर दे यदि आपके मन को विश्राम न मिले तो मृत्यु दण्ड दे। और यदि सम्राट के मन को विश्राम मिले सम्राट स्वस्थ हो तो सेवक को किषकिन्धा पर अपना व्यापार फैलावे की कृपा करें।''[47]

मायावी मादक पदार्थों तथा अल्का नाम की सुन्दरी के माध्यम से बालि के मन को सन्तुष्ठ कर देता है। प्रसन्न होकर बालि ने न केबल उसे किषकिन्धा में व्यापार की खुली छूट देता है। महासामन्त की उपाधि से भी विभूषित करता है। परिणाम स्वरूप किषकिन्धा में अपहरण मादक पदार्थों का सेवन तथा वेश्यावृति जैसे अपराधों की बाढत्र आ गयी। बालि की कृपा के कारण मायावी पर कोई आच न आयी तभी एक दिन अल्का के भावाश पर बालि ने दुखद सूचना प्राप्त की कि मायावी उसकी अनुपस्थिति में अल्का से निरन्तर शारीरिक सम्बन्ध बनाये रखता है। लेकिन तब तक मायावी नगर प्राचीन के टुटे हिस्से से कूद कर भाग गया

होता है। मायावी को खोज शुरू हो गयी। एक दिन सुग्रीव ने बाली को सूचना दी की मायावी मिल गया है और ऋषि मोघ पर्वत की गुफा में छिपा है। बाली सब उन विचारक को बुलाता है। जो अब भी अपने मत पर दृढ़ था कि सम्राट को उस दिशा में नहीं जाना चाहिए। मकरद्वन्ध सम्राट के लिए काल स्वरूप है। लेकिन बालि मायावी पे इतना क्रुद्ध था कि बाली दगा लेकर प्रासाद से बाहर निकला और अल्का के भवन के समुख आकर रूक गया। बाली को विश्वास था कि अल्का से मिलने के लिए अवश्य आयेगा। ऐसा ही होता। मायावी के आने पर बाली और सुग्रीव ने दण्डधरो के साथ उसे घेर लिया किन्तु मायावी बड़ी चपलता से दण्डधरों का घेरा तोड़ता हुआ भाग निकला और उसका पीछा करता हुआ बाली और सुग्रीव भी भागे। लेकिन टूटी प्राचीन से कूदकर मायावी जंगल में अदृश्य हो गया। वर्षों बाद मायावी का उसके साथियों समेत बध करके जब बाली किषकिन्धा लौटा तो टूटी प्राचीन को बनी हुयी तथा राज सिंहासन पर सुग्रीव को बैठा देखकर बाली आगबबूला हो उठा। बाली के भय से सुग्रीव ऋषि मृग पर्वत पर चला गया। क्योंकि सगुन विचारक परामश के कारण बाली अतन वन की दिशा काल दिशा मानता था। उपन्यासकार ने इस उपन्यास में कई निथक पेडे है। जैसे हनुमान का पवनपुत्र होना तथा बालि का इन्द्र पुत्र होना।

"इतनी ऊर्जा, इतनी स्फूर्ति, तथा गति तथा कर्या तत्परता को देखकर लोगों ने इस केशरी पुत्र का नाम पवनपुत्र रख दिया है, जैसे

मानव न होकर साक्षात पवनका पुत्र हो...............''[48]

बाली की इन्द्रपुत्र कहने के मिथक को भी तोड़ा गया है। बाली वासना में अत्यधिक रूचि रखने के कारण ही मायावी जैसे दुष्कर्मों को 'महासामन्त' जैसी दुर्लभ उपाधि प्रदान करता है। अलका को उपहार में देकर मायावी ने बाली की वासना को प्रज्ज्वलित किया था। इन्द्र का भी आख्यान भोग–वासना में निरत रहने के रूप में किया जाता है। इस उपन्यास के 'दीक्षा' भाग में अहल्या के साथ इन्द्र का व्यभिचार उसकी वासना लोलुप प्रकृति का परिचारक है। भोग के प्रति अति आसक्ति से ही वे इन्द्रपुत्र कहलाये न कि किसी इन्द्र नामक देवराज के वे पुत्र थे ''किष्किंधा के जन सामान्य ने उनका भी ऐसा ही एक नाम रखा था– इन्द्रपुत्र। स्त्रियों के प्रति उनके आकर्षण के कारण जनता ने विलासी देवराज का पुत्र घोषित कर दिया था।''[49]

इस उपन्यास का शेष कथा प्रवाह पारम्परिक रूप से आगे बढ़तार है। बाली के बध के बाद किष्किंधा के सिंहासन का सुग्रीव का राज्याभिषेक होता है। अंगद को युवराज बनाया जाता है। तारा सुग्रीव की रानी बनती है। बहुत काल हो जाने पा भी सुग्रीव जब सीता–खोज की अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने की दिशा में कोई उपक्रम नहीं करते तो राम को क्रोध आता है। वे स्वयं नगर में प्रवेश नहीं करते अतः लक्ष्मण को किष्किंधा भेजते हैं। लक्ष्मण विलास मे रत सुग्रीव को बहुत फटकराते हैं–

'' हाँ! मैं हूँ। लक्ष्मण क्रोधपूर्वक बोले। अग्नि को साक्षी रख तुमसे

मैत्री करने वाले राम का भाईं। निर्लज्ज मद्यप! आज मुझे तुझे पहचानने में भी असुविधा हो रही है। भूल गया जब तू बाली के भय से वृको द्वारा प्रताड़ित भयभीत मृग के समान अपने प्राणों की रक्षा के लिए मारा मारा फिरता था। भैया राम ने तुम्हारी सहायता न की होती तो बाली ने तुम्हें भूमि पर पटक कर अपने पगों की ठोकरों से मांस का लोंदा बना दिया होता..................................तेरी रक्षा और सहायता करने वाले तेरे उसी मित्र आर्य राम ने कहलवाया है कि सुग्रीव! फिर मार्ग से बाली गया था, वह मार्ग अभी बन्द नहीं हुआ है।''[50]

रामायण में प्रायः यही भाव व्यक्त हुआ है।[51]

इस प्रकार लेखक ने महाकाव्यीय अख्यान का ही पुनराख्यान किया है।

लक्ष्मण के इस प्रकार सुग्रीव को फटकारने पर तारा सुग्रीव के पक्ष में तर्क रखती है कि बहुत बिपत्ति भोगने के बाद सुग्रीव का भोग का अवसर मिला है अतः भोग में रत होना स्वाभाविक ही है–

''किसी वस्तु से वंचित हो जाने के कारण उसके पति सामान्यतः हमारा आकर्षण बढ़ जाता है। कठोर प्रवास के पश्चात यदि सुग्रीव के मन में विलास के प्रति आसक्ति जाग गई है, तो सम्राट से कोई अक्षम्य अपराध नहीं हो गया है। राम ने यदि सुग्रीव की सहायता की है तो सुग्रीव भी राम की सहायता करेंगे[52]–इस प्रसंग में इसी प्रकार वर्णन रामायण में मिलता है–

सुदुःख शयितः पूर्व प्राप्येदं सुखमुत्तमम्

प्राप्तकालं न जानीते विश्वामित्रो यथा मुनिः[53]

(पहले इन्होंने बड़ा दुख उठाया है। अब इस उत्तम सुख को पाकर ये इसमें ऐसे रम गए कि इन्हें प्राप्त हुए समय का ज्ञान ही नहीं रहा। ठीक उसी प्रकार जैसे विश्वामित्र मुनि को मेनका में आसक्त हो जाने के कारण समय की सुध–बुध नहीं रह गई थी।)

उपकारं कृतः वीरो नाटययं विस्मृतः कपिः

रामेण वीर सुग्रीवो यदन्यैर्दुष्करं रस [54]

(वीर लक्ष्मण! श्री राम ने इनका जो उपकार किया है, वह युद्ध में दूसरों के लिए दुष्कर है। उसे इन वीर कपिराज ने कभी भुलाया नहीं है।)

अन्त में पारम्परिक कथा के अनुसार ही सुग्रीव सभी वानर–भालुओं के साथ सीता की खोज के निर्देश देते हैं। इस उपन्यास में राम, लक्ष्मण, बाली, सुग्रीव, अंगद, सुषेण, तारा, दुन्दुभी, मायावी हनुमान, रूमा, जाम्बवान पौराणिक पात्र हैं तथा अलका, शिल्पी काल्पनिक पात्र है।

रामायण पर आधारित नरेन्द्र कोहली की उपन्यासमाला का छटा भाग सुग्रीव द्वारा चारों दिशाओं में खोजी दल भेजने से प्रारंम्भ होता है। संभावना के अनुसार सीता को लंका में होना चाएि था, जो दक्षिण दिशा में समुद्र पार थी। अतः दक्षिण दिशा के खोजी दल में प्रमुख नायकों को भेजने का निर्णय किया गया। युवराज अंगद के नेतृत्त्व में हनुमान, जाम्बबान, तार आदि प्रमुख क्षत्रप सीता की खोज के लिए एक माह की

अवधि लेकर चल दिए। सुग्रीव का निर्देश था, कि सीता की खोज एक माह में कर ली जाय। असफलता की स्थिति में खोजी दल के सदस्यों को मृत्यु दण्ड दिया जायेगा। रामायण के अनुसार ही कथा–प्रवाह आगे बढ़ता रहता है। जंगलों और पर्वतों में सीता की खोज करते–करते अंगद का बीस सदस्यीय खोजी दल भूख–प्यास तथा थकान से हतोत्साहित हो जाता है। निराशा की स्थिति में यह दल एक गुफा में प्रवेश करता है। इस गुफा के भीतर निर्मल जलयुक्त सरोवर तथा अनेक फलदार वृक्ष दिखाई पड़ते है। सभी फल खाकर जल पीकर जानने की चेष्टा करते हैं कि गुफा के भीतर सरोवर तथा फलदार वृक्षों का रहस्य क्या है तथा यहाँ स्थित भव्य प्रासाद किसका है। रामायण में इसका चमत्कारिक वर्णन है–

ततस्तम् देशमागम्य सौम्या वितिमरं वनम्

ददृशु कांचनान् वृक्षान् दीप्तवैश्वानरप्रभान्

रामायण 24 / 814 किष्किंधाकाण्ड

(तदन्तर उस अंधकार से प्रकाशपूर्ण देश में आकर उन सौम्य वानरों ने वहाँ अंधकार रहित वन देखा, जहाँ के सभी वृक्ष सुवर्ण निर्मित थे और उनसे अग्नि के समान प्रकाश निकल रहा था।)

नीलवैदूर्यपर्णाश्च पद्मिनी पतगैर्वृता

महद्मिः कांचनैर्वृसैर्वृता बालार्कसंनिमैः

जातरूपमयैर्मत्स्यैमहभिश्चाथ पंकजैः

नलनीस्तत्र ददृशुः प्रसन्नसलिलायुताः

रामायण 28—29 / 814 / किष्किंधाकाण्ड

(वहाँ नील वैदूर्यमणि की सी कांतिवाली पद्मलतायें दिखाई देतीं थी, जो पक्षियों से आवृत थीं। कई ऐसे सरोवर भी देखने में आए, जो बालरुण—सी आभा वाले विशाल स्वर्ण—वृक्षों से घिरे हुए थे। उनके भीतर सोने की बड़ी—बड़ी मछलियाँ शोभायमान थीं। वे सरोवर स्वर्ण—कलमलो से सुशोभित तथा जल से भरे हुए थे।)

कांचनानि विमानानि राजतानि तथैव च

तपनीय गवाक्षाणिमुक्ता जालावृतानि

हेमराजतभौमानि वैदूर्य मणिमन्ति च

ददृशुस्तत्र हरयो गृहमुख्यानि सर्वशः

—रामायण 30—31 / 814 / किष्किंधाकाण्ड

(वानरों ने वहाँ सब ओर सोने—चाँदी के बने हुए बहुत से श्रेष्ठ भवन देखे, जिनकी खिड़कियाँ मोती की जालियों से ढ़कीं थीं। उन भवनों में सोने के जंगले लगे हुए थे। सोने—चाँदी के ही विमान भी थे। कोई घर सोने के बने थे, तो कोइ चाँदी के। कितने ही गृह पार्थिव वस्तुओं से निर्मित हुए थे। उनमें वैदूर्य मणियां भी जड़ी गयी थी।)

नरेन्द्र कोहली ने रामायण के इस चमत्कारिक वर्णन को सामान्य तथा संभव रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

" गुफा का अंत किसी वन में नहीं हुआ था। जहाँ वे लोग खड़े थे, वह किसी भव्य प्रसाद का मानव—विकसित उपवन प्रतीत हो रहा था।

अनेक प्रकार के फलों तथा फूलों के पेड़—पौधे, पुंजीभूत रूप में वहाँ विद्यमान थे और उनके मध्य स्वच्छ जल की एक पुष्करिणी विद्यमान थी। भूख तथा प्यास से संज्ञा—शून्य से होते वानरों ने अपना चिंतन स्थगित कर पुष्करिणी में से थोड़ा थोड़ा जल पिया और तब वे फूलों के वृक्षो की ओर उन्मुख हुए।"[55]

इस अद्‌भुद स्थल पर खोजी दल को बृद्ध किन्तु तप से कान्तिमान नारी का दर्शन होता है। इस तापसी ने बताया—" यह प्रासाद किसी समय मय दानव ने अपनी सम्पूर्ण विद्या के चमत्कार से अपने निवास के लिए निर्मित किया था। वस्तुतः वनो तथा पर्वत श्रेणियों की ओट में यह उसकी विहार स्थली थी। सागर तट पर यह सुन्दर प्रासाद कदाचित् उसने स्वयं को गुप्त रखने के लिए बनाया हो।यहाँ वह अपनी अप्सरा पत्नी हेमा के साथ रहा करता था, किन्तु हेमा के कारण ही इन्द्र से उसका विग्रह हुआ। हेमा यहाँ से चली गई। मय भ यहाँ अधिक दिनों तक नहीं रहा। अपने बच्चों को लेकर जाने कहाँ चला गया। मैं उन दोनों के समय की, इस प्रासाद की संरक्षिका हूँ। उन दोनों में से कोई भी अब तक इस ओर नहीं लौटा है। और मैं इस प्रासाद की संरक्षिका बनी, उनके आने की प्रतीक्षा कर रही हूँ।"[56]

मैं इस प्रासाद की संरक्षिका मेरूसावर्णि की कन्या स्वयं प्रभा हूँ।[57]

स्वयंप्रभा तापसी ने कृपा करते हुए खोजी दल के लिए पास में ही बसे गाँव के अपने परिवार से भोजन की व्यवस्था करवाई। स्वयंप्रभा के

परिवार तथा कुछ दूर स्थित गाँव का वर्णन रामायण में नहीं है। खोजी दल की प्रार्थना पर स्वयंप्रभा उसे गुफा से बाहर निकलने का मार्ग बताती है, और यह दल समुद्र तट पर जा पहुँचता है। रामायण के अनुसार स्वयंप्रभा इस गुफा से निकलना असंभव बताती है किन्तु अपने तप के प्रभाव से खोजी दल की आखें बन्द करवा कर चमत्कारिक रूप से उसे सागर तट पर पहुँचा देती है–

"जीवता दुष्करं मन्ये प्रविष्टेननिवर्तितुम्
तपसः सुप्रभावेण नियमोपर्जितेन च
निमीलियत चक्षूंसि सर्वे वानपुंगवा+
नहि निष्क्रमितुं शक्यमनिमीलित लोचनैः
वानरास्तु महात्मानो हस्तरूद्धमुखास्तदा
निमेषान्तरमात्रेण बिलादुत्तारितास्या।"

(मैं समझती हूँ, जो एक बार इस गुफा में चला आता है, उसका जीते जी यहाँ से लौटना बहुत कठिन हो जाता है। तथापि नियमों के पालन और तपस्या के उत्तम प्रभाव से मैं तुम सभी वानरों को इस गुफा से बाहर निकाल दूँगी। श्रेष्ठ वानरो! तुम सब लोग अपनी अपनी आखें बन्द कर लो। आंख बन्द किये बिना यहाँ से निकलना असंभव है। इस प्रकार उस समय हाथों से मुँह ढ़क लेने के कारण उन महात्मा वानरों का स्वयंप्रभा ने पलक मारते गुफा से बाहर निकला दिया।

रामायण 26–27–29 / 818 / किष्किंधाकाण्ड

गुफा से बाहर निकल कर और जाम्बवान से यह जान कर कि सम्राट सुग्रीव द्वारा सीता के खोज के लिए दी गई एक मास की अवधि समाप्त हो चुकी है–सारे खोजी दल में भय व्याप्त हो गया। अंगद को पूर्ण विश्वास हो गया कि सुग्रीव इस असफलता के लिए अवश्य प्राण दण्ड देंगे। अंगद को यह भ आशंका है कि सुग्रीव का उनके प्रति व्यवहार छल पूर्ण है। वह तो राम की कृपा से मुझे युवराज बना दिया गया अतः सुग्रीव का हित तो मेरे मर जाने में ही है–

"उसे धर्मरत राजा कहते हो।.............मैं तो पहले ही समझ रहा था कि सुग्रीव ने मेरे साथ धूर्तता की है।..वह जानता था कि दक्षिण दिशा में कितनी कठिनाइयाँ हैं, इसलिए मुझे इस दल का नेता बना दिया और मामा तार को भी साथ कर दिया। वह चाहता ही था कि इन बीहड़ वनों और पर्वतों में भटक–भटक कर हम अवधि का समय व्यतीत कर, असफल किष्किंधा लौटें, ताकि वह हमारा अपराध सिद्ध कर हमारा बध कर सके। मेरा सदा का वैरी सुग्रीव।..................................मेरा किष्किंधा जाना व्यर्थ है। मैं अपना बध करवाने के लिए किष्किंधा जाना नहीं चाहता।....................मैं यही उपवास करके अपने प्राण त्याग दूँगा।"[58]

तार का प्रस्ताव था कि उपवास से प्राण देने की बजाय अंगद का राज्याभिषेक किया जाय और गुफा के प्रासाद में रहकर सुख से जीवन बिताया जाय। इस बाद–बिवाद का स्वर मानव की गृद्ध वनजाति के जटायु के बड़े भाई सम्पाती के कानों में पहुँचता है। सम्पाती कहता है–

"कौन है रे कहाँ, जो प्रायोपवेशन कर रहा है? ....यदि मर ही रहे हो तो मरे निकट आकर मरो, ताकि तुम्हें खाकर मैं जी उठँ?[59] सम्पाती ने खोजी दल को बताया कि सीता लंका में हैं। अब हनुमान ने अंगद को समझाया कि सुग्रीव उससे वास्तविक स्नेह करते हैं। और अब जब निश्चित है कि सीता लंका में है तो रावण के अत्याचार के विरूद्ध युद्ध करना कर्त्तव्य है। रही सुग्रीव द्वारा दी गई अवधि की बात तो सीता की खोज के बाद उसका कोई अर्थ नहीं रह जाता। विलम्ब से भी यदि सीता की खोज हो सकी तो यह पुरस्कारी के योग्य कार्य होगा।

हनुमान के समझाने पर अंगद तथा सभी सदस्यों में प्रायोपवेश का हठ छोड़ दिया। जाम्बवान के प्रोत्साहन पर हनुमान महेन्द्र पर्वत पर चढ़ कर समुद्र में कूदकर तैरते हुए लंका के लिए प्रस्थान कर गए। पौराणिक सन्दर्भों के समान ही मैनाक पर्वत, सुरसा तथ सिंहिका से संबंधित घटनाओं का उल्लेख हैं किन्तु लेखक ने चमत्कारिक तथा अंसभव अंशों को परिवर्तित करके उन्हें मानवीय बना दिया है। हनुमान जब लंका में प्रवेश कर रहे थे तो पारम्परिक मान्याताओं के अनुसार ही प्रवेश द्वार पर किसी स्त्री रक्षिका के द्वारा टोका गया रामायण और मानस में इस स्त्री का नाम लंकनी बताया गया है। इस उपन्यास में भी मुख्य द्वार–रक्षिका ने हनुमान को ललकारते समय अपने पद और नाम का परिचय दिया है। "कौन है तू? स्त्री ने पुनः धमका कर पूछा धूर्त। मुझे धोखा देना चाहता है– नगर–रक्षिका लंका राक्षसी को। दिनभर में तेरे जैसे यहाँ सहस्रो आते

हैं। हाथ का भरपूरवार हनुमान के मुख पर किया..................इसके पूर्व की लंका दूसरा प्रहार करती, हनुमान ने इपटकर उसकी भुजा पकड़ी और ऐंठते चले गये। लंकनी ने कराहकर सिसकी भरी–उसकी भुजा में कदाचित पीड़ा होने लगी थी, क्या कर रहा है रे देहाती! वह धीरे से बोली, तुझे नगर में प्रवेश करना है जा चला जा। तेरे जैसे कितने ही कंगले यहाँ रोटियाँ कमाने आते है।''[60]

लंका पहुँचकर यथा सम्भव सारे भवनों को हनुमान ने सीता की खोज की दृष्टि से देखने का प्रयास किया। किन्तु रातभर भटकने के बाद भी वह सीता के दर्शन नहीं कर सके सबेरा हो गया और हनुमान राजमहल की प्राचीर कूदकर बाहर आये। स्थान–स्थान पर लंका के सुरक्षा सैनकों द्वारा उन्हें रोका–टोका गया। पारम्परिक सन्दर्भों के अनुसार हनुमान को सीता का पता विभीषण ने दिया था। किन्तु इस उपन्यास में हनुमान ने लंका के निवासियों से पूछताछ करके यह पता लगा लिया कि इस समय अशोक वाटिका विशेष सुरक्षित कर दी गई है। हनुमान ने अनुमान लगाया कि अशोक वाटिका की सुरक्षा बढ़ाने का उद्‌देश्य वहाँ सीता काप्रवास हो सकता है। अशोक वाटिका के पथ पर निषेध आज्ञा ने हनुमान के इस अनुमान को और भी दृढ़ किया। विशेष सावधानी बरतते हुए हनुमान ने अशोक वाटिका में प्रवेश किया। उन्होंने इधर–उधर दृष्टि फेरी। निकट ही अशोक के सघन वृक्षों का झुरमुट सा था। हनुमान ने तत्काल उस झुरमुट में प्रवेश किया वह स्पष्ट सुन रहे थे कि कुछ

महिलाए आपस में बातचीत कर रही थी हनुमान महिलाओं के सर्वाधिक निकट के वृक्ष पर स्वयं को छिपाकर बैठ गए हनुमान ने देखा–

"थोड़ी दूर पर एक छोटी सी कुटिया थी। उसके द्वार पर एक अशोक वृक्ष था, जिसके चारों ओर ईटों का एक वृताकार चबूतरा बना हुआ था और उस पर कोई स्त्री बैठी हुई थी। उसने एक साधारण श्वेत साड़ी पहन रखी थी। सिर को उसने उसी साड़ी से भली प्रकार ढक रखा था; किन्तु इधर–उधर से कुछ केश बाहर निकले हुए थे। समझना कठिन था कि उसने एक वेणी कर रखी थी या सारे केश खुले थे।"[61] हनुमान ने अनुमान लगया सम्भवतः यही देवी वैदेही है। उसी समय कुछ पुरुष प्रहरियों ने प्रवेश किया। तदुपरान्त महाराजाधिराज रावण के जयजयकार के बीच रावण आया रावण का वेष इस समय सूर्य और श्रृंगार दोंनो के ही उपयुक्त लग रहा था उसकी कटी में एक विकराल खड्ग बधा हुआ था। पारम्परिक सन्दर्भो के अनुसार ही रावण ने अनुकूल होने के लिए सीता को फुसलाया–धमकाया। सीता अपने सतीत्व से कण भर भी नहीं डिगी सीता रावण को फटकारते हएु कहती हैं–"सारे संसार में तेरा क्या एक भी हितू नहीं, जो तुझे समझा सके कि यह तेरे नाश का मार्ग है..... ....मानो शरीर पाकर भी उससे तू केवल पशु सुख का भोग कर पाया है। वह ग्रहण में नहीं त्याग में है दूसरों के सुख के लिए स्वयं को खपाकर पाया गया सुख ही मानव–सुख है।"[62] अन्त में रावण सीता को धमकी देकर यह कहते हुए–'आज फिर निराश और असफल लौट रहा

हूँ। दो मास की अवधि और है। एक मास के पश्चात पुनः याचना करने आऊँगा। तब भी तुम ना मानी तो अवधि समाप्त होने पर स्वयं अपने हाथों से तुम्हारा वध करूँगा।"[63]

इसके बाद पारम्परिक कथानक के अनुसार ही त्रिजटा का प्रसंग तो आया लेकिन परिवर्तित रूप में। यहाँ त्रिजटा अपने भयानक स्वप्न का उल्लेख नहीं करती बल्कि सब को सो जाने का आदेश देती है। सीता को इधर–उधर अकेले टहलते देखकर हनुमान ने अनुमान लगा लिया कि सारी राक्षसिनियाँ सो चुकी है। वे अशोक वृक्ष के ऊपर से ही धीरे से सीता को 'देवी वैदेही' कह कर सम्बोधित किया। सीता के निकट आने पर हनुमान ने राम द्वारा दी गयी मुद्रिका नीचे गिरा दी। सीता के ये पूछने पर कि वो कौन है। इसका उत्तर हनुमान ने अति विनम्रता से दिया–"मैं राम दूत हनुमना हूँ माता।"[64]

सीता से राम को दखने के लिए अभिज्ञान चिह्ना चूणामणि लेकर हनुमान सीता से आज्ञा लेकर राम को संदेश देने वापस लौट पड़े। रास्तें में उन्हें कदलिवन दिखाई पड़ा। केले के फलों से लदे हुये बड़े–बड़ें पेड़ देखकर हनुमान को अपनी भूख याद आ गई। अन्तिम बार उन्होंने तापसी स्वयंप्रभा द्वारा भोजन किया था। तब से हनुमान भूखे ही थे। हनुमान न केलों का आहार प्रारम्भ कर दिया। पेट भरने पर हनुमान को वानर वृत्ति जागी और वह वृक्षों को तोड़ने और झकझोरने लगे। वाटिका के रक्षक भागकर आये और हनुमान के कृत पर नाराज होकर उन्हें बन्दि बनाना

चाहा। हनुमान ने उन्हें मार भगाया और वाटिका के फाटक से बाहर निकल आये बाहर किंकर सेना ने उन्हें घेर लिया उन्होंने उनसे परिग ओर शूल छीनकर भयानक प्रहार किया और किकत सेना को आतंकित कर दिया। तभी रावण पुत्र अक्षकुमार रथारूढ़ होकर हनुमान को बन्दी बनाने आया। हनुमान से युद्ध करतु हुये अक्ष्यकुमार मारा गया। अन्त में रावण का प्रतापी पुत्र मेघनाथ हनुमान को दण्डित करने आया और पारम्परिक सन्दर्भों में वर्णित बह्मफांस से हनुमान को बन्दी बनाने के स्थान पर मेघनाथ ने युक्ति पूर्वक मल्लों द्वारा विभिन्न दिशाओं से रस्से फिकवाकर हनुमान को बन्दी बना लिया। रावण की सभा में हनुमान और रावण के बीच में स्थाभाविक प्रश्नोत्तर हुये। जब रावण ने हनुमान का बध करवाना चाहा तो विभिषण ने हस्तक्षेप करते हुये कहा कि यह वानर दूत है और दूत अवध्य होता है। अन्त में निश्चय किया गया कि वानर कि पूछ में आग लगा दी जाये आग लगाने के पूर्व इसे पूरे नगर में घुमाया जाये। अवसर पाकर हनुमान ने लंका के विभिन्न भवनों विस्फोटक सामग्रियों तथा सैनिक आदि से महत्त्वपूर्ण केन्द्रों पर आग लगाकर एक प्राचीर से कूद कर समुन्द्र मार्ग से तैरते हुये वहाँ आ गये जहाँ अंगद आदि उनकी अधीरता से प्रतीक्षा कर रहे थे। वापसी में किष्किंधा के राजकीय मधुवन में अंगद की आज्ञा से सारे सदस्य फल–फूल खाने के लिए टूट पड़े। अंगद तो वृक्षों की तोड़–फोड़ भी करने लगे। जब सुग्रीव के मामा तथा मधुवन के प्रमुख रक्ष्ज्ञक दधिमुख ने अंगद को टोका तो

स्वभाव के विरुद्ध अंगद ने उनकी वर्जना को नहीं माना। बड़प्पन के अधिकार से जब दधिमुख ने अंगद के कुछ चांटे मारे तो अंगद ने मर्यादा का उल्लंघन करते हुए उनकी पिटाई कर दी।

लेखक ने यह पारम्परिक कथा का निर्वाह करते हुए भी अंगद के आचरण के माध्यम से मनोवैज्ञानिक प्रयोग करना चाहा है। अंगद के अमर्यादित आचरण के पीछे उसके अवचेतन का यह आक्रोश था कि सुग्रीव ने उसकी माँ तारा से विवाह कर लिया है। वह उसके पिता का हत्यारा है तथा राम के दबाव से सुग्रीव ने उसे युवराज बनाया है।

इस उपन्यास माला का सातवां तथा अन्तिम भाग 'युद्ध' में राम का सुग्रीव की सेनाओं तथा जनवाहिनी के साथ लंका पर आक्रमण का वर्णन है। कथा के सन्दर्भ में पारम्परिकता का निर्वाह किया गया है किन्तु अवसर मिलते ही लेखक समकालीन समस्याओं, जीवन–मूल्यों नैतिकताओं तथा निजस्विनी दृष्टि से यथार्थ के स्वानुभूत स्वरूपों को कथामाला में सुगुम्फित कर देता है। लेखक ने चमत्कारिकता से सदैव बचना चाहा है। औचित्य तथा सम्भव को दृष्टिपथ रखता उपन्यासकार अपने अभिप्रेत की सिद्धि के लिए कथा के पारम्परिक रूप में परिवर्तन भी कर देता है। समकालीन परिस्थितियों के लिए उपयुक्त सिद्धान्त तथा जीवन दर्शन स्थान–स्थान पर अनुस्यूत हैं। मूल कथा तो इतनी ही है कि राम ने सागर तट पर पहुँचकर नल नील के कौशल से रामेश्वरम् से लंका तट तक सेतु बंधवाया। नल नील के प्रभाव से पत्थर पानी पर तैराने लगते

थे। लेखक को पत्थरों को पानी में तैराने बाली बात विश्वसनीय नहीं लगी और उसने जलयानों से पत्थर लदवाकर अपेक्षाकृत कम गहरे समुद्री भाग पर उन जलपोतो को प्रवाहित करवाया। एक के ऊपर एक जलपोत चढ़ते गए और सेतु के रूप में समुद्र में मार्ग तैयार हो गया। इन पोतों को उस स्थान पर डुबाया गया था, जहाँ के बाद गहरी जल राशि की अपेक्षा स्तिया मात्र (उथला जलस्थल) था। तीन दिन के उपक्रम के उपरान्त राम ने सागर से यह रास्ता छीना था। इसी को पारम्परिक सन्दर्भो में कहा गया है कि राम द्वारा अग्निवाण के संघान के भय से समुद्र ने राम को रास्ता दे दिया था। सागर और स्तिया के बीच की सीमा को खोज कर डुबोई गई सिलाओं से उसका उभार जल की मर्यादा से ऊपर हो गया था। स्तिया भाग को भी सिलाओं से पाट दिया गया था और सेना उतरने लायक मार्ग निर्मित हो गया।

रावण और उसके पार्षदों को विश्वास हो नहीं था कि निर्वासित कंगला तपस्वी राम और बन्दर–भालुओं की उसकी साधनीहीन सेना सागर पार भी कर सकेगी। रावण की विशेष सभा में वर्तमान समस्याओं की चर्चा के दौरान कुम्भकर्ण रावण को उसकी काम शक्ति के कारण फटकारता है और कहता है–''आप कामाग्नि में जल रहे हैं, तो क्या सारे राक्षसों को युद्धाग्नि में जला डालेंगे आपने बिना किसी से परामर्श किए यह अनुचित कार्य कर डाला है। किसी की पत्नी के हरण का क्या अर्थ?,[65]

रावण कुंभकर्ण को अनुनय पूर्वक समझाता है। ''कुंभकर्ण! तुम राक्षस होकर भोग का विरोध करते हो..........बड़े भाई के सुख–भोग में नैतिकता की अड़चनप खड़ी कर रहे हो।''[66]

मन्त्रीमहापार्श्व रावण की नीति तथा कृत्य का समर्थन करता है और कहता है–''युद्ध हम सम्हाल लेंगे। आप अपनी कामना पूरी कीजिए। आप इस विश्व सुन्दरी सीता के साथ रमण कीजिए। वह आपकी शैया पा आरूढ़ होना नहीं चाहती, तो राक्षस धर्म के अनुसार उसके साथ बलात्कार कीजिए।''[67]

विभीषण राज्यसभा में महापार्श्व के कथन का सहन नही कर पाता है और कहता है–''कैसी राजसभा है यह जहाँ मंत्री अपने राजा को पर स्त्रियों के साथ बलात्कार करने की मंत्रणा देते हैं।....................................
.कभी सोचा है कि प्रतिशोध की भावना से भारी वानर सेना, तुम्हारी स्त्रियों के साथ कैसा व्यवहार करेगी।''[68]

विभीषण की प्रतिकूल सम्मति से सेनापति प्रहस्त ने रावण को प्रसन्न करने की चेष्टा करते हुए कहा–

''राजकुमार विभीषण भय के मारे आत्मविश्वास खो चुके हैं। ये राम की सेना से डर गए हैं, किन्तु हम किसी से नहीं डरते। हमारी सेनाओं देवों, यक्षों, गंधर्वों, नागों, दैत्यों, दानवों असुरों–सभी को परास्त किया है, ये बेचारे तो साधारण वानर हैं।''[69]

विभीषण नीति की बात कहते रहते हैं। इस पर रावण–पुत्र

मेघनाद उनका उपहास करता है, तो विभीषण उसे भी फटकार देते है–"तुम उद्दण्ड और अविनयी हो मेघनाद! नीति का पक्ष लेकर यदि तुमने अपने पिता के अनैतिक कार्यों का विरोध किया होता तो मैं समझता तुम विवेकी पुरुष हो..........................तुम मोह तथा स्वार्थवश पिता की हाँ में हाँ मिलाकर ऊपर से मित्र दिखते हुए भी महाराजाधिराज रावण से शत्रुता कर रहे हो।"–[70]

विभीषण ने नीतिवचन तथा उसके द्वारा पुत्र का फटकारा जाना रावण सहन नहीं कर पाता। उसके धैर्य का बांध टूट जाता है–"बस बहुत हो चुका विभीषण! शत्रु अथवा कुपित विषधर के साथ रहना पड़े तो व्यक्ति रह ले, किन्तु उस भाई के साथ कदापि न रहे, जो मित्र कहलाकर भी शत्रु की सेवा कर रहा हो...............................जाओ, चले जाओ, और यथाशीघ्र लंका के बाहर निकल जाओ। लंका में तुम जीवित नहीं रह पाओगे। जाने से पहले लंकेश्वर से प्रसाद लेते जाओ.................................
..............और इसके पूर्व कोई कुछ समझ पाता कि रावण के मन में क्या है, उसने सिंहासन से उठकर विभीषण को लात दे मारी............. ।"[71]

रामयण के अनुसार रावण की अपमान जनक बाते सुनकर विभीषण हाथ में गदालेकर अन्य चार राक्षसों के साथ उछल कर आकाश में चले गए।[72] नरेन्द्र कोहली ने रामकथा के चमत्कारिक तथा असम्भव अंशों में सर्वत्र परिवर्तन किया है। विभीषण के प्रसंग में भी उन्होंने उसका उछलकर आकाश में जाने और आकाश से रावण का फटकारने के

रामायण के वर्णन को परिवर्तित करके विभीषण का भूमिमार्ग से ही स्वाभाविक निष्कासन वर्णित किया है।

विभीषण राम का शरणागत हो जाता है और राम कूटनीतिक प्रयोग करते हुए विभीषण का राज–तिलक कर लंका की जनता को संदेश देना चाहते हैं कि लंका में किसी बाहरी व्यक्ति की सत्ता नही होगी तथा वहाँ की जनता युद्धोपरान्त की लूट–पाट से सुरक्षित रहेगी। राम विभीषण के समझ स्पष्ट घोषणा करते हैं–

''युद्ध की अनिवार्य स्थितियां छोडकर लंका तथा लंकावासियों का नाश नहीं किया जाएगा और विजय के परिणाम स्वरूप लंका को न दण्डित किय जाएगा, न कोई बाहरी शासन आरोपित किया जाएगा। यह युद्ध रावण को उसके पापों का दण्ड देने तथा लंका को उसके अत्याचारों से मुक्त करने का साधन होगा।''[73]

रावण का विशेष कूटनीतिक दूत राम की सेना में आकर राम और सुग्रीव के बीच पुनः सुग्रीव और अंगद के बीच फूट डालने की चेष्टा करता है, किन्तु सुग्रीव तथा अंगद की राम के प्रति समर्पित भावना के कारण वह असफल लौटकर रावण को राम की शक्ति तथा सौजन्य से परिचित कराकर उसे संधि कर लेने का सुझाव देता है, जिसे रावण स्वीकार नहीं करता।

सुक के जाने के वाद राम अपने सारे यूथपों से कहते हैं कि ऐसी कुचेष्टायें बार–बार की जायेगी। मुझे बाहरी व्यक्ति बताया जा सकता है

तथा इस युद्ध को मेरी तथा रावण की व्यक्तिगत समस्या समझा जा सकता है। राम की बात बीच में काट कर लेखक ने हनुमान के माध्यम से शोषित और शोषक के बीच संघर्ष की आवश्यक और अनिवार्य समकालीन विचारधारा को प्रस्तुत किया है–"हमारे संबंध स्वार्थ पर नहीं सिद्धान्त पर आघ्त हैं। यह युद्ध न्याय और अन्याय का युद्ध है। यह युद्ध शोषितों के द्वारा शोषको के विरुद्ध लड़ा जा रहा है। हम आपक लिए नहीं अपने लिए लड़ रहे हैं। शताब्दियों में पहली बार ये पिछड़ी जातियाँ इतनी आत्मविश्वासी हो सकी हैं कि उन्होंने लंका के विपरीत दिशा में भागने के स्थान पर लंका सागर के तट पर आक्रमण के लक्ष्य से पड़ाव डाला है. ....यह किसी का व्यक्तिगत युद्ध नहीं है। भद्र राम! यह ता पीड़ित मानवता का अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध अपना स्वातन्त्र्य युद्ध हैं।"[74]

इस अवसर पर विभीषण के द्वारा लेखक ने अपनी सैद्धान्तिक मान्यताओं की आत्माभिव्यक्ति प्रस्तुत की।

" तुम ठीक कहते हो हनुमान!...................रिश्ते नाते, रक्त–मांस से भी होते हैं; किन्तु वास्तविक संबध तो सिद्धान्त और गंतव्य की एकता का है।"[75]

राम–रावण युद्ध को यों तो पारम्परिक रूप में ही प्रस्तुत किया गया है, किन्तु राक्षसी मस्या के चमत्कारिक अंशों का सामान्य और विश्वसनीय बना दिया गया है। मेघनाद ने युद्ध में अदृश्य होने को उसे कवच रक्षित

ऐसे रथ में बैठकर यु0 करते दिखाया गया है, जिसमें वह विशेष यन्त्रों के द्वारा अस्त्र प्रहार कर सकता था। पौराणिक सन्दर्भ मेघ द्वारा नाग पाश में राम–लक्ष्मण को बांधने का वर्णन करते हैं? जिससे मुक्त करने के लिए विष्णु–वाहन गरुड़ को आना पड़ा था। नरेन्द्र कोहली ने मेघनाद द्वारा नाग–विष में बुझे बाण से राम–लक्ष्मण को मूर्छित करना दिखाया है। इस विष–बाण के प्रभाव से मुक्त करने के लिए देव जातियों के प्रसिद्ध वैद्य गरुड़ आकर अपनी औषधियों से राम–लक्ष्मण को विष मुक्त करते हैं। नरेन्द्र कोहली का पक्षिराज गरुड़ के स्थान पर देव वैद्य गरुड़ कल्पना उनकी यथार्थाग्रही प्रयोग धर्मिता का एक अन्य उत्तम उदाहरण है। गरुड़ बताते हैं कि यह युद्ध मात्र राम–रावण का नहीं रह गया। इस पर सारे विश्व का दृष्टि लगी हुई है। भावी मानवता के स्वरूप का निर्णय भी इसी युद्ध में होगा। देव–शक्तियाँ तटस्थ नहीं । वे गोपनीय रूप से राम का सहयोग करेंगी। गोपनीयता का कारण गरुड़ बताते हुए कहते हैं–

"यदि आज कुछ देवशक्तियाँ प्रकट रूप से तुम्हारी ओर से लड़ेगी तो यह मत भूलो कि रावण ब्रह्मा का प्रपौत्र तथा शिव का प्रिय भक्त है। यदि शिन ने वैसे देवास्त्र रावण को दे दिए, उनका ईंधन तथा उनकी परिचालन–विधि का ज्ञान दे दिया और रावण ने उस देवास्त्रों का प्रयोग तुम्हारे विरुद्ध कियातो तुम्हारी सेना की क्या स्थिति होगी?"[76]

गरुड़ का उपयुक्त कथन समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति संतुलन कूटनीतिक अभिसंधियों तथा गुप्त सहयोग–विरोध पर पर्याप्त प्रकाश

डालता है। राम और लक्ष्मण से युद्ध करते समय रावण की मानसिकता के माध्यम से लेखक ने समकालीन परिस्थितियों में शोषितों के उत्थान के विरोध में सामन्तवादी सोच को स्पष्ट कर दिया है–

"जिन लोगों ने स्वयं को कभी मनुष्य नहीं समझा, उन्हें इन्होंने समता, स्वतन्त्रता, अधिकार और न्याय कि लिए लड़ना सिखा दिया है।"[77]

नरेन्द्र कोहली ने पौराणिक कथा में परिवर्तन भी किए है। जैसे लक्ष्मण–शक्ति प्रसंग में मेघनाद द्वारा शक्ति के प्रयोग की जगह इस उपन्यास में रावण द्वारा यह ब्रह्म–शक्ति लक्ष्मण पर चलाई गई है। सुबेण का लंका का वैद्य न दिखाकर वाली की पत्नी तारा का पिता तथा जनवाहिनी का वैद्य दिखाया गया है। मेघनाद के ब्रह्मास्त्र के प्रहार से राम–लक्ष्मण की जीवन–रक्षा तो तेजधर के टुकड़ी अपना बलिदान कर के कर लेती है, किन्तु राम–लक्ष्मण मरणासन्न हैं। जाम्बबान के निर्देश पर हनुमान मृतसंजीवनी, विशल्यकर्णी, सुवर्णकर्णी तथा संधानी नामक औषधियाँ लेने गए। उन्हें सूर्योदय के पूर्व ही लौट आना था। अन्यथा राम–लक्ष्मण का जीवित बचना असम्भव था। हनुमान पौराणिक वर्णन से अलग हटकर द्रोणगिरि के स्थान पर किष्किंधा के बाहर के बनों से औषधियाँ ले आए! औषधियों का गट्ठर देखकर सुग्रीव बोले–"तुम तो औषधियों का पर्वत ही उठा लाये।"[78]

इस प्रकार हनुमान द्वारा द्रोणागिरि पर्वत उखाड़ लाने भरत द्वारा घायल होने और बाद में उनके तीर पर आसीन होकर वापस आने की

पौराणिक कथा को अभिनव विश्वसनीय रूप दिया गया है।

उपन्यासकार अंध विश्वासों, तान्त्रिक क्रियायों, अलौकिक शक्तियों तथा टोने–टोटके पर विश्वास नहीं करता।

विभीषण की सूचना पर कि मेघनाद युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए निकुंभिला देवी के मन्दिर पर बैठा यज्ञ कर रहा है। इस समय ब्रह्मास्त्र उसके पास नहीं, लक्ष्मण मेघनाद के बध के लिए निकुंभिला देवी–स्थल पर जाकर आक्रमण करते हैं और मेघनाद से कहते है–"तुम यज्ञ करो, बलियां दो, भूत शक्तियों को अपनी रक्षा के लिए पुकारों, रक्षा–कवच बांधो, टोने–टोटके करो–किन्तु न राम किसी अमानुषी शक्ति को पुकारेंगे और न उनका अनुज। हम तुम्हारी प्रत्येक मंत्र और तन्त्र शक्ति के ही नही–देवास्त्र, दिव्यास्त्र तथा शस्त्र शक्ति के विरुद्ध केवल जन–शक्ति को खड़ा कर तुम्हें बता देंगे कि वास्तविक शक्ति कहाँ है?[79] अन्त में संगठित जन शक्ति के समक्ष अत्याचारी राक्षस–शक्ति पराजित हो गईं। राम ने कुम्भकर्ण और लक्ष्मण ने मेघनाद का बध कर दिया। इन्द्र द्वारा भेजे गये रथ पर आरूढ़ होकर राम ने अगस्त्य ऋषि द्वारा दिये गए विशेष बाण द्वारा रावण का बध कर दिया। पौराणिक सन्दर्भानुसार रावण के नाभिकुण्ड में अमृत तथा उसमें दस शीशों के बाद–बार कट कर पुनः जुड़ जाने के चमत्कारिक प्रसंग को लेखक ने नकार दिया है।

मृत्यु के पूर्व रावण को व्यक्तिगत वीरता के स्थान पर राम की संगठन शक्ति की विजय के सत्य का आभास हो गया था–

"क्या सचमुच न्याय इनकी रक्षा कर रहा है?.........नहीं.......नहीं..। यह इनकी युद्ध–पद्धति के कारण हुआ होगा। ये लोग सामूहिक युद्ध करते हैं। विजय का श्रेय व्यक्तिगत रूप से नहीं चाहते। राम दूसरे की सहायता करते हैं। राक्षस योद्धा अपने–अपने अहंकार के साथ लड़े।"[80]

युद्ध के अंत में हनुमान और विभीषण सीता को राम के पास लाये। बड़ा मार्मिक दृश्य था–

"राम ने देखाः उनकी सीता, वियोगिनी रूप में उनके सम्मुख खड़ी थी। एक बेणी, सफेद साड़ी किन्तु साथ धोती। आखों में वेदना, सहनशीलता, और एक प्रकार दृढत्रता का विचित्र मिश्रण। किन्तु राम प्रसन्न थे, इतनी यातना के बाद सीता के चेहरे पर दीनता अथवा याचना नहीं थी।"[81]

पौराणिक सन्दर्भ यहाँ राम द्वारा सबके सामने सीता की अग्नि परीक्षा का प्रसंग प्रस्तुत करते हैं, जिसमें सीता अग्नि में भस्म न होकर जीवित सकुशल रहकर अपने सतीत्व और यौन–शुचिता को प्रमाणित करती हैं। नरेन्द्र कोहली ने इस प्रसंग को मानवीय बनाते हुए उसे इस प्रकार से प्रस्तुत किया है–

"आओ सीते! राम ने अपने हाथ बढ़ाये, अपने राम से अब और दूर नहीं रहो। एक वर्ष की दीर्घ अग्नि–परीक्षा दी है तुमने। अब तुम्हें कुछ सुख भी मिलना चाहिए........।"[82]

इस उपन्यास में राम, लक्ष्मण, सीता, सुग्रीव, अंगद, हनुमान, नल, नील, तार, सुबेण, मातलि, जाम्बवान, रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद, मन्दोदरी,

त्रिजटा, प्रहस्त, महापार्श्व, सरमा, कला आदि पारम्परिक पात्र है जबकि सागरदत्त, अनिन्द्य, ऋषम, द्विविद, तेजधर आदि काल्पनिक पात्र हैं।

इस उपन्यास में नरेन्द्र कोहली वाल्मीकि रामायण के बस्तुविन्यास के आधार पर की कृति के सातों खण्डो में पारम्परिकता के निर्वाह की चेष्टा की है। किन्तु जहाँ भी उन्होंने चमत्कारिक अथवा अलौकिक अंश देखे, वहीं उन्होंने अपनी काल्पनिक मेघा और तर्क शक्ति के आधार पर राम–कथा को विश्वसनीय युगीन सन्दर्भों का उचित सुगुम्फन इस कृति की प्रमुख विशेषता है। लेखक ने रामायण के पात्रों तथा प्रसंगो के माध्यम से युगीन समस्याओं और उनके समाधान के दार्शनिक पक्ष प्रस्तुत किए हैं। पौराणिकता के निर्वाह का प्रयास करता हुआ भी कृतिक उपन्यास को प्रासंगिक तथा मानवीय स्वरूप देने के प्रयास में पौराणिकता से इधर–उधर भी हटा है। किन्तु उसके इस प्रयास से कृति का महत्त्व और प्रासंगिकता बढ़ गई है।

भारतीय वाङ्मय में राम कथा से सम्वन्धित विपुल सामग्री है। भारत की आदि प्रमाणिक भाषा वैदिक संस्कृत के आदि ग्रन्थ ऋग्वेद में रामकथा के सन्दर्भ अनुस्यूत है। ऋग्वेद संहिताओं में दशरथ, राम, सीता और विश्रृग पुत्र रावण का नामोल्लेख है। अपर्ववद में इक्ष्पाकु वंशी नरेशों की राजधानी अयोध्या का वर्णन है। ब्रह्मण ग्रन्थों तथा तैत्तिरीय आरण्यक में राम, सीता तथा जनक की चर्चा है। वेदों के अन्तिम भाग उपनिषदों में रामकथा–राम पूर्व तापिनीय उपनिषद, राम उत्तर तापिनीय उपनिषद् और

शीतोपनिषद में अवस्थित है।

वैदिक वाङ्मय के उपरान्त संस्कृत रामायणों में भी राम कथा का सम्यक चरित्रांकन हुआ है। वाल्मीकि रामायण, योगवासिष्ठ रामायण, आध यात्म रामायण, अद्‌भुद रामायण, आनन्द रामायण, भुसिण्डि रामायण, तथा तत्त्व संग्रह रामायण में राम की कथा वर्णित है।

पुराण वाङ्मय में विष्णु पुराण, हरिवंश पुराण, वायु पुराण, भागवत पुराण, स्कन्ध महापुराण, गरुड़ पुराण, ब्रह्मपुराण तथा पद्‌म पुराण में राम कथा संनिहित है।

सस्कृत प्रबन्ध काव्य में राम कथा का वस्तु विन्यास अतिलोभ प्रिय रहा है। संस्कृत के एकाधिकार प्रबन्ध काव्य में रामकथा वस्तु का प्रभावशाली चित्रांकन है। रघुवंश, भट्टि काव्य (रावण बध काव्य) जानकी हरण और रामायण–मंजरी में राम कथा का सन्निवेश है।

संस्कृत नाटकों में प्रतिमानाटक, अभिषेक नाटक, महावीर, चरित नाटक, उत्तर राम चरित नाटक, अनर्घ राघव वाटक, बाल रामायण, हनुमान्नाटक और प्रसन्न राघव नाटक में राम कथा है।

हिन्दीतर भारतीय भाषाओं में राम–कथा पर विपुल साहित्य–सृजन हुआ है–

(क) कम्ब रामायण (तमिल)

(ख) रंगनाथ रामायण (तेलगू)

(ग) माधव कन्दली रामायण (असमिया)

(घ) कृत्तिवास रामायण (बंगला)

(ङ) अध्यात्म रामायण (मलयालम)

(च) उत्तर रामायण (मलयालम)

(छ) तोरवे रामायण (कन्नड़)

(ज) बैदेहीश–विलास (उड़िया)

(झ) श्रीराम विजय (मराठी)

(ञ) गिरधर रामायण (गुजराती)

(ट) रामावतार–चरित (कश्मीरी)

(ठ) लवकुश चरित (कश्मीरी)

(ड) चन्दा मैथली रामायण (मैथली)

नरेन्द्र कोहली ने पौराणिक सन्दर्भों का पुनराख्यान करते हुए भी राम कथा मूलक अपनी उपन्यास माला में अद्यतन सन्दर्भों का समुचित समावेश किया है। कथा वस्तु एवं घटना–चक्र को चमत्कारिकता, अस्वाभाविकता, अलौकिकता, तर्कहीनता तथा अविश्वसनीयता से बचाया है।

अनुसंधित्सु का अभिमत है कि नरेन्द्र कोहली ने इस कृति में पौराणिकता का सतर्क किन्तु सफ़ल निर्वाह किया है।

(ग) समकालीन सन्दर्भ में प्रासंगिता–

अन्याय का उन्मूलन करना भारतीय संस्कृति का मूलाधार है। वाल्मीकि विरचित 'रामायण' महाकाव्य के नायक राम ने अन्याय के विरोध

में ही राक्षस संस्कृति कर नाश किया था। इस महाकाव्य के वस्तुविन्यास पर आधारित नरेन्द्र कोहली को रामकथामूलक उपन्यास माला में उपन्यासकार ने समकालीन सन्दर्भों को उपयुक्त महाकाव्यीय कथानक में परिवर्तन करके उसे युग सापेक्ष बना दिया है। गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या के साथ वलात्कार करने वाले (आज के सन्दर्भ अभिजात्य वर्ग का सर्वोच्य सत्ता–पुरुष) इन्द्र के विरुद्ध आक्रोश प्रकट करते तथा शोषक वर्ग की प्रतीक अहल्या के पक्ष में मानवीय संवेदना व्यक्त करने से नहीं चूकते– "देवि आप मुझे इतना महत्व न दें। मुझे ही अपनी ओर से कुछ कहने दें। मैं सम्पूर्ण लोगों की ओर से आप से क्षमा याचना करता हूँ।...........और प्रतिज्ञा करता हूँ कि जीवन में जब कभी इन्द्र से साक्षात्कार हुआ, उसे प्राण दण्ड दूँगा.......मैं कौशल्या पुत्र राम आपको वचन देता हूँ कि यदि समाज ने आपको स्वीकार नहीं किया तो मैं इस गलित समाज का नाश कर नया समाज बनाऊँगा।

(दीक्षा–नरेन्द्र कोहली, पृ0 161–162)

अत्याचार बिना विरोध के समाप्त नहीं हो सकते। अद्यतन समाज में लोगों के सामने अनर्थपूर्ण कृत्य होते रहते है और वे चुपचाप देखते रहते हैं। न तो अत्याचारी का विरोध करते हैं, न ही दण्ड व्यवस्था, को उसका नाम बताते है। यहाँ तक कि जिस पर अत्याचार हुआ है वो भी उसे चुपचाप सहन कर लेना चाहता है। नरेन्द्र कोहली ने रामकथा पुनराख्यान के माध्यम से इन समस्याओं के समाधान प्रस्तुत किये है।

नरेन्द्र कोहली ने विश्वामित्र के माध्यम से इस तथ्य का उद्घाटन कराया है कि दुर्बलों के शोषण में राजकीय तन्त्र का भी हाथ होता है। शासन तन्त्र की कुत्सित भूमिका तथा राक्षसों के दारुण अत्याचार के कारण विश्वामित्र को हृदय में घृणा का उद्भव होता है। उन्होंने सोचा कि इस घृणा से ही वह शक्ति उद्भूत होगी जिससे अत्याचारी परिस्थितियों के कारण तत्वों का विनाश हो सकेगा–''इस घृणा को पोषित करना होगा तभी राक्षसों का संघार होगा।'' (दीक्षा–नरेन्द्र कोहली, पृ0 17)

विश्वामित्र का अन्याय के विरुद्ध चिन्तन समकालीन परिस्थितियों के लिये अति प्रासंगिक है। विश्वामित्र सहन करने से और क्षमा करने से सहमत नहीं हैं। वो अन्याय के विरुद्ध क्रियाशील प्रतिवद्धता चाहते हैं–''उन दलितों का उद्धार कभी नहीं होता जो अत्याचार का विरोध नहीं करते।'' (दीक्षा नरेन्द्र कोहली–पृ0 18)

वर्तमान युग में अतिभौतिकता तथा उपभोक्तावादी अपसंस्कृति का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। ऋषि भारद्वाज के माध्यम से नरेन्द्र कोहली ने इसी राक्षसी वृत्ति पर आघात किया हैं।–''दुष्ट संचित धन, हिंस्र पशुवत तथा भ्रष्ट राजनैतिक सत्ता–इस राक्षसी प्रवृत्ति को यदि न रोका गया तो वह आश्रमों को क्या समस्त आर्यवर्त और देवभूमि की भी ग्रस होगी।..... ....स्वर्ण को अपना सवर्स्व मानने वाला, मनुष्य के पशुत्व को उकसाने वाला रावण प्रत्येक दुष्टता को प्रश्रय दे रहा है। वह समस्त मानवीय मूल्यों को विहवंश कर रहा है.............व्यक्ति रावण से अधिक महत्वपूर्ण

प्रवृत्ति रावण ....निरोध उस दुष्ट प्रवृत्ति और भ्रष्ट व्यावस्था का करना होगा, जिसका अधिनायकत्व रावण कर रहा है।" (अवसर–नरेन्द्र कोहली, पृ0 99–100) लेखक के रामकथा के माध्यम से समसामायिक शोषण तथा शोषक वृत्ति का अनावरण किया है।

लेखक ने बता दिया है कि देवत्व अथवा राक्षसत्व व्यक्ति वर्ग, जाति में न होकर 'वृत्ति' में होता है। रावण के कूटनीतिज्ञ शुक ने अपनी कुत्सित योजना से सुग्रीव और राम में विग्रह उत्पन्न कराने की चेष्टा की। सुग्रीव पर सफल न होने पर उसने अंगद को फोड़ना चाहा। वह भेद नीति का प्रयोग करके संकेत करना चाह रहा था कि मैं लंका का दूत हूँ, और मुझे अयोध्या से निर्वासित राजकुमारों से क्या लेना देना? मैं तो किष्किन्धा नरेश बानर राज सुग्रीव से वार्ता करूँगा। जब सुग्रीव ने उसे डाँट दिया तो उसने युवराज अंगद से संधिवार्ता करना चाही। अंगद भी उसकी बातों में न आया तब राम ने कहा कि शत्रु मुझे बाहर का व्यक्ति सिद्ध करने की चेष्टा करेगा। इस युद्ध को मेरी तथा रावण की व्यक्तिगत समस्या समझा सकता है। किन्तु हनुमान ने राम का वाक्य बीच में ही काटकर शोषक और शोषित के बीच होने वाले अनिवार्य संघर्ष की समकालीन साम्यवादी विचारधारा ही प्रस्तुत की है–"हमारे सम्बन्ध स्वार्थ पर नहीं सिद्धान्त पर आधृत हैं। यह युद्ध न्याय और अन्याय का युद्ध है। यह शोषितों के द्वारा शोषकों के विरुद्ध लड़ा जा रहा है। हम आपके लिए नहीं, अपने लिये लड़ रहे हैं। शताब्दियों में पहली वार में पिछड़ी जातियाँ

इतनी आत्मविश्वासी हा सकी हैं। कि उन्होंने लंका के विपरीत दिशा में भागने के स्थान पर लंका–सागर पर आक्रमण के लक्ष्य का पड़ाव डाला है .... यह किसी का व्यक्तिगत युद्ध नहीं है। भद्र राम! ने तो पीड़ित मानवता का अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध अपना स्वातन्त्र युद्ध है।'' (युद्ध–नरेन्द्र कोहली, पृ0 36)

शक्ति अलौकिकता, चमत्कार टोने टोटको या तन्त्र आदि में नहीं वल्कि जन शक्ति में है। लक्ष्मण द्वारा मेघनाद से कहे शब्दों में लेखक की समकालीन जन तांत्रिक चेतना बोल रही है। ''तुम यज्ञ करो, वलियाँ दो, भूत शक्तियों को अपनी रक्षा के लिये पुकारो....................किन्तु न राम किसी अमानुषी शक्ति को पुकारेंगे और न उनका अनुज। हम तुम्हारी प्रत्येक मन्त्र और तन्त्र शक्ति को ही नहीं...........देवास्त्र, दिव्यास्त्र तथा शस्त्र शक्ति के विरुद्ध केवल जन शक्ति को खड़ा कर तुम्हें बता देंगे कि वास्तविक शक्ति कहाँ है।''............... (युद्ध–नरेन्द्र कोहली, पृ0 147–48)

मृत्यु के पूर्व रावण को व्यक्तिगत वरीयता के स्थान पर राम की संगठन शक्ति को विजय के सत्य आ आभास हो गया था–''क्या सचमुच न्याय इनकी रक्षा कर रहा है?........नहीं नहीं।

यह इनकी युद्ध पद्धति के कारण हुआ होगा। ये लोग सामूहिक युद्ध करते है। विजय का श्रेय व्यक्तिगत रूप से नहीं चाहते है।''

एक दूसरे की सहायता करते है।'' (युद्ध–नरेन्द्र कोहली, पृ0 167)

इस उपन्यास माला में नरेन्द्र कोहली ने बाल्मीकि रामायण की

कथा वस्तु के आधार पर ही कृति को सात खण्डों में पारम्परिकता के निर्वाह की चेष्टा की है। जहाँ भी उन्होंने चमत्कारिकता और अलौकिकता देखी वहीं उन्होंने अपनी तर्क सम्मत अवधारणायें प्रस्तुत कर दी। वे पारम्परिक वस्तु विन्यास में समकालीन प्रासगिकतायें सुगुम्फित करते गये। कृतिक ने बाल्मीकि रामायण के पात्रों तथा प्रसंगो के माध्यम से युगीन समस्यायों और उनके समाधान के दार्शनिक पक्ष प्रस्तुत किये है। पौराणिकता का निर्वाह करते हुये भी नरेन्द्र कोहली इस उपन्यास माला को समकालीन सन्दर्भो से और युगीन प्रासंगिकताओं से जोड़े रह सके।

सन्दर्भ सूची

1—दीक्षा नरेन्द्र कोहली पृ—95

2—दीक्षा नरेन्द्र कोहली पृ—97

3—दीक्षा नरेन्द्र कोहली पृ—161—62

4—मुमोचन सलिलोत्पीडान

विप्रकीर्ण शिलोच्चयः रामायण श्लोक 43 पृ 846 (सुन्दर काण्ड)

स चचालाचलश्चाशु

मुहूर्त कपि पीड़ितः

तरुणो पुष्पिताग्राणां

सर्व पुठयम शातयम—रामायण श्लोक 12 पृ 848 (सुन्दर काण्ड)

तेन चोन्तमवीर्येण

पीड़ायमानः सं पर्वतः

सलिलं सम्प्रसुस्राव

मदमन्त इव द्विपः रामायण श्लोक 14 पृ 848 (सुन्दर काण्ड)

पीडयमानस्तु बलिना

महेन्द्रस्तेन पर्वतः

रीतीनिर्वर्तयामास

कांचनांजनराजती रामायण श्लोक 15पृ 848 (सुन्दर काण्ड)

समुत्पतति वेगात् तु

वेगात् ते नगरोहिणः

सह्त्य विटपान् सर्वान

समत्पेतुः समन्ततः रामायण श्लोक 45 पृ 850 (सुन्दर काण्ड)

5—अभियान नरेन्द्र कोहली पृ—56—57

6—अभियान नरेन्द्र कोहली पृ—127

7—पृष्ठभूमि—नरेन्द्र कोहली पृ—127—28

8—सुग्रीवेण तु निशंक

सालमुत्पाट्य तेजसा

गात्रेस्वभिहतो वाली

बज्रेणेव महागिरिः—रामायण/23/715 —किष्किंधा काण्ड

9—पृष्ठभूमि—नरेन्द्र कोहली पृ—132

10—पृष्ठभूमि—नरेन्द्र कोहली पृ—133—34

11—गवां शतसहस्रेण दीयतां शबला मम

रत्नं हि भगवनेतद् रत्नहारी च पार्थिवः—रामायण 8/134—बालकाण्ड

12—धिग् बलम् क्षत्रिय बलं

बह्म तेजो बलं बलम्

एकेन ब्रह्मदण्डेन

सर्वास्त्राणि हतानि में रामायण —23/141/बालकाण्ड

13—अहं हि नियमाद् रामहित्त्वा तां समुपागतः

सिद्धाश्रम मनुप्राप्तः सिद्धोस्मि तव तेजसा रामायण 12/99/बालकाण्ड

14—दीक्षा—नरेन्द्र कोहली पृ—7

15—दीक्षा—नरेन्द्र कोहली पृ—17

16—दीक्षा—नरेन्द्र कोहली पृ—18

17—दीक्षा—नरेन्द्र कोहली पृ—91

18—दीक्षा—नरेन्द्र कोहली पृ—178

19—दीक्षा—नरेन्द्र कोहली पृ—174

20—दीक्षा—नरेन्द्र कोहली पृ—161—62

21—अवसर—नरेन्द्र कोहली पृ—7

22–अवसर–नरेन्द्र कोहली पृ–8

23–अवसर–नरेन्द्र कोहली पृ–52–53

24–अवसर–नरेन्द्र कोहली पृ–99

25–अवसर–नरेन्द्र कोहली पृ–99–100

26–अवसर–नरेन्द्र कोहली पृ–100

27–अवसर–नरेन्द्र कोहली पृ–105

28–अवसर–नरेन्द्र कोहली पृ–105–106

29–अवसर–नरेन्द्र कोहली पृ–108

30–अवसर–नरेन्द्र कोहली पृ–124–25

31–सीता चरन चोंच हति भागा मानस –तुलसीदास–अरण्यकाण्ड

32–अवसर–नरेन्द्र कोहली पृ–154–155

33–अवसर–नरेन्द्र कोहली पृ–159

34–अवसर–नरेन्द्र कोहली पृ–188

35–अवसर–नरेन्द्र कोहली पृ–189

36–संघर्ष की ओर–नरेन्द्र कोहली पृ–8–9

37–संघर्ष की ओर–नरेन्द्र कोहली पृ–10

38–संघर्ष की ओर–नरेन्द्र कोहली पृ–15–16

39–संघर्ष की ओर–नरेन्द्र कोहली पृ–183

40–संघर्ष की ओर–नरेन्द्र कोहली पृ–184

41–संघर्ष की ओर–नरेन्द्र कोहली पृ–184–185

42–तस्य वेग प्रविद्धस्य वक्त्रात् ऊटजविन्दवः

प्रपेतुर्भासतोत्क्षिप्ता मतंगस्याश्रमं प्रत

रामायण 48/701/किष्किंधाकाण्ड

43–इह तेनाप्रवेष्टव्यं प्रविष्टस्य वधो मवेत

वनं मत्संश्रयं येन दूषितं रूधिरैस्रवैः

रामायण 53 / 702 / किष्किंधा काण्ड

44—पृष्ठ भूमि—नरेन्द्र कोहली पृ—8—9

45—मायावी नाम तेजस्वी पूर्वजो दुन्दुभेःसुतः

तेन तस्य महद्वैरं वालिन+ स्त्रीकृतं पुरः

रामायण 4 / 694 / किष्किंधा काण्ड

46—मायावी नाम तेजस्वी पूर्वजो दुन्दुभेःसुतः

तेन तस्य महद्वैरं वालिन+ स्त्रीकृतं पुरः

रामायण 4 / 694 / किष्किंधा काण्ड

46—रामायण—6 / 696 / किष्किंधकाण्ड

रामायण—7 / 696 / किष्किंधकाण्ड

रामायण—8 / 696 / किष्किंधकाण्ड

रामायण—9 से 13 / 696 / किष्किंधकाण्ड

रामायण—13 / 697 / किष्किंधकाण्ड

47—पृष्ठ भूमि—नरेन्द्र कोहली पृ—12

48—पृष्ठ भूमि—नरेन्द्र कोहली पृ—21

49—पृष्ठ भूमि—नरेन्द्र कोहली पृ—12

50—पृष्ठ भूमि—नरेन्द्र कोहली पृ—188

51—न स संकुचितः पन्था येन वाली हतोगतः

समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथन्वगाः

(सुग्रीव! वाली मारा जाकर जिस रास्त से गया है वह आज भी बन्द नहीं हुआ है। अस तुम अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहो। वाली के मार्ग का अनुसरण न करो।)

रामायण—98 / 777 / किष्किंधाकाण्ड

52—पृष्ठ भूमि—नरेन्द्र कोहली पृ—190

53—रामायण—6/777/ किष्किंधाकाण्ड

54—रामायण—6/777/ किष्किंधाकाण्ड

55—अभियान नरेन्द्र कोहली पृ—29

56—अभियान नरेन्द्र कोहली पृ—32

57—अभियान नरेन्द्र कोहली पृ—32

58—अभियान नरेन्द्र कोहली पृ—42—43

59—अभियान नरेन्द्र कोहली पृ—48

60—अभियान नरेन्द्र कोहली पृ—73

61—अभियान नरेन्द्र कोहली पृ—105

62—अभियान नरेन्द्र कोहली पृ—109

63—अभियान नरेन्द्र कोहली पृ—111

64—अभियान नरेन्द्र कोहली पृ—119

65—युद्ध—नरेन्द्र कोहली पृ—17

66—युद्ध—नरेन्द्र कोहली पृ—17

67—युद्ध—नरेन्द्र कोहली पृ—17—18

68—युद्ध—नरेन्द्र कोहली पृ—18

69—युद्ध—नरेन्द्र कोहली पृ—19

70—युद्ध—नरेन्द्र कोहली पृ—20

पुत्र प्रवादेन तु रावणस्य

त्वमिन्द्रजिन्मत्रमुखोऽसि शत्रुः

यस्येदृशं राघवतो विनाशं

निशम्य मोहादनुमन्यासे त्वम्

रामायण 10/1085/युद्धकाण्ड

(इन्द्रजित्! तुम रावण के पुत्र कहला कर भी ऊपर से ही उनके मित्र हो। भीतर से तो तुम

पिता के शत्रु ही जान पड़ते हो। यही कारण है कि तुम राम के द्वारा राक्षसराज के विनाश की बातें सुनकर भी मोहवश उन्हीं की हाँ में हाँ मिला रहो हो।)

71—युद्ध—नरेन्द्र कोहली पृ—21

वसे सह सहत्नेन क्रुधेनाशी विशेण च

न तु मित्र प्रवादेन संवसेच्छत्रुसेविना

रामायण 2/1086/ युद्धकाण्ड

72—इत्युक्तः परुषं वाक्यं न्यायवादी विभीषण

उत्पात गदापाणिश्चतुर्भिः सह राक्षसैः

(विभीषण न्यायानुकूल बातें कह रहे थे, तो भी रावण ने जब उनसे ऐसे कठोर वचन कहे तब वे हाथ में गदा लेकर अन्य चार राक्षसों के साथ उसी समय उछल कर आकाश में चले गए।

73—युद्ध—नरेन्द्र कोहली पृ—29

74—युद्ध—नरेन्द्र कोहली पृ—36

75—युद्ध—नरेन्द्र कोहली पृ—105

76—युद्ध—नरेन्द्र कोहली पृ—111

77—युद्ध—नरेन्द्र कोहली पृ—111

78—युद्ध—नरेन्द्र कोहली पृ—138

79—युद्ध—नरेन्द्र कोहली पृ—142—148

80—युद्ध—नरेन्द्र कोहली पृ—167

81—युद्ध—नरेन्द्र कोहली पृ—173

82—युद्ध—नरेन्द्र कोहली पृ—173

पंचम अध्याय

उपसंहार एवं परिलब्धि

परिशिष्ट

(क) उपजीव्य ग्रन्थ सूची

(ख) उपस्कारक ग्रन्थ सूची

(ग) पत्र–पत्रिकायें आदि की सूची

पंचम अध्याय उपसंहार एवं परिलब्धि

नरेन्द्र कोहली ने पौराणिक सन्दर्भों का पुनराख्यान करते हुए समकालीन परिवेश, परिस्थितियों, समस्याओं तथा उनके समाधान प्रस्तुत करने का उपक्रम किया है। भारतीय जन–चेतना में राम तथा कृष्ण विष्णु के अवतार के रूप में मान्य हैं। भारत की पौराणिक मान्यताओं के अनुसार परम् सत्ता तीन रूपों में विभक्त होकर सृष्टि से सम्बन्धित कर्मों का निर्वहन करती है। सृजन का कार्य ब्रह्मा, पालन का कार्य विष्णु तथा संहार का कार्य शिव करते हैं।[1] पालन का कार्य विष्णु का कर्त्तव्य होने के कारण विष्णु विशेष महत्त्वपूर्ण माने गये है। योरक्षतिसः विष्णुः[2] के अनुसार रक्षक शक्ति के रूप में विष्णु की महत्ता स्वयमेव प्रतिपादित है। मध्ययुगीन भारत में भक्ति की दोनो धारायें–रामाश्रयी भक्ति धारा तथा कृष्णश्रयी भक्ति धारा–विष्णु से ही सम्बन्धित थीं। यद्यपि भारत की पौराणिकता ब्रह्मा, विष्णु, शिव में महत्त्व के अतिरिक्त शक्ति स्वरूपा दुर्गा तथा उनके अनेक रूपों के महत्त्व का भी प्रतिपादन करती है, किन्तु संस्कृत के महाकाव्यीय सन्दर्भ–जिनका आधार भी पौराणिक ही है–राम और कृष्ण के दिव्य चरित्र का उद्घाटन करते हैं। आदि कवि वाल्मीकि द्वारा विरचित 'रामयण' महाकाव्य तथा महर्षि वेद व्यास कृत 'महाभारत' महाकाव्य क्रमशः विष्णु–अवतार राम और कृष्ण के जीवन चरित पर आधारित हैं।

नरेन्द्र कोहली ने पहले वाल्मीकि रामायण पर आधारित उपन्यास–माला की रचना की। इस उपन्यास–माला के अधोलिखित सात खण्ड हैं–

1–दीक्षा

2–अवसर

3–संघर्ष की ओर

4–साक्षात्कार

5–पृष्ठ भूमि

6–अभियान

7–युद्ध

रामायण पर आधारित उपन्यास–माला के बाद नरेन्द्र कोहली ने महाभारत पर आधारति उपन्यास–माला के आठ खण्ड सृजित किए–

1–बंधन

2–अधिकार

3–कर्म

4–धर्म

5–अंतराल

6–प्रच्छन्न

7–प्रत्यक्ष

8—निर्बन्ध

इन दोनों उपन्यास—मालाओं में पौराणिक वस्तुविन्यास को आधार बनाये रखने का प्रयास किया गया है, किन्तु अविश्वसनीय, चमत्कारिक, अलौकिक तथा तर्क के प्रतिमानों द्वारा अस्वीकृत घटनाओं को विज्ञान सम्मत तर्क सापेक्ष रूप में प्रस्तुत किया गया है। कृतिक ने युगीन यथार्थ से कहीं भी पराङ्मुख होने की चेष्टा नहीं की। राम और कृष्ण के चिन्तन के माध्यम से युगीन समस्याओं और उनके समाधान प्रस्तुत करने का सराहनीय उपक्रम है।

भारत की आर्ष मनीषा ने ऐतिहासिक युग के बहुत पूर्व ही धर्म अर्थ, काम, मोक्ष के रूप में मानव के चार पुरुषार्थ सुनिश्चित कर लिए थे। अन्तिम पुरुषार्थ 'मोक्ष' मानव का चरम् तथा परम् पुरुषार्थ है। शेष पूर्ववर्ती चार पुरुषार्थ तो 'मोक्ष' तक पहुंचाने की सीढ़िया भर हैं। मोक्ष तक की मानवीय यात्रा के लिए विशेष जीवन पद्धति आवश्यक है। हमारे ऋषियों की ऋतम्भरा प्रज्ञा ने मानव—मूल्यों, जीवन—दर्शन, नैतिकता तथा जीवन—लक्ष्य की सूक्ष्म सत्ता का साक्षात्कार कर लिया था। आर्ष वाङ्मय में उक्त तथ्यों की सार्वभौम सत्ता सहज ही देखी जा सकती है। समाज के लिए आवश्यक कर्त्तव्यों का निर्वाह सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, आस्तेय और अपरिग्रह जैसे जीवन—मूल्यों को स्वीकार किए बिना सम्भव नहीं। व्यक्तिगत जीवन के लिए शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान

जैसे मूल्यों की आवश्यकता है। पातञ्जलि योग दर्शन में इन दोनो प्रकार के जीवन मूल्यों को 'यम' तथा 'नियम' के रूप में प्रस्तुत किया गया है।[3]

"सर्वेभवन्तु सुखिना सर्वेसन्तु निरामया।

सर्वेभद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिदुखभाग्वेत।"[4]

सभी सुखी हों, कोई दुःखी न हो जैसी संस्कृति पर जब भी किसी बर्बर संस्कृति ने चोट पहुंचाने की चेष्टा की, तब ऐसा कुत्सित प्रयास करने वाले दुष्टों का बध अहिंसा के जीवन मूल्य वाली भारतीय संस्कृति निरस्त नहीं कर सकी। हमारी महाकाव्यीय संस्कृति में इस आदर्श का निर्वाह हुआ है। रामायण में यज्ञ (धार्मिक कर्म) आदि आर्य संस्कृति के ध्वंस का प्रयास करने वाले राम तथा उनके अनुयायियों द्वारा जीवित नहीं रहने दिये गए। ताड़का नारी होकर भी राम के लिए बध्य हो गई। रावण पुलस्त्य जैसी कुलीन ऋषि का वंशधर होकर भी राम के द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुआ। जो भारत की मूल्यवादी संस्कृति को क्षति पहुंचायेगा, उसका बध अहिंसा के मूल्य में बाधक नहीं बनेगा। वस्तुतः सामाजिक विकास के सन्दर्भ में ऐसे आतताइयों तथा शोसकों को क्षमा करना हिंसा है। संस्कृत के दोनों महाकाव्य मानवता को यही संदेश देते हैं। भीष्मपितामह तथा आचार्य द्रोण महान चरित्र के स्वामी थे। दोनों महामानव पाण्डवों से अथाह प्रेम करते थे। कौरव सेना के प्रधान सेनापति होते हुए भी दोनों ने एक भी पाण्डव के न बध करने की प्रतिज्ञा की थी। ये दोनों ही पाण्डवों

के कुलपूज्य एवं श्रद्धेय थे। किन्तु कर्म बन्धन की विवशता में इन्हें दुष्ट दुर्योधन के पक्ष में युद्ध करना पड़ा। जब कृष्ण ने समझ लिया कि जब तक भीष्म तथा द्रोण कौरव–पक्ष से रण–भूमि में खड़े हैं, तब तक धर्म के अनुयायी पाण्डव–पक्ष की विजय नहीं हो सकती। महाभारत साक्षी है कि इन दोनों पूज्य महारथियों का बध करवा दिया गया।

अन्याय का उन्मूलन करना भारतीय संस्कृति का मूलाधार है। रामयण के राम समाज में व्याप्त अन्याय तथा अत्याचार के प्रबल विरोधी हैं। नरेन्द्र कोहली ने समकालीन सन्दर्भो के उपर्युक्त महाकाव्यीय कथानक में परिवर्तन करके उसे युग सापेक्ष बना दिया है। गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या के साथ बलात्कार करने वाले (आज के सन्दर्भ में आभिजात्य वर्ग का सर्वोच्च सत्ता–पुरुष) इन्द्र के विरुद्ध आक्रोश प्रकट करते तथा शोषित वर्ग की प्रतीक अहल्या के पक्ष में मानवीय संवेदना व्यक्त करने से नहीं चूकते–

"देवी आप मुझे इतना महत्त्व न दें। मुझे ही अपनी ओर से कुछ कहने दें। मैं सम्पूर्ण लोगों की ओर से आपसे क्षमा–याचना करता हूँ, जिन्होंने आपका अपराध किया है और प्रतिज्ञा करता हूँ कि जीवन में जब कभी इन्द्र से साक्षात्कार हुआ, उसे प्राण–दण्ड दूँगा.....मैं कौशल्या पुत्र राम आपको वचन देता हूँ कि यदि समाज ने आपको स्वीकार नहीं किया, तो मैं इस गलित समाज का नाश कर नया समाज बनाऊँगा।[5]

अत्याचार बिना विरोध के समाप्त नहीं हो सकते। अद्यतन समाज में लोग अत्याचार होते देखते रहते हैं। न तो अत्याचारी का विरोध करते है, न ही दण्डव्यवस्था को उसका नाम बताते हैं। यहाँ तक कि जिस पर अत्याचार हुआ है, वह भी उसे बर्दाश्त कर लेना चाहता है। नरेन्द्र कोहली ने पौराणिक परिपेक्ष्य में इन समस्याओं के समाधान प्रस्तुत किये हैं। विश्वामित्र के माध्यम से नरेन्द्र कोहली ने दुर्बलों के शोषण में राजकीय तन्त्र का हाथ भी पाया। शासन तन्त्र की कुत्सित भूमिका तथा राक्षसों के बर्बर अत्याचार के कारण विश्वामित्र के हृदय में घृणा पुंजीभूत होने लगती है। उन्होंने सोचा कि इस घृणा से ही वह शक्ति सृजित होगी, जिससे अत्याचारी परिस्थितियों के कारण तत्त्वों का नाश हो सकेगा–

"इस घृणा को पोषित करना होगा–तभी राक्षसों का संहार होगा।[6]

विश्वामित्र का अधोप्रस्तुत कथन वर्तमान युग के लिए कितना प्रासंगिक है–

"उन दलितों का उद्धार कभी नहीं होता, जो अत्याचार का विरोध नहीं करते।[7]

वर्तमान युग में अतिभौतिकता तथा उपभोक्तावादी अपसंस्कृति का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। ऋषि भारद्वाज के माध्यम से नरेन्द्र कोहली ने इसी राक्षसी वृत्ति पर आघात किया है–

"दुष्ट संचित धन, हिंस्र पशु–बल तथा भ्रष्ट राजनीतिक सत्ता,

पुंजीभूत कृति–इस राक्षसी प्रवृत्ती को यदि न रोका गया तो वह आश्रमों को क्या, समस्त आर्यावर्त और देवभूमि को भी गस लेगी। पहले तो सुमाली के भाई–बान्धव ही राक्षस थे, अब अनेक यक्ष, गन्धर्व, किरात तथा आर्य भी राक्षस होते जा रहे हैं। स्वर्ण को अपना सर्वस्व मानने वाला, मनुष्य के पशुत्त्व को उकसाने वाला रावण, प्रत्येक दुष्टता को प्रश्रय दे रहा है। वह समस्त मानवीय मूल्यों का विध्वंस कर रहा है।........वैसे राक्षसत्व प्रकृति का अनघड़ और आदिम रूप है; प्रत्येक युग उसका अपने ढंग से विरोध करता है। ये धनुर्धर उसका विरोध करने वाले न तो पहले व्यक्ति हैं, न अंतिम। यह संघर्ष तो चिरंतन है.....व्यक्ति रावण से अधिक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति रावण से अधिक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति रावण है.... निरोध उस दुष्ट प्रवृत्ति और भ्रष्ट व्यवस्था का है; जिसका अधिनायकत्त्व रावण कर रहा है।''[8]

लेखक ने रामकथा के माध्यम से समसामयिक शोषण तथा शोषक वृत्ति का अनावरण किया है। लेखक ने बता दिया है कि देवत्त्व अथवा राक्षसत्व व्यक्ति, वर्ग या जाति में न होकर 'वृत्ति' में होता है।

रावण के कूटनीति शुक ने अपनी कुत्सित योजना से सुग्रीव और राम में विग्रह उत्पन्न कराने की चेष्टा की। सुग्रीव पर सफल न होने पर उसने अंगद को फोडना चाहा। वह भेद–नीति का प्रयोग करके बताना चाह रहा था, कि मैं लंका का दूत हूँ और मुझे अयोध्या के निर्वासित

राजकुमारों से क्या लेना–देना ? मैं तो वानरराज सुग्रीव से सन्धि वार्ता करूँगा। जब सुग्रीव ने उसे फटकार दिया तो उसने युवराज अंगद से संधि वार्ता करनी चाही। अंगद भी उसकी चाल में न आया। तब राम ने कहा कि शत्रु मुझे बाहर का व्यक्ति बताने की कुचेष्टा बार–बार करेगा। इस युद्ध को मेरी तथा रावण की व्यक्तिगत समस्या समझा जा सकता है। किन्तु हनुमान ने राम का वाक्य बीच में ही काट कर शोषक और शोषित के बीच होने वाले अनिवार्य संघर्ष की समकालीन साम्यवादी विचारधारा ही प्रस्तुत की है–

"हमारे संबंध स्वार्थ पर नहीं; सिद्धान्त पर आधृत हैं। यह युद्ध न्याय और अन्याय का युद्ध है। यह युद्ध शोषितों के द्वारा शोषकों के विरुद्ध लड़ा जा रहा है। हम आपके लिए नहीं, अपने लिए लड़ रहे हैं। शताब्दियों में पहली बार ये पिछड़ी जातियाँ इतनी आत्मविश्वासी दो सकी हैं कि उन्होंने लंका के विपरीत दिशा में भागने के स्थान पर, लंका–सागर पर आक्रमण के लक्ष्य से पड़ाव डाला है.........यह किसी का व्यक्तिगत युद्ध नहीं है। भद्र राम! यह तो पीड़ित मानवता का अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध अपना स्वातन्त्र्य युद्ध है।"[9]

शक्ति अलौकिकता, चमत्कार, टोने–टोटकों या तन्त्र आदि में नहीं, बल्कि जन–शक्ति में है। लक्ष्मण द्वारा मेघनाद से कहे शब्दों में लेखक की समकालीन जनतान्त्रिक चेतना बोल रही है–

"तुम यज्ञ करो, बलियाँ दो, भूत शक्तियों को अपनी रक्षा के लिए पुकारो.........किन्तु न राम किसी अमानुषी शक्ति को पुकारेंगे और न उनका अनुज। हम तुम्हारी प्रत्येक मंत्र और तंत्र शक्ति के ही नहीं............देवास्त्र, दिव्यास्त्र तथा शस्त्र–शक्ति के विरुद्ध केवल जन–शक्ति को खड़ा कर तुम्हें बता देंगे कि वास्तविक शक्ति कहाँ ह?,"[10]

मृत्यु के पूर्व रावण को व्यक्तिगत वीरता के स्थान पर राम की संगठन–शक्ति की विजय के सत्य का आभास हो गया था–

"क्या सचमुच न्याय इनकी रक्षा कर रहा है?.... नहीं–नहीं। यह इनकी युद्ध–पद्धति के कारण हुआ होगा। ये लोग सामूहिक युद्ध करते हैं। विजय का श्रेय व्यक्तिगत रूप से नहीं चाहते। एक दूसरे की सहायता करते हैं। राक्षस योद्धा अपने–अपने अहंकार के साथ लड़े।"[11]

इस उपन्यास में नरेन्द्र कोहली ने वाल्मीकि 'रामयण' की कथावस्तु के आधार पर ही कृति के सातो खण्डों में पारम्परिकता के निर्वाह की चेष्टा की है। किन्तु जहाँ भी उन्होंने चमत्कारिक और अलौकिक अंश देखे, वहीं उन्होंने अपनी कल्पना शक्ति तथा तर्कधर्मिता के आधार पर राम–कथा को विश्वसनीय रूप प्रदान करने में सफलता प्राप्त की है। युगीन सन्दर्भों का समुचित सुगुम्फन इस कृति की प्रमुख विशेषता है। लेखक ने वाल्मीकि रामायण के पात्रों तथा प्रसंगों के माध्यम से युगीन समस्याओं और उनके समाधान के दार्शनिक पक्ष प्रस्तुत किए हैं।

पौराणिकता का निर्वाह करता हुआ भी कृतिक उपन्यास को प्रासंगिक तथा मानवीय स्वरूप देने के प्रयास में पौराणिकता से इधर–उधर भी हटा है; किन्तु इससे कृति का महत्त्व और प्रासंगिकता बढ़ गई है।

पौराणिकता के आधार पर नरेन्द्र कोहली ने 'महाभारत' पर आधारित 'महासमर' नामक हिन्दी का अब तक सबसे बृहद आकार का उपन्यास विरचित किया है। यह उपन्यास लेखक के पन्द्रह वर्ष के प्रयास का परिणाम है। इस उन्यास के आठ खण्डों के नाम अधोप्रस्तुत हैं–

1–बन्धन

2–अधिकार

3–कर्म

4–धर्म

5–अंतराल

6–प्रच्छन्न

7–प्रत्यक्ष

8–निर्बन्ध

नरेन्द्र कोहली ने पौराणिक सन्दर्भों के आधार पर समसामयिक समस्याओं की समीक्षा तथा उनके समाधान का प्रयास किया है। यद्यपि लेखक ने पौराणिक कथावस्तु का सहारा लिया है, किन्तु सोच तथा संवेदना के धरातल पर युगीन परिवेश से प्रभावित कृतिक पौराणिकता के

फ्रेम में ऐसा दर्पण संयोजित करता है, जिसमें वर्तमान युग का सांगोपांग चित्र दिखाई पड़ता है। महाभारत का आधार लिए हुए भी यह मौलिक कृति हैं। महाभारत के पात्रों, घटनाओं तथा परिस्थितियों को प्रोढ़ चिन्तन तथा मनोवैज्ञानिक प्रविधियों से संभाव्य प्रमाणिकता प्रदान कर लेखक ने अपनी रचनाधर्मिता के साथ न्याय किया है।

इस उपन्यास के प्रथम खण्ड 'बन्धन' में ही शान्तनु, देवव्रत तथा सत्यवती के कर्म–चक्र ने हस्तिनापुर की नियति को बन्धन से जकड़ दिया था। निषादकन्या मत्स्यगंधा पर आसक्त शान्तनु ने उससे विवाह करना चाहा। मस्त्यगंधा के पालक पिता दाशराज ने विवाह की शर्त रखी की सत्यवती का पुत्र ही हस्तिनापुर–साम्राज्य का उत्तराधिकारी होगा। शान्तनु की पूर्व पत्नी गंगा से देवव्रत नाम का शिष्ट तथा प्रतापी युवराज था। वे दाशराज की शर्त न मान सके और कामाहत निराशा से भग्न हृदय हस्तिनापुर लौटे। युवराज देवव्रत को जब यह वृतान्त ज्ञात हुआ तो वह दाशराज के पास जाकर अपने पिता के लिए सत्यवती की माँग की। देवव्रत ने बताया कि मुझे तुम्हारी शर्त स्वीकार है। मैं हस्तिनापुर के राजसिंहासन पर कभी नहीं बैठूँगा। सत्यवती का पुत्र ही युवराज होगा। दाशराज ने चततुराई से कहा कि राजकुमार आप तो यह शर्त मान रहे हैं किन्तु तुम्हारे पुत्र भविष्य में सत्यवती के पुत्र से राज्यसिंहान के लिए कलह कर सकते हैं। देवव्रत ने प्रतिज्ञा की कि मैं आजीवन अविवाहित

रह कर ब्रह्मचर्य का व्रत–निर्वाह करूँगा। जब मेरे सन्तान ही न होगी तो सत्यवती के पुत्र से संघर्ष कौन करेगा। सत्यवती हस्तिनापुर की पटमहिषी बन गई। बृद्ध शान्तनु के सत्यवती से दो पुत्र हुये। सत्यवती ईर्ष्यालु, अहंकारी तथा भीष्म से द्वेष रखने वाली महिला थी। उसका बड़ा पुत्र विचित्र वीर्य गंधर्व–युद्ध में मारा गया। भीष्म रुग्ण विचित्र वीर्य के लिए काशिराज की तीन पुत्रियों का अपने पुरुषार्थ से हरण कर लाये। बड़ी राजकुमारी अम्बा तो पहले शौभ नरेश शाल्व के पास गई, किन्तु शाल्व ने उसे स्वीकार नहीं किया तब वह अपने हरणकर्त्ता भीष्म से विवाह करने पर अड़ गई। भीष्म ने अपने गुरु परशुराम की भी आज्ञा नहीं मानी और अपने प्रण पर डटे रहे। अम्बिका तथा अम्वालिका का विवाह रुग्ण विवित्र वीर्य से कर दिया गया। अति कामाचार से विचित्रवीर्य की निस्संतान मृत्यु हो गई। अब सत्यवती को हस्तिनापुर राजसिंहासन के उत्तराधिकारी की चिन्ता हुई। भीष्म तो अपना ब्रह्मचर्य भंग नहीं कर सकते थे अतः सत्यवती ने भीष्म से कह कर शान्तनु से विवाह पूर्व पराशर ऋषि द्वारा उत्पन्न कानीन पुत्र कृष्ण–द्रैपायन (वेद व्यास) को विचित्रवीर्य के क्षेत्र से नियोग–पद्धति से क्षेत्रज संतान उत्पन्न करने के लिए बुलवाया। अम्बिका से अंधा घृतराष्ट्र, अम्बिका से रूग्ण तथा नपुंसक पाण्डु तथा एक दासी से विदूरते चेहरे का किन्तु नीतिज्ञ विदुर का जन्म हुआ। अंधे घृटराष्ट्र के लिए भीष्म हस्तिनापुर की अजेय सैनिक शक्ति और अपने व्यक्तिगत शौर्य

के आतंक से गांधार–नरेश सुबल को विवश कर दिया कि वह अपनी सुन्दर और तरुणी राजकुमारी का विवाह अंधे घृतराष्ट्र से कर दें। लोक–लाज से सुबल गांधार में यह विवाह नहीं कर सके, उन्होंने अपने पुत्र शकुनि के साथ गांधारी को हस्तिनापुर भेज दिया, जहाँ उसका घृटराष्ट्र से विवाह हो गया। असंतुष्ट होकर अथवा पति का अनुकरण करती हुई गांधारी ने भी अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली। पाण्डु का विवाह कुन्तिभोज की पालिका पुत्री कुन्ती से हो चुका था। नपुंसकता के कारण पाण्डु राजमहलों से भाग कर सैनिक अभियान में लगा रहने लगा तो सत्यवती ने सोचा की बहू में कोई खोट है। भीष्म से कहकर भद्रराज शल्य की बहन भाद्री से शुल्क देकर पाण्डु का दूसरा विवाह कराया गया।

कर्म की सत्ता अमोघ परिणामी होती है। पितृभूमि अथवा व्यक्तिगत त्याग यदि समाज का अहित कर रहा हो तो ऐसी पितृभूमि अथवा त्याग उचित नहीं होता। यदि हस्तिनापुर के राज सिंहासन पर देवव्रत भीष्म जैसा समर्थ, और उदात्त व्यक्ति बैठता, तो देश भविष्य में होने वाले महाभारत जैसे सर्वग्रासी समर से बच जाता। किन्तु भीष्म ने अनजाने ही और सत्यवती ने अपनी अपात्रता से हस्तिनापुर को भविष्य में घटित होने जा रहे विषाक्त कर्म फलों से निवद्ध कर दिया था। कृष्ण ने युधिष्ठिर से ठीक ही कहा–

''कृष्ण बोले किन्तु जिस समय निसर्ग—नियम से उन्हें स्वयं विवाह करना चाहिए था, उस समय उन्होंने युवती स्त्री से अपने बृद्ध पिता का विवाह कराया। उस क्षण से कुरु—कुल में सब अस्त—व्यस्त हो गया। उन्होंने पितृ—भक्ति की तपस्या को अपने जीवन का लक्ष्य मान लिया। बृद्ध एकांगी सत्य था; जीवन का समग्र सत्य नहीं। वह उनके व्यक्तिगत उत्थान के लिए साधना हो सकती है; किन्तु समाज का सम्यक् धर्म नहीं। एकांगी धर्म, समग्र धर्म नहीं होता। यदि व्यक्ति सावधान न हो तो, एकांगी धर्म अनेक बार अधर्म और पाप का उत्स बन जाता है। पितामह ने अपनी व्यक्तिगत साधना के सम्मुख लोकधर्म तथा राजधर्म की सर्वथा अवहेलना की।........उनका सारा प्रयत्न शासन—तन्त्र की रक्षा के लिए होगा, उसके लिए अपने प्राण दे देंगे, चाहे शासन—तन्त्र कितना ही अत्याचारी क्यों न हो।''[12]

दूत—सभा में युधिष्ठिर धर्म के नाम पर स्वयं तथा अपनी पट्टमहिषी द्रौपदी पर अत्याचार सहते रहे। युधिष्ठिर के इस कर्म—बन्धन को कृष्ण अधर्म निरूपित करते हैं—

''घृतराष्ट्र न मनमाने नियमो में बांधकर आपका सर्वस्व हरण कर लिया और कृष्णा का सार्वजनिक रूप से अपमान किया। आप यह सब देखते रहे और समझते रहे कि आप धर्म की रक्षा कर रहे हैं, अतः धर्म आपकी रक्षा करेगा। नहीं धर्मराज! यही धर्म नहीं है। मैं वहाँ उपस्थित

होता दूत को रोक देता, चाहे मुझे बल प्रयोग ही क्यों न करना पड़ता। वे न मानते तो मैं सारे धार्तराष्ट्रों का बध कर देता। इस प्रकार अपमानित और वंचित होना धर्म नहीं है।''[13]

कृष्ण धर्म का मर्म समझाते हुए युधिष्ठिर से कहते हैं–

''किन्तु आप दोनों ने ही धर्म के मर्म को नहीं पहचाना–कृष्ण बाले धर्म का एक मार्ग तपस्या और त्याग भी है; किन्तु तपस्या का परिणाम भी सामाजिक हित में होना चाहिए। आप अपने धर्म पर टिके रहें और आपके सम्मुख एक स्त्री का अपमान होता रहे–यह समाज–धर्म नहीं हो सकता। आपको अपने धर्म में से व्यक्ति–तत्त्व निकाल कर समष्टि–तत्त्व डालना होगा, उसमें जन–हित का योग भी करना होगा; अन्यथा वह आत्म–दाह हो जायेगा।''[14]

अन्त में युधिष्ठिर की प्रार्थना पर कृष्ण धर्म का मर्म समझाते हैं–

''अनासक्त विवेक है धर्म! अनासक्ति! मोह का पूर्ण त्याग! मोह किसी के प्रति नहीं होना चाहिए– न जाति के प्रति न सम्बन्ध के प्रति, न सिद्धान्त के प्रति! धर्म सदेच्छा और सद्परिणाम में है। यदि परिणाम् शुभ नहीं है, तो व्यक्ति को अत्यन्त निर्मम होकर अपनी धर्म–व्यवस्था, समाज–व्यवस्था और शासन व्यवस्था को परखना चाहिए।''[15]

प्रथम खण्ड 'बन्धन' में सत्यवती के हस्तिनापुर आने तथा शान्तनु, सत्यवती तथा भीष्म के कर्म बन्धनों में वंधे हस्तिनापुर के विनाश में प्रवेश

करने की सम्भावना से अपने कनीन पुत्र वेदव्यास के समझाने पर उसके साथ अपनी दोनों विधवा पुत्र बधुओं–अम्बिका, अम्बालिका के साथ व्यास–आश्रम जाने तक की कथा है। दूसरे भाग 'अधिकार' में अधिकारों के लिए हस्तिनापुर में निरन्तर षड्यन्त्र चलते रहते हैं। राजनीति के अधिकार प्राप्त करने के लिए होने वाली हिंसा तथा सत्ता के भास के बोझ में दबे हुए असहाय लोगों की व्यथा की कथा समानान्तर चलती है। 'कर्म', 'धर्म', 'अन्तराल', 'प्रच्छन्न', 'प्रत्यक्ष' खण्डों की यात्रा करती हुई आधुनिक सन्दर्भ और मनोवैज्ञानिक चिन्तन लिए महाभारत की पौराणिक कथा 'निर्बन्ध' तक की यात्रा में वाह्य कथानक पर आधारित घटनाओं के माध्यम से मानव के अन्तर्जगत में होने वाले धर्म और अधर्म, सत्य और असत्य, न्याय और अन्याय, पाप और पुण्य, बन्धन और मुक्ति का द्वंद्व मनोवैज्ञानिकता, नैतिकता तथा चिन्तन के धरातल पर प्रस्तुत किया गया है।

युधिष्ठिर से पितामह कहे शब्दों में उनके अन्तर्जगत् का बन्धन कारी द्वंद्व होता है–

" युधिष्ठिर! सोचो मेरे पुत्र....................इसी प्रकार मैं भी सदा दोनो पक्षों का हित चाहने के कारण, दोनों ही ओर से कष्ट पाता रहा हूँ। दोनों की रक्षा का प्रयत्न करता रहा हूँ। परिणाम तुम्हारे सामने है।"[16]

उपन्यास का अन्त युधिष्ठिर से कहे गए कृष्ण के उद्बोधन से होता है, जिसमें धर्म का बन्धनकारी नहीं–मुक्तिकारी निष्कर्ष है–

"तो आप भी अपने अवसाद को तिलांजलि दीजिए, ग्लानि का त्याग कीजिए......... आपको अपार निर्माण करना है। इस युद्ध में हुए विनाश की क्षतिपूर्ति करनी है। इसीलिए इस हताशाा से स्वयं को बन्धन–मुक्ति करता है। वह जीवन में अववाद नहीं उत्सव लाता है।...... .....पितामह को देखें ....पितामह अधर्म के पक्ष से लड़े, तो भी उनके मन में ग्लानि नहीं, क्योंकि उन्होंने जिसे अपना धर्म समझा, वही किया; जब स्वयं को असमर्थ और अनावश्यक पाया, स्वयं को समर भूमि से हटा लेने का प्रबन्ध कर लिया। आजीवन स्वयं को बांधे रखने वाले उस महापुरुष न इस समय स्वेच्छा से स्वयं को मुक्त कर लिया। यही इच्छामुक्ति है। [17]

सन्दर्भ सूची

1—ब्रह्मासुष्टिर्विष्णुपलिनंशिवर्समाहारं करोति— गरुण पुराण 83/242
1—हरिवंश पुराण—23/44
3—पातंजलि योग—दर्शन (गीता प्रेस गोरखपुर) प्रथम पाद पृ0—3
4—सुभाषितानि—संस्कृत प्रवेश (1969 संस्करण) पृ0—27
5—दीक्षा—नरेन्द्र कोहली— पृ0 161—62
6—दीक्षा—नरेन्द्र कोहली— पृ0 17
7—दीक्षा—नरेन्द्र कोहली— पृ0 18
8—अवसर—नरेन्द्र कोहली— पृ0 99—100
9—युद्ध—नरेन्द्र कोहली— पृ0 36
10—युद्ध—नरेन्द्र कोहली— पृ0 147—48
11—युद्ध—नरेन्द्र कोहली— पृ0 167
12—अन्तराल—नरेन्द्र कोहली— पृ0 96
13—अन्तराल—नरेन्द्र कोहली— पृ0 94
14—अन्तराल—नरेन्द्र कोहली— पृ0 95
15—अन्तराल—नरेन्द्र कोहली— पृ0 100
16—निर्बन्ध—नरेन्द्र कोहली— पृ0 523
17—निर्बन्ध—नरेन्द्र कोहली— पृ0 527—38

ग्रन्थ सूची

उपजीव्य ग्रन्थ

1—दीक्षा

2—अवसर

3—संघर्ष की ओर

4—साक्षात्कार

5—पृष्ठभूमि

6—अभियान

7—युद्ध

8—बन्धन

9—अधिकार

10—कर्म

11—धर्म

12—अन्तराल

13—प्रच्छन्न

14—प्रत्यक्ष

15—निर्बन्ध

16—अभिज्ञान

17—पुनरारमा

18—आंतक

19—आश्रितों का विद्रोह

20—साथ सहा गया दुःख

21—मेरा अपना संसार

22—जंल की कहानी

23—आत्मदान

24—प्रीति कथा

25—क्षमा करना

26—वयंरक्षामः आचार्य चतुर सेन शास्त्री

27—एकदा नैमिषारण्ये अमृतलाल सागर

28—अनामदास का पोथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

29—भूमिजा श्रीमी सुधा गोयल

30—मृत्युजंय शिवा जी गोयल

31—पण्ढरपुर पुराण भृणाल पाण्डे

32—पाषाण युग मालती जोशी

उपस्कारक ग्रन्थ

1— याज्ञवाल्क्य स्मृति वेंकटेश्वर प्रेस प्रथम संस्करण

2— ब्रह्म पुराण गीता प्रेस गोरखपुर पृष्ठ संक्षिप्त संस्करण

3— पद्म पुराण

4— विष्णु पुराण

5— वायु पुराण

6— श्री मद्भागवत पुराण

7— नारद पुराण

8— मार्कण्डेय पुराण

9— अग्नि पुराण

10— भविष्य पुराण

11— ब्रह्म वैवर्त पुराण

12— लिंग पुराण

13— वाराह पुराण

14— स्कन्द पुराण

15— वामन पुराण

16— कूर्म पुराण

17— मत्स्य पुराण

18— ब्रह्माण्ड पुराण

19— वसिष्ठ धर्म सूत्र वेंकटेश्वर प्रेस प्रथम संस्करण

20— गरुड़ पुराण गीता प्रेस गोरखपुर (पष्ठ संक्षिप्त संस्करण)

21— विष्णु धर्मोत्तर पुराण

22— कामन्दक नीतिसार

23— वृहस्पति स्मृति

24— अत्रि संहिता

25— लघु हारीति स्मृति

26— पराशर स्मृति

27— वाल्मीकि रामायण गीता प्रेस गोरखपुर तृतीय संस्करण

28— योगवासिष्ठ रामायण वेकंटेश्वर प्रेस प्रथम संस्करण

29— अध्यात्म रामायण वेंकटेश्वर प्रेस प्रथम संस्करण

30— अद्भुत रामायण वेंकटेश्वर प्रेस प्रथम संस्करण

31— मुशिण्डि रामायण वेंकटेश्वर प्रेस प्रथम संस्करण

32— तत्त्व संग्रह रामायण वेंकटेश्वर प्रेस प्रथम संस्करण

33— वेद व्यास कृत महाभारत गीता प्रेस गोरखपुर नवा सस्करण

34— भारतीय वाङ्मय मेंराम कथाडॉ. विश्वीार दयाल अवस्थी

35– हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ. नगेन्द्र

36– हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृतिया डॉ. शिव कुमार शर्मा

37– भारतीय राजनीति में चरण सिह की भूमिका डॉ. सुबोध कुमार गर्ग

38– हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास राम स्वरूप चतुर्वेदी

Cambridge History of India

People and language - jahn Hurst